❀ हरिः ओ३म् ❀

।। श्री वृन्दावनविहारिणे नमः ।।

श्री कार्ष्णि कण्ठाभरणम्

श्रीमत्परमहंसोदासीन शिरोवतंस
श्री स्वामीज्ञानदासशिष्येण

श्री कार्ष्णि गोपालदासाह्वयेन

विनिर्म्मितम्

अमरेश्वरीय टिप्पणी पूरित-
नरोत्तमीय टीकोपेतम्

तच्च

श्री स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासपादपङ्कजचञ्चरीकेण
अलवर वास्तव्य पण्डित रामचन्द्रशर्मशास्त्रिणा
हिन्दीभाषयानूदितम् ।

प्रकाशकः

स्वामी कार्ष्णि ब्रह्मर्षि

प्रथमावृत्ति सम्वत् २०१८
प्रथम संस्करण २०००

न्योछावर २)

❀ हरिः ओ३म् ❀

।। श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।।

श्री कार्ष्णि कण्ठाभरणम्

श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतंस
श्री स्वामी ज्ञानदासजी महाराज के शिष्य
कार्ष्णि श्री गोपालदासजी ने
इस ग्रन्थ को बनाया

तथा

अमरेश्वरी टिप्पणी सहित
नरोत्तमीय टीका भी की

पुनः

श्री स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजी के चरणकमल में
भ्रमर समान अनुरागी

अलवर निवासी पं० रामचन्द्र शर्मा शास्त्री ने
हिन्दी भाषा में अनुवाद किया।

१९६१

॥ श्रीः ॥

प्राक्कथन

जिस दशा में जीव का मन, वाणी और शरीर भगवन्मय हो जाय, मन से प्रभु का सतत स्मरण हो, वाणी से निरन्तर उनके गुणों का गान हो, शरीर से अनवरत उनकी सपर्या हो, उसी का नाम भजन है। देह की क्रियाओं का उद्देश्य जब केवल भगवत्प्रीति हो और जब केवल भगवान् ही मनोवृत्तियों के केन्द्र हों, तब वह अवस्था भक्ति कहलाती है। भजन और भक्ति पर्याय हैं एवं इस भक्ति की परम्परा वेदों के समय से ही चली आ रही है। ऋग्वेद के—

"महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे" (१-१५६-३)—इस वचन में भजन का स्पष्ट निर्देश है। उपनिषत्-साहित्य में भक्ति को 'उपासना' भी कहा गया है। स्वयं 'उपनिषत्' शब्द का अर्थ भी उपासना है। देवर्षि नारद ने परमात्मा के प्रति परम प्रेम को भक्ति माना है और महर्षि शाण्डिल्य ने ईश्वर के प्रति परम अनुराग को भक्ति बताया है। बादरायण ने अपने सूत्र में इसे 'संराधन' कहा है और पतञ्जलि ने 'प्रणिधान'। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवद्-गुणों के सुनने मात्र से, समुद्र में गंगाजल के समान सर्वान्तिर्यामी भगवान् में मन के निरन्तर प्रवाहित होने को 'निर्गुण भक्ति' कहते हैं। नारद-पञ्चरात्र का वचन है कि इन्द्रियों से श्रीभगवान् की वह सेवा भक्ति कहलाती है, जो समस्त उपाधियों से रहित हो और परमात्म-परक होने के कारण निर्मल हो।

अद्वैत-सम्प्रदाय में उपासना का अर्थ है—सगुण ब्रह्म में मन लगाना। चित्त की एकाग्रता ही इसका परम प्रयोजन कहा गया है और सत्य-लोक की प्राप्ति इसका अवान्तर फल है। भक्ति-रसायन

में मधुसूदन सरस्वती जी ने कहा है कि साधन करते-करते कठिनता को छोड़कर पिघले हुए चित्त की सर्वेश्वर भगवान् में धारा-प्रवाह के समान निरन्तर वृत्ति भक्ति कहलाती है।

भक्ति का लक्षण करते हुए आचार्य रामानुज बताते हैं कि प्रेमपूर्वक अनुध्यान-चिन्तन ही विद्वानों द्वारा भक्ति कहलाता है। वे कहते हैं कि ध्यान और चिन्तन का आधार जो परब्रह्म-परमात्मा है वह अत्यन्त प्रिय है। अतएव उसी प्रियता के कारण प्रियतम का ध्यान और चिन्तन स्वयं भी अत्यन्त प्रिय होता है। प्रियतम का अत्यन्त प्रिय लगने वाला ध्यान या सतत स्मरण ही भक्ति है।

आचार्य निम्बार्क की सम्मति में प्रेम विशेष ही भक्ति का लक्षण है और वह दो प्रकार की है--एक तो साधन-भक्ति और दूसरी साध्य-भक्ति। साधन-भक्ति का दूसरा नाम है 'अपरा' और साध्य-भक्ति का दूसरा नाम है 'परा'। आचार्य मध्व के मत में भगवत्सेवा के तीन प्रकार हैं--प्रथम है अङ्कन अर्थात् दाहिने कन्धे पर सुदर्शन का और बायें कन्धे पर पाञ्चजन्य का चिह्न धारण करना। दूसरा है नामकरण अर्थात् पुत्रादि के नाम ऐसे रखना, जिनको बोलते और सुनते समय भगवान् की स्मृति हो। तीसरा प्रकार है कायिक, वाचिक और मानसिक भजन। आचार्य वल्लभ भक्ति को दो प्रकार की मानते हैं--मर्यादा-भक्ति और पुष्टि-भक्ति। श्रीभगवान् के पोषण अर्थात् अनुग्रह से जिस भक्ति का उदय होता है, उसे पुष्टि-भक्ति कहते हैं, जिससे जीव का निरतिशय कल्याण होता है।

श्री रूप गोस्वामी के अनुसार श्रीकृष्ण के उस अनुशीलन को भक्ति कहते हैं, जिसमें अन्य किसी पदार्थ की अभिलाषा न हो, ज्ञान (अपने से अभिन्न रूप में ब्रह्मानुसंधान) और कर्म (स्मृत्युक्त नित्य नैमित्तिक आदि) का आवरण न हो, किन्तु ऐसी प्रवृत्ति हो जो श्रीकृष्ण को अच्छी लगे।

इस प्रकार विविध सम्प्रदायों द्वारा निरूपित भक्ति ही भक्त के लिए कामधेनु है और साधकमात्र का कल्याण करने वाली है।

ऋक्कालीन महर्षियों से लेकर आज तक अनेकानेक सन्त, महात्मा और कवि हुए हैं जिन्होंने अपने आराध्य देव के श्रीचरणों में अपनी स्तवांजलियाँ समर्पित की हैं। मथुरा निवासी उदासीन संत कार्ष्णि श्रीगोपालदास जी ने भी संस्कृत में श्रीकृष्ण-प्रेम-रस-परिपूर्ण एक शतक की रचना की है। भुजंगप्रयात, तोटक, मालिनी, शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा, शिखरिणी, वसन्ततिलका आदि गेय छन्दों में प्रणीत इस ग्रंथ के दस दशक भावुक पाठकों के हृदय में भक्ति-भाव का सञ्चार कर देते हैं।

ग्रंथ-प्रणेता के लिए सस्मित-वदन, वनमाला-विभूषित, किरीट-मुकुटालंकृत श्रीकृष्ण ही सर्वस्व हैं। वे कहते हैं--

'स्मेरास्याद्वनमालिनो मुकुटिन
स्तत्त्वं न जाने परम्।'

और एक बार वे कामना करते हैं कि मेरे नेत्रों को पीताम्बर-धारी श्याम तेज के दर्शन हो जायँ--

'युतं गोभिराभीरबालैश्च कान्तं
दिनेशात्मजायास्तटे तं प्रयान्तम्।
व्रजेन्द्रात्मजं श्याम-तेजः शरीरं
मदीये दृशौ पश्यतां पीतचीरम्॥'

श्रीकृष्ण अपनी समग्र मूर्ति को भक्त के दृग्गोचर नहीं कर रहे हैं, तो उनकी सूक्ति है कि प्रभो अपने चन्द्रमुख की ही छटा दिखा दीजिये--

'प्रियवदन-विधुं मे दर्शय त्वं स्वकीयम्।'

भगवान् के दर्शन के बिना भक्त को दसों दिशाएँ सूनी लगती हैं और वह यह भी अनुभव करने लगता है कि भगवान् ने मुझे

अभी तक अपने गले नहीं लगाया; जब तक वे मेरे गले से नहीं लगेंगे तब तक मेरा गला निरर्थक है——

'शून्यं सर्वमृते भवन्तमनिशं
कण्ठश्च कण्ठं विना।'

ऐसा भावोद्रेक है इस रम्य रचना में।

ऐसा सहृदयाह्लादक ग्रंथ-रत्न संस्कृत में होने के कारण संस्कृतानभिज्ञों का मनोरञ्जन नहीं कर सकता था, अतएव अलवरवास्तव्य, संस्कृत-वाङ्मय के समुज्ज्वल विद्वद्वर, श्रीमद्भगवच्चरण-नलिन-युगल-मकरंद-चंचरीक श्रीमत्पंडित रामचन्द्र-शर्मा शास्त्रीजी ने इसका हिन्दी में अनुवाद कर दिया है। यह अनुवाद अतिशय सुबोध और सुन्दर हुआ है। पहिले तो संस्कृत श्लोक के प्रत्येक पद को, अन्वय के क्रम से, सरल शैली से समझाया गया है और तत्पश्चात् श्लोक का आशय विशद किया गया है। स्वान्तस्सुख तो उन्हें मिला ही होगा, भक्त-जनता के लिए उन्होंने एक प्रेमोपहार ही प्रस्तुत कर दिया है। अतएव वे वैष्णव-जगत् के प्रशंसापात्र हैं। इस नवीन प्रकाशन के द्वारा राष्ट्रभाषा के निर्मल गगन में एक और प्रकाशमान किरण का आलोक हुआ है जो अवश्य ही सज्जनों के हृदय में हर्ष प्रकर्ष का उदय करेगा।

नई दिल्ली,
रामनवमी सं० २०१८

वेदान्ताचार्य डॉ० कृष्णदत्त भारद्वाज शास्त्री
एम० ए०, पी०-एच० डी०।
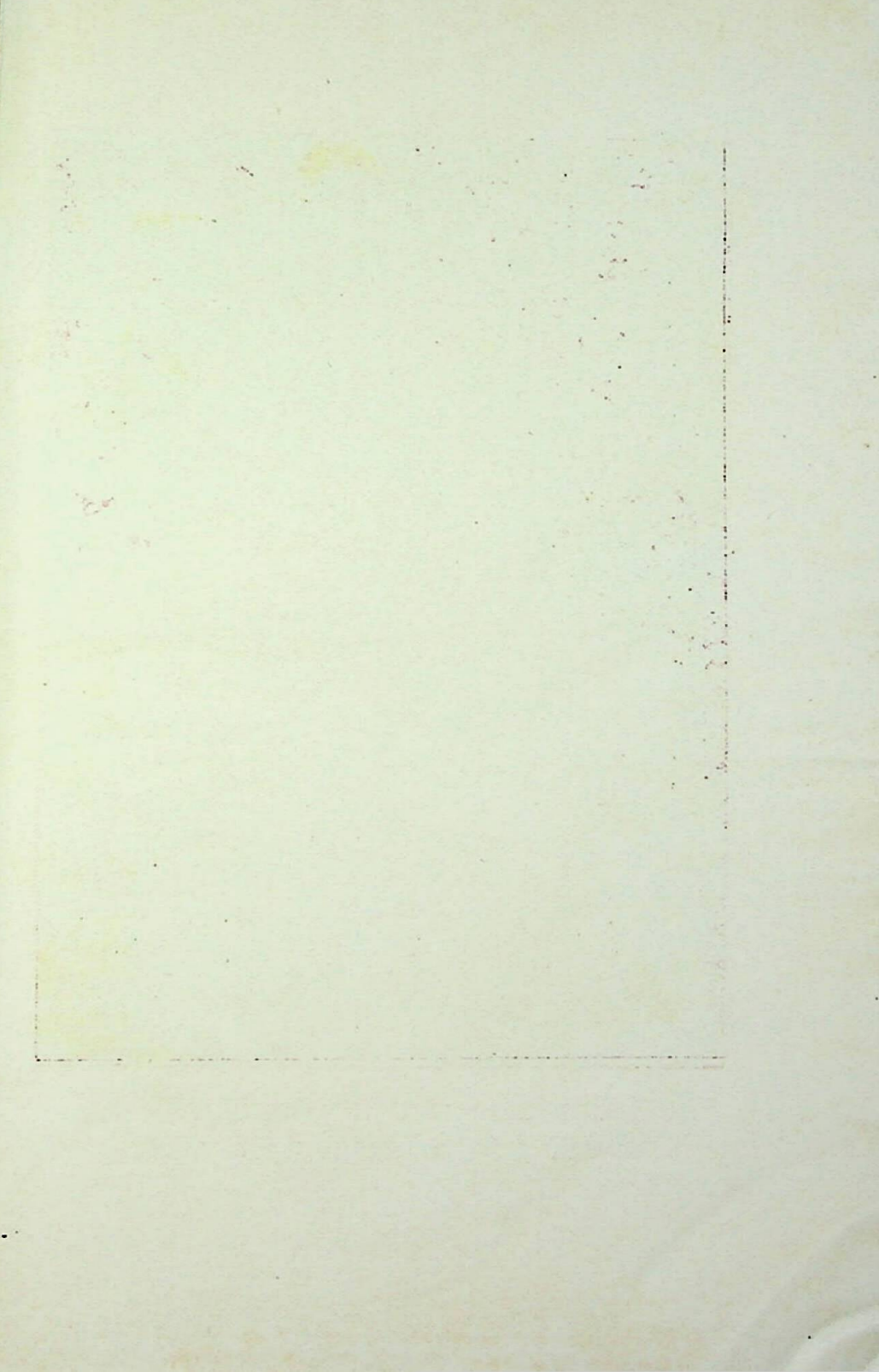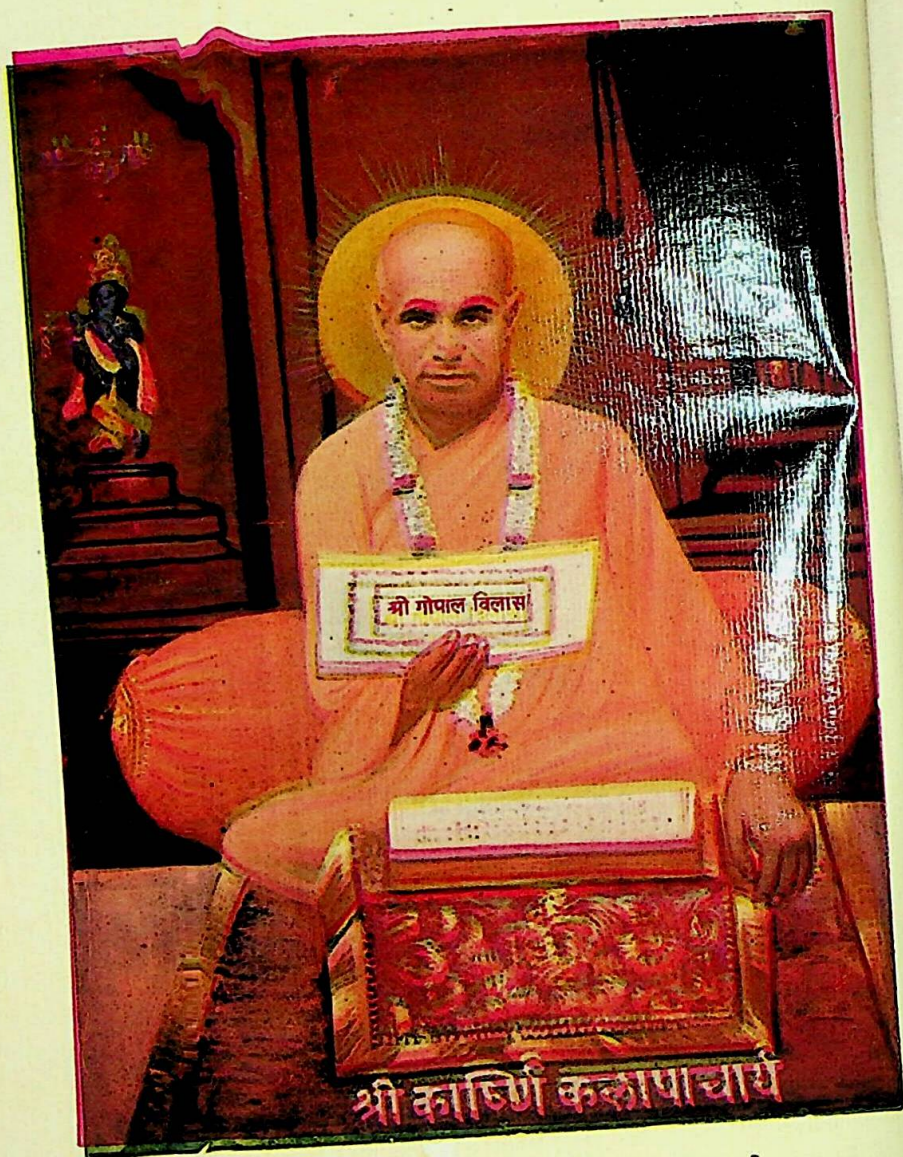
ग्रन्थकार श्री १०८ श्री गुरू कार्ष्णिकलापाचार्य्य
श्री स्वामी कार्ष्णि गोपालदासजी महाराज उदासीन

॥ श्रीराधारमणविहारिणे नमः ॥

परिचय

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं, लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

सुख के समुद्र में जिसका चित्त मग्न हो गया, विमुक्ति-मार्ग में, परब्रह्म परमात्मा श्री श्यामसुन्दर के चरणकमल में जिसका मन लग गया, उसका कुल पवित्र होगया, उसकी माता उसे जन्म देकर कृतार्थ हो गई और वसुन्धरा (पृथ्वी) भी भाग्यवती हो गई।

प्रस्तावना--अनेकों सन्तों महात्माओं को जन्म देने का श्रेय इस भारत को है। समय समय पर विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों में एक सूत्रता लाने का प्रयत्न इन सबने किया है। जब जब यह अनुभव किया गया कि कोई सम्प्रदाय केवल अपने मतों के प्रचार में लग्न है और अन्य मतानुयायियों के साथ मनमानी कर रही हैं तब तब इन साधुसन्तों ने अपनी स्नेह-सिंचित सुधामयी वाणी में जनता को समझाया कि मत या सम्प्रदाय साधन विशेष हैं उनके प्रचार में ही अपना जीवन लगा देना उचित नहीं, आवश्यकता इस बात की है कि साधनों को उपयोग में लाते हुए साधारणजन अपने लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता रहे। ऐसे सन्त महात्मा किसी धर्म या मत विशेष से सम्बद्ध होकर भी जीवन और जगत की वास्तविकता को जनता के सामने रखते रहे हैं। ऐसे ही एक सन्त के बहुमुखी जीवन के कुछ संस्मरण यहाँ उद्घाटित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

जन्म स्थान एवं वंश परिचय--सीमा प्रान्त के जिला हरिपुर हजारा से पाँच कोस उत्तर पूर्व के कौने में एबटाबाद की सड़क से एक कोस दूर पर्वत के ऊपर एक बगड़ा नाम का ग्राम है।

जहाँ किसी समय भृगु गोत्र के द्विजातीय रहते थे इस कारण इस ग्राम का नाम भार्गवालय भी था। इस ग्राम को प्रकृति ने मुक्त-हस्त से अपनी सुषमा प्रदान की। सुन्दर जलाशयों के मध्य यह ग्राम कमल की भाँति मुस्करा रहा है। यवन-प्रधान इस ग्राम में कठिनाई से चालीस घर ब्राह्मण क्षत्रियादि हिन्दुओं के थे। यहाँ के हिन्दुओं ने अपने सदाचार, धर्म परायणता एवं कर्तव्य-परायणता के कारण इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करली थी कि जिला हजारा की पंचायतों के निर्णय प्रायः बगड़ा ग्राम की पंचायत करती थी। इसी ग्राम के एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय वंशी श्री जवाहरमल सूरी थे जिनकी धर्म-पत्नी का नाम श्रीमती चन्दन देवी था। आप साधु ब्राह्मण तथा अतिथि की सेवा में बड़ी तत्परता से सदैव लगे रहते थे। प्रायः वैशाख मास से कार्तिक मास तक तो आपके घर साधु महात्माओं का ताँता लगा रहता था। श्री अमरनाथजी की यात्रा के मार्ग के समीप होने के कारण साधु महात्मा आते जाते दर्शन देते रहते थे। विशेषतया सभी अतिथिगण आपकी निष्काम सेवा से बहुत सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते थे।

परम सन्त के आशीर्वाद से पुत्र-प्राप्ति—एक दिन एक महान् तपस्वी महात्मा आपके घर आये। श्रीजवाहरमलजी ने आपका यथाविधि सादर स्वागत किया। महात्माजी आपके अतिथि-सत्कार से परम प्रसन्न हुए और कहने लगे—भक्तवर! आपका बालक कहाँ है? सूरीजी ने वंशीविभूषित श्रीकृष्ण की छवि की ओर संकेत कर दिया। महात्माजी ने वास्तविकता को जानकर कहा—अच्छा भक्तवर! एक वर्ष के अन्दर आपके गृह में एक सुन्दर सर्वगुण-सम्पन्न बालक का जन्म होगा। यह मेरा वचन सत्य एवं विश्वसनीय है। इतना कहकर महात्माजी चल दिये। सूरी दम्पति ने उनसे कुछ काल के लिए वहीं विश्राम करने के लिये आग्रह किया। इस पर महात्माजी ने एक वर्ष के अन्दर उनके घर आने का वचन दिया। महात्माजी कुछ दूर जाकर अन्तर्धान हो गये।

यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर दम्पति को परम विस्मय हुआ और दोनों को महात्मा द्वारा दिये गये वरदान पर पूर्ण विश्वास हो गया। तब से वे अधिक लगन एवं श्रद्धा से धार्मिक कृत्यों में प्रवृत्त हो गये।

निश्चित अवधि के उपरान्त शुभ घड़ी, नक्षत्र, योग के आने पर विक्रमी संवत् १६१६ के फाल्गुण मास की (शुक्ल पक्ष की) तृतीया को ब्राह्म मुहूर्त में श्री सूरीजी के घर एक बालक का जन्म हुआ। सुन्दर सुघड़ बालक को देखकर आप फूले नहीं समाये। कुल पुरोहित श्रीमान् पण्डित जयरामजी उपाध्याय को यह शुभ सन्देश आपने स्वयं पहुँचाया। पण्डितजी ने पञ्चाङ्ग देखकर बतलाया कि आपका पुत्र बड़ा गुणवान्, विद्वान् एवं शीलवान् होगा। राजा महाराजा गरीब और अमीर सब इसका गुणगान करेंगे। इसके सुन्दर रूप को देखकर सब शत्रु, मित्र बन जायेंगे। यह एक महान् योगेश्वर परिव्राजक होगा जिससे सब लोग लाभान्वित होंगे।

बाल्यावस्था--बालक दिन प्रतिदिन चन्द्रमा की कला के समान बढ़ने लगा। बालक की शिशु-सुलभ क्रीड़ाओं को देखकर उसके माता-पिता परम प्रसन्न रहने लगे। एकदिन पण्डित जयरामजी उपाध्याय ने शुभ-मुहूर्त देखकर जन्मकुण्डली के अनुसार बालक का शुभ नामकरण किया। वे कहने लगे—जवाहरमलजी ! आपके पुत्र में अनेक गुण हैं किन्तु यह भगवान् का अनन्य भक्त होगा इस कारण इसका नाम 'भगवानदास' अधिक उपयुक्त रहेगा। लाला जवाहर-मलजी ने पण्डितजी को यथाशक्ति दानदक्षिणा देकर उनका सम्मान किया। पाँच वर्ष की अवस्था में आपका विधिविधान-पूर्वक क्षौरकर्म कराया गया।

एक दिन बालक भगवानदास समवयस्क शिशुओं के साथ खेल रहे थे। खेलते-खेलते वह एकदम पद्मासन लगाकर बैठ गये और

कहने लगे—मित्रो ! आज सारा समय हम लोग खेल-कूद में ही व्यतीत नहीं करेंगे। यह मनुष्य जीवन-दुर्लभ है इसको ऐसे ही समाप्त कर देने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि कुछ समय खेल में लगा कर अवशिष्ट समय भगवन्नाम-संकीर्तन में लगायें। जिससे मानव-जीवन की सार्थकता सिद्ध हो। आपके मधुर वचन सुनकर सभी बालक पद्मासन लगाकर हरिनाम-कीर्तन करने लगे। सारा क्रीड़ास्थल हरिनाम की ध्वनि से गुंजायमान होने लगा। सभी ग्रामनिवासी नरनारी यह अद्‌भुत दृश्य देखने के लिए दौड़ आये। ग्रामवासी भी यंत्र-चालित से होकर अपने आप कीर्तन में संलग्न हो गए। एक पहर तक यह विस्मृति-पूर्ण विमुग्धकारी संकीर्तन चलता रहा। बालक भगवानदास ने आँखें खोली और देखा सब हिन्दू-मुस्लिम स्त्री-पुरुष समाधि लगाये बैठे हैं। उनकी आत्मा बड़ी प्रसन्न हुई। उन्होंने उच्च स्वर में "श्रीकृष्ण बलदेव की जय" बोली। सबने एक-स्वर हो प्रतिध्वनि की जिस से समस्त वायुमण्डल प्रतिध्वनित हो उठा। सब लोग धीरे-धीरे शान्त चित्त से अपने-अपने घर लौटे। सब की आत्मा एक अद्‌भुत आनन्द से उत्फुल्ल हो रही थी।

उपनयन—जब आप ग्यारह वर्ष के हुये, पण्डित जयरामजी ने शुभमुहूर्त का निश्चय कर श्री जवाहरमलजी को सलाह दी कि अब बालक का उपनयन संस्कार हो जाना चाहिये। कुलगुरु की सम्मति के अनुसार सूरी जी ने अपने पुत्र का उपनयन संस्कार वैशाख शुक्ला तृतीया को धूमधाम से सम्पन्न कराया। नगरनिवासी एवं आगन्तुक संबंधी आपकी ब्रह्मचर्यावस्था को देख परम मुग्ध हुए। एक दिन भगवानदास जी ने अपने समवयस्क बालकों को भी ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि चतुर्थाश्रमरूपी चौमंजिले मकान की नींव ब्रह्मचर्याश्रम पर ही आश्रित है। इस लिये इसका पालन नितान्त आवश्यक है। कुलगुरु के आदेशानुसार

आपने अक्षरारम्भ किया और उनकी कृपा से स्वल्पकाल में ही शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन भी किया, आपकी इच्छा आजीवन ब्रह्मचारी रहने की थी किन्तु यह इच्छा पूरी न हो सकी।

विवाह——व्यावहारिक एवं पारमार्थिक अध्ययन समाप्त कर समावर्तन के पश्चात् आपका शुभ विवाह 'मानसेरा' के श्रीमान् जयरामजी आनंद की कन्या श्रीमती पार्वती देवी के साथ शुभमुहूर्त तिथि मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी को अत्यन्त धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

गृहस्थाश्रम में भी आप बड़े सात्त्विक ढङ्ग से रहते थे। नियमित आचार-विचार पर आपका विशेष ध्यान था। ब्राह्ममुहूर्त में शैया त्याग माता-पिता को प्रणाम करना, शौच स्नान आदि से निवृत्त हो अपने व्यवसाय में लग जाना यही उनकी दिनचर्या थी। प्रतिदिन सत्संग और स्वाध्याय से विरत नहीं होते थे। गृहस्थ की सभी क्रियाओं को सम्पादित करते हुए भी पारमार्थिक चिन्तन में सदैव लीन रहते थे।

पिता की मृत्यु—एक दिन आपके पिता जवाहरमलजी आपको एकान्त में बिठा कर कहने लगे–बेटा ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब मेरी इहलीला समाप्त होने वाली है। क्या तुम सलाह दे सकते हो कि अब मुझे क्या करना चाहिये ? भगवान्‌दासजी ने उत्तर दिया–पिता जी ! आप बुद्धिमान् एवं विचारशील हैं। महात्माओं के सत्संग तथा योगवाशिष्ठ के अध्ययन से मुझे यह निश्चय हो गया है कि जीव की परमशान्ति अद्वैतज्ञान में निहित है। संसार नश्वर एवं दुःखमय है केवल आत्मा ही सत् चित् आनंद स्वरूप निर्विकार नित्य मुक्त रूप है। अब आप संसार के पदार्थों से और सम्बन्धियों से ममता अहन्ता त्याग केवल भगवत् परायण हो आत्म-चिन्तन करें। अभी का अभ्यास अन्त में आपके मोक्ष का कारण होगा। पिता जी परम प्रसन्न हो इसी मार्ग पर चलपड़े।

एक दिन संध्या समय श्री भगवानदासजी पिता की सेवा में लीन थे तभी पिताजी ने कहा–बेटा ! कल प्रातः चार बजे मेरा परमधाम गमन का निश्चय है। तुम गंगा एवं यमुना का जल तथा तुलसीदल मेरे समीप लाकर रखदेना। आपने कुलपुरोहित की सम्मति के अनुसार अन्न, धन, वस्त्र आदि का दान किया। पिताजी ने परम प्रसन्न होकर लोक परलोक में महान् यश का भागी होने का आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् भगवत् चरणामृत का आचमन कर "हरिः ओम् तत्सत्" कहते हुए माघ शुक्ला ११ को ब्राह्ममुहूर्त में आपने इस पांचभौतिक शरीर का त्याग कर दिया और भगवत्स्वरूप में लीन हो गये। श्री भगवानदासजी ने मृत शरीर का विधिवत् दाहसंस्कार किया।

पठान का पश्चात्ताप––एक बार आपके जीवन में एक विचित्र घटना हुई। शीत ऋतु की एक गहन रात्रि में कुछ चोर आपके घर में घुस आये और सामान लेकर चले गये। आप जाग रहे थे किन्तु कुछ न बोले, माताजी को यह अच्छा न लगा। उन्होंने अगले दिन पुत्र को पुलिस में रिपोर्ट करने को भेजा। आदेशानुसार आपने रिपोर्ट लिखवाई। पुलिस ने एक पठान के घर की तलाशी ली परन्तु उसके घर माल नहीं निकला। पठान को बड़ा क्रोध हुआ उसने मनमें इनको जान से मार डालने का निश्चय किया किंतु आपका मन यथापूर्व निर्विकार रहा।

नदी जाते आते आपकी भेंट प्रतिदिन खान से होती थी किंतु आप मिलते ही उससे 'चाचाजी सलाम' कह देते थे और मजबूर होकर पठान को भी उन्हें आशीर्वाद देना पड़ता था। आखिर पठान उनसे बदला न ले सका और उसने एक दिन आपसे कह ही दिया कि बेटा ! न जाने तुम कौन से पीर की बंदगी करते हो। मैं आजतक तुम्हें कोई नुकसान नही पहुँचा सका। आपने उत्तर दिया चाचाजी ! आप मेरे पूज्य हैं, मैंने जैसे आदर से आपको पहले

देखा था वैसे ही अब भी देखता हूँ इस कारण मेरे हृदय में कोई भय नहीं है। यह सुनकर पठान ने आपको गले से लगा लिया और कहने लगा कि आज से तुम ही मेरे पीर हो और मैं तुम्हारा मुरीद हूँ।

गृह-त्याग—सम्वत् १९४१ में आप वैशाखी के पुण्यपर्व पर घर से गङ्गास्नान के लिए चल पड़े। आपके साथ आपके अभिन्न मित्र मास्टर श्यामसिंहजी थे। जब आप हरिपुर पहुँचे तो मास्टर जी ने कहा कि मुझे अपने पुत्र की याद आ रही है यह सुन आप कहने लगे—मित्र! तुम घर लौट जाओ क्योंकि तुम मोह ममता का त्याग नहीं कर सकते। संसार-त्याग का यह कण्टकाकीर्ण मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। यह कहकर उन्होंने उसे लौटा दिया और स्वयं गाड़ी में बैठकर परमपावनी गङ्गा का स्नान करते हुए हरि-द्वार एवं ऋषिकेश आदि स्थानों में महात्माओं का दर्शन करते हुए मथुरा आगये।

मथुरा-निवास—यहाँ आप अपने पण्डा के मकान में रहे, यहां के महात्माओं के दर्शन करते हुये आप श्री द्वारिकाधीशजी के राजभोग का दर्शन करने आये। इधर परम पूज्य श्री स्वामी कार्ष्णि ज्ञान-दासजी भी श्री द्वारिकाधीशजी के दर्शनार्थ पधारे। यहीं आपका स्वामीजी से साक्षात्कार हुआ और आप उनके साथ ही आश्रम पर चले आये। आश्रम पहुँच कर आपने श्री स्वामीजी के सन्मुख अपने संसार-त्याग के मनोभावों को प्रकट किया। श्री स्वामीजी ने आपको सलाह दी कि अभी आपकी आयु कम है इसलिये गृहस्थ में रह कर ही आपको भगवत् चिन्तन करना चाहिये। किन्तु आपने पुनः दृढ़ता के साथ अपने मनोरथ को दुहराया और स्वामी जी के चरण पकड़ लिये। तीन दिन तक आप ऐसे ही बैठे रहे तब श्री स्वामीजी आपकी लग्न से अति प्रसन्न हुए और कहा कि हम तुम्हारी दीक्षा के लिये बहुत शीघ्र शुभघड़ी का मुहूर्त देखेंगे। आप तन मन से स्वामी जी की चरण-सेवा में लीन हो गये।

गुरुदेव की तपस्या तथा भगवद्दर्शन--श्री स्वामी ज्ञानदासजी महाराज का जन्म जि० गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) के रामनगर ग्राम में एक उच्च कुलीन तपस्वी, भगवद्भक्त ब्राह्मण-कुल में हुआ था। बचपन में ही बालक में मातापिता के संस्कारों का आना स्वाभाविक था। एक उच्च-कोटि के विद्वान् ब्राह्मण से शास्त्रों का अध्ययन कर बालक ज्ञानदास में वैराग्य जाग उठा। गृह तथा परिवार का मोह त्याग कर आपने चतुर्थाश्रम ग्रहण किया। पुनः जब अत्यन्त श्रद्धा से वेद वेदान्त तथा षट्-शास्त्रों का अनुशीलन कर चुके तब एक दिन उनके गुरु देव ने उनकी श्रद्धा तथा सेवा से प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि "पुत्र! तुम जिस ग्रंथ के हाथ लगाओगे वही तुम्हें कण्ठस्थ हो जायेगा" गुरुदेव के वरदान को सहर्ष शिरोधार्य करके ज्ञानदास जी का हृदय गद्-गद् हो उठा। अश्रुपूरित नेत्रों से आपने गुरु के चरणों में अपना मस्तक रख दिया पुनः आप व्रजभूमि, श्री कृष्णचंद्र आनंदकंद की लीला-भूमि में चले आये। यहाँ रमणरेती में आकर भगवद्दर्शन की उत्कट लालसा आपके हृदय में जाग उठी। आपने यहीं पर १२ वर्ष पर्यन्त तप करने की प्रतिज्ञा की और आसन जमाकर प्रभु के ध्यान में मग्न रहने लगे। एक सज्जन प्रतिदिन दोपहर को आपको आहार दे जाता था। दिन रात में केवल एक बार स्वल्पाहार लेकर आप निर्वाह करते थे। एक दिन आपको स्वप्न में किसी ने कहा कि "भक्तवर! जिसका अन्नाहार तुम करते हो वह दूषित है, पवित्र नहीं है, इस आहार से तुम्हारी तपस्या में विघ्न होगा" उसी दिन से आपने उसका आहार लेना वंद कर दिया। उस दिन से आप का प्रभुपर विश्वास दृढ़ से दृढतर हो गया। उधर राया ग्राम में एक सदाचारी भगवद्भक्त वैश्य रहता था। उसे स्वप्न हुआ कि " रमणरेती में एक सन्त भगवद् भजन करते हैं तुम उनके समीप जाकर सेवा पूछो" स्वप्न को देखकर भक्त वैश्य भागा २ रमणरेती (गोकुल और महावन के मध्य) आया और स्वामी जी की कुटिया के

बाहर बैठ गया। जब स्वामीजी कुटिया से बाहर निकले तो वैश्य उनके चरणों में लोट-पोट हो गया, स्वप्न का सारा वृत्तान्त सुनाया और सेवा की प्रार्थना की। "श्री स्वामीजी ने कहा—भक्त ! तुम हमारे लिए एक मिट्टी के पात्र में सात मुठ्ठी चणे, एक २ मुठ्ठी प्रतिदिन के हिसाब से सातवें दिन रख जाया करो" आज्ञा मानकर वैश्य ने वैसा ही किया। स्वामीजी एक मुठ्ठी चणे लेकर रात्रि को भिगो देते। दो पहर को भगवान् के भोग लगा कर वह प्रसाद ग्रहण करते। इस प्रकार १२ वर्ष तक कठोर तप किया, एक दिन मध्याह्न समय जब स्वामीजी प्रभु-ध्यान में तल्लीन थे, शरीर की सुधबुध भूल गये थे, अचानक शब्द सुनाई दिया—"कुटिया खोलो" स्वामीजी ने समझा कोई गोप बालक होगा, पुनः तीन बार उसी प्रकार के शब्द सुनाई दिये तब स्वामीजी बोले—"कौन है?" "जिसका तुम अनवरत चिंतन कर रहे हो" उत्तर मिला स्वामीजी का हृदय प्रफुल्लित हो उठा—गद्-गद् वाणी से बोले—"प्रभो ! यदि आप मेरे इष्ट देव हैं तो आपके लिये द्वार खोलने की क्या आवश्यकता है, आपके लिए सारे द्वार खुले हैं" इतना कहते ही कुटिया का द्वार स्वतः खुल गया। और रासरासेश्वरी श्री राधिका जी सहित आनन्दकन्द व्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द्र कुटी में प्रविष्ट हो गये। मनोभिलषित दर्शन करते ही हृदय नाच उठा और प्रभु-चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। करुणा-सागर प्रभु ने अपने करकमलों से आपको उठाकर गले से लगा लिया और श्रीमुख से कहा—"मेरे अनन्य प्रेमी ज्ञानदास ! वर माँगो मैं तुम्हारी इस निष्काम तपस्या से परम प्रसन्न हूँ" चरणों में पड़कर स्वामीजी ने प्रार्थना की—

विनती इक अन्त सुनो भगवन्त, अनन्त सदा तुम देवन हारे।
मुख राधा कृष्ण जपे जन जो, सु चहे जब सो ब्रह्माण्ड उधारे।।
तब ना करियो कुछ देर प्रभु, कहे एक करोसुअनेक उबारे।
सह राधा पास रहो उसके, तब कृष्ण स्वयं मुख एव उचारे।।

प्रभु इस प्रार्थना को सुनकर परम प्रसन्न हुये और "तथास्तु, प्यारे भक्त मैं सदा तुम्हारे समीप ही रहूँगा" ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

द्वादश वर्ष की तपस्या पूर्ण होने के पश्चात् श्री स्वामी ज्ञानदासजी महाराज मथुरा पधारे। यहाँ उनके परम प्रिय शिष्य कृष्णदास जी रहते थे। ये संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् थे। मथुरा में श्री स्वामीजी का महात्माओं तथा प्रेमियों ने बड़ा आदर किया। अनन्तर मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, महावन आदि स्थानों के महात्माओं तथा प्रेमियों ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि जिस प्रकार के दर्शन युगलजोड़ी (श्रीराधा-कृष्ण) के आपको हुये हैं, हमें भी उसी प्रकार की झाँकी के दर्शन कराने की यदि आप कृपा करें, तो हमारा जन्म सफल हो जाय। श्रीस्वामीजी पाँच महात्माओं को साथ लेकर जयपुर पधारे वहां श्री बाबू रसिकविहारीलाल वकील के स्थान पर ठहरे। पुनः शिल्पकारों के मोहल्ले में जाकर मूर्तियाँ देखने लगे। पर वह छवि नहीं मिली जिसकी झाँकी श्री स्वामीजी ने की थी। एक दिन जयपुर के प्रसिद्ध शिल्पकार (मूर्ति-निर्माता) ने आकर स्वामीजी से प्रार्थना की कि "आप अपने भाव के अनुसार मोम की एक मूर्ति बनादें, मैं उसी प्रकार की झांकी बना कर आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा" श्री स्वामीजी ने ध्यान-मग्न होकर युगल दम्पति की मूर्ति बनाई। दर्शक उसे देखकर मोहित हो गये। तब राज्य-शिल्पकार ने उसी प्रकार की श्री राधा-रमण-बिहारीजी की मूर्ति बना दी और श्री स्वामीजी को भेंट करदी, श्री स्वामीजी तथा अन्य सज्जन मनमोहनी मूर्ति के दर्शन कर प्रफुल्लित हो उठे। पुनः प्रतिमा को मथुरा ले आये यहां एक दिन निवास करके अगले दिन दोनों प्रतिमाओं को लेकर रमणरेती आये और यहां रमणरेती के संरक्षक श्री स्वामी कृष्णानंदजी, बालानन्दजी तथा श्रीपूर्णानन्दजी की अनुमति से विधिपूर्वक बड़े २

विद्वानों तथा सन्त महात्माओं द्वारा मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हुई। वर्तमान में, रमणरेती-मन्दिर में श्री राधारमण बिहारीजी की वही मूर्ति है जिसके आप दर्शन कर जन्म सफल कर रहे हैं।

शिष्यत्त्व की दीक्षा--एक दिन श्री गुरुदेव स्वामी ज्ञानदासजी स्नान पूजन कर प्रातःकाल भगवत् ध्यान में बैठे थे कि उसी समय उनको भगवत्प्रेरणा हुई कि यह जो भक्त मुमुक्षु आया है वह मेरा जन्मांतर से परम अनुरागी है यह उसका अंतिम जन्म है इसलिए उसे दीक्षा अवश्य दें। भगवान्दासजी जब आपका चरणस्पर्श करने आये तो आपने कहा कि वत्स ! प्रभु की आज्ञा हो गई है अब तुम्हारा चतुर्थाश्रमी संस्कार वैशाख शुक्ला तृतीया को होगा। यह सुन भगवानदासजी का हृदय गद्-गद् हो उठा और उनकी आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगे।

शुभ मुहूर्त से तीन दिन पूर्व ही आपको अनशन व्रत और सावित्री जप की आज्ञा मिली। आपने सब कुछ बड़े मनोयोग के साथ किया तब उन्हें दीक्षा दी गई। श्री गुरुदेव ने उनसे अभयदान का वचन लिया, दीक्षा के बाद आपको धारण करने के लिए भगवाँ वस्त्र, कोपीन, गाती एवं अंगोछा आदि दिया गया साथ ही भगवान्-दास से बदल कर आपका नाम श्री कार्ष्णि गोपालदास कर दिया गया।

भगवदाराधन--दीक्षा के पश्चात् आपके हृदय में भगवत् दर्शन के लिए लालसा बढने लगी। आप दिनरात यही सोचने लगे कि श्री गुरुदेव ने तो मुझको नारायणस्वरूप बनाया है, परन्तु जब तक वंशीविभूषित भगवान् के दर्शन न होंगे मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। आपने यह मान लिया कि प्रभु के दर्शनों बिना यह मानव-जीवन निरर्थक है। श्री गुरुदेव सब स्थिति को गम्भीरता-पूर्वक देख रहे थे। आपने सलाह दी कि प्रतीक्षा की लगन में वृद्धि करते रहो दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे। दिन प्रतिदिन अभ्यास बढता गया। आपको ऐसा प्रतीत होने लगा कि कहीं नूपुरों की ध्वनि हो

रही है और वंशी के स्वर सुनाई दे रहे हैं। आपकी स्थिति पागलों के समान हो गई। सोते २ चौंक पड़ना, खाते २ इधर उधर देखना आदि क्रियाएँ उनके उन्मत्तता की द्योतक थीं।

भगवद्दर्शन--एक दिन आप श्री गुरुदेव जी की चरणसेवा कर अपने आसन पर विराजे हुए प्रभु के स्वरूप, ध्यान में मग्न हो रहे थे। अर्धरात्रि का समय एक बजा था कि श्री रमणरेती में नूपुरों की ध्वनि सुनाई दी आप चौंक पड़े, उठे और मंदिर के पीछे दौड़कर गये। वहां आपने ग्वाल-मंडल के मध्य ऊँचे टीले पर खड़े प्रभु श्री कृष्ण को वंशी बजाते हुए देखा। आप मन्त्र-मुग्ध से यह दृश्य देखते रहे। प्रभु ने आपसे वर मांगने को कहा तब आपने कहा कि मुझे आपकी भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए--

मन में है वसी बस चाह यही, प्रियनाम तुम्हारा उचारा करूँ।
बिठलाके तुम्हें हिय मन्दिर में, मनमोहनी मूर्ति निहारा करूँ॥
भरके दृगपात्र में प्रेम का जल, पदपंकज नाथ! पखारा करूँ।
बन प्रेम पुजारी तुम्हारा प्रभो, नित आरती भव्य उतारा करूँ॥

प्रभु ने प्रसन्न होकर आदेश दिया कि तुम गुरू के रूप में मेरी भक्ति करो। ऐसा कह कर आप अन्तर्ध्यान हो गये। गुरुदेव श्री ज्ञानदासजी ने कहा—बेटा! तेरा अहोभाग्य है जो फल दीर्घकाल के प्रयत्न से भी सम्भव नहीं था वह तुम्हें सरलता से प्राप्त हो गया है यह सब प्रभु की कृपा है।

ग्रन्थरचना का आरम्भ--तदुपरान्त मथुरा के प्रेमीजन श्री गुरुदेवजी के सहित आग्रह कर आपको मथुरा ले आये और सतसंग की प्रार्थना की। प्रेमियों की प्रार्थना सुनकर तथा श्री गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त करके आपने श्रीमद्भागवत की कथा प्रारम्भ की जिसे सुनकर श्रोतागण हर्षविभोर हो उठे। उसी अवधि में आपने श्री गुरुदेव के साथ मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन एवं रमणरेती में निवास किया। इसी काल में आपने सरस पद्यावलि से युक्त एक सुन्दर

संस्कृत ग्रंथ कार्ष्णि कण्ठाभरण की रचना की। उसे लेकर जब आप श्री गुरुदेव के चरणों में अर्पित करने पहुँचे तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा बेटा गोपाल! प्रभु की तुम पर असीम अनुकम्पा है तुम लोक-हितार्थ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से पूर्ण सद्‌ग्रंथों का निर्माण करो यही मेरी हार्दिक इच्छा है। श्री गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके आपने ७ संस्कृत के और १० हिन्दी के ग्रंथ बनाये वे निम्न-लिखित हैं--

संस्कृत	भाषा
१. कार्ष्णि-कण्ठाभरण।	१. श्री गोपालविलास।
२. भक्ति-प्रकाश।	२. प्रेमपत्र रामायण (स्नेहपत्र)।
३. वैराग्य-भास्कर।	३. हरि आशक पन्थ।
४. कार्ष्णि-कवचम् किरीटम्।	४. श्यामसगाई।
५. श्रीकृष्णार्पण-प्रार्थना।	५. प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक।
६. अवतार-मीमांसा कार्ष्णि शब्द मीमांसा।	६. पूर्णविलास गोपीचंद्रविनोद।
७. सुसाधुता-सुधासिन्धु।	७. साधुसिंहोपन्यास।
	८. कार्ष्णि-करुणाभरण वृजवासोल्लास।
	९. कार्ष्णि कीर्तन।
	१०. श्रीकृष्ण-क्रीडा का सार।

गुरुदेव का देहत्याग--ज्यों-ज्यों श्री गुरुदेव के अन्तिम दिन समीप आ रहे थे आपके हृदय में एक प्रकार की अजीब उद्विग्नता होती जाती थी। आपने श्री गुरुदेव से कहा कि आपका वियोग मेरे लिए असह्य है। इस पर श्री गुरुदेव ने उन्हें आत्मा की अमरता का उपदेश दिया जिससे इन्हें कुछ शान्ति हुई। कुछ समय पश्चात् श्री गुरुदेव ने तुलसीदल एवं यमुनाजल को ग्रहण कर भगवत् चिन्तन करते २ पाँचभौतिक शरीर को त्याग कर भगवत् धाम की ओर प्रस्थान किया। उस समय मथुरा, वृन्दावन एवं

रमणरेती के सन्तों ने एकत्र हो भगवन्नाम संकीर्तन करते हुए वृद्ध महात्मा श्री ज्ञानदास जी को यमुना में जल-समाधि दी। उसी समय सब सन्तों ने आपको "श्री कार्ष्णि कलापाचार्य" की पदवी प्रदान की।

तीर्थाटन--तदनन्तर श्री स्वामी कार्ष्णि गोपालदासजी कतिपय कार्ष्णि महात्माओं के साथ श्रीजगन्नाथजी, द्वारकानाथजी, बद्री-नारायणजी आदि तीर्थों की यात्रा को गये। मार्ग में भगवद्भक्ति का प्रचार-कार्य भी अनवरत चलता रहा। यात्रा श्री रमणरेती में आकर पूर्ण हुई। इसी समय आपने वैराग्य भास्कर एवं भक्ति-प्रकाश आदि ग्रंथों की रचना की।

चर्य्या--श्री स्वामीजी ने वर्ष को तीन भागों में विभक्त कर लिया था। उसी के अनुसार वे प्रायः चार २ मास तीन स्थानों में निवास करते थे। ग्रीष्म ऋतु में वे हरिद्वार कनखल श्री चेतन देवाश्रम में रहकर श्रीमद्भागवत तथा उपनिषदों की कथा करते थे। सहस्रों श्रद्धालु भक्त उनके दर्शनों को तथा कथा श्रवण को आते थे। ये सत्सङ्ग के दिन बड़े आनन्द से व्यतीत होते थे। वर्षा-ऋतु में आप मथुरा, श्री वृन्दावन तथा रमणरेती रहते थे। श्रीवृन्दावन में यदाकदा आप रासलीला भी देखने जाते थे। एक दिन एक महात्मा ने आपसे कहा कि "आप इतने उच्च कोटि के विद्वान् वेदान्त के ज्ञाता और महात्मा होकर भी यह रास, बच्चों का नाच देखते हैं, यह क्या रहस्य है" महात्मा के वाक्य सुनकर आप मुस्कुराये और बोले--महात्मन्! रासबिहारी की लीला के रहस्य को जानना बड़ा कठिन है। स्वयं श्री महादेवजी ने अपने श्रीमुख से कहा है "रहस्यातिरहस्यं च यत्पृच्छसि वरानने" हे उमा! यह जो तुम पूछ रही हो, यह बड़ा गूढ़ रहस्य है। महात्मा इससे संतुष्ट नहीं हुये और बोले--रासलीला में बना हुआ स्वरूप (श्री कृष्ण) यदि आपके गले में माला डालदे तो हम आपके इस वचन

को स्वीकार कर लेंगे। निदान एक दिन रात्रि के समय जब टिकारी वाली रानी के मंदिर में रास प्रारम्भ हुआ। श्रीस्वामीजी उन महात्माजी तथा अन्य सन्तों के साथ एक कौने में, अन्धेरे में ध्यान लगाकर बैठ गए। थोड़ी देर में, रास में सखियों सहित नृत्य करते २ भगवान् श्री कृष्ण उसी स्थान पर आ गये, जहाँ श्री स्वामी जी ध्यान मग्न विराजमान थे। अपने गले से माला निकाल कर और श्री स्वामीजी के गले में डाल कर श्री कृष्णजी कूद कर रास-स्थान पर चले गये और सखियों में नृत्य करने लगे। इस अलौकिक चमत्कार को देखकर जनता चकित रह गई। वे महात्माजी भी स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े और अपने अपराध की क्षमा मांगी। श्री स्वामीजी ने उन्हें रास का रहस्य समझाया। जनता ने श्री स्वामीजी का जय २ कार किया।

शरत् काल में श्री स्वामीजी जयश्री ग्राम (भरतपुर राज्य) में रहते थे। यहां उनके परम श्रद्धालु अनन्य प्रेमी सेवक श्री बिहारीलालजी तथा नन्दलाल नाम के दो यादव भ्राता थे। बड़े पूरे जमीदार थे। अपने मकान से थोड़ी दूर कुछ भूमि में उन्होंने एक परमहंस आश्रम नामक स्थान बना दिया था। यहीं श्री स्वामीजी की कुटी थी। आप उसमें रहते, भजन करते, उपदेश, प्रवचन करते। जयश्री से थोड़ी दूर सीकरी ग्राम निवासी श्री पं० जगन्नाथप्रसादजो भी आपकी सेवा में रहते थे वे श्री स्वामीजी से कुछ पढ़ते, शास्त्र विषय में चर्चा करते थे। आप एक अच्छे सिद्धहस्त वैद्य हैं, संस्कृत के वड़े अच्छे विद्वान् हैं, कर्मकाण्ड तथा मन्त्र-तन्त्र विद्या के मर्मज्ञ हैं।

कार्ष्णि कलापाचार्य श्री स्वामीजी यदा कदा अपने जन्म स्थान जि० हजारा (सीमा प्रान्त) में भी जाते थे। वह प्रदेश यवन प्रधान था। तथापि वहां सत्संग तथा अपने प्रवचन द्वारा वे जनता को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते थे। एक बार आप अपने

श्रद्धालु प्रेमियों के आग्रह से हरिपुर हजारा गये। वहां कुछ काल ठहर कर श्री अमरनाथजी की यात्रा को गये। पुनः अपने जन्म-स्थान बगड़ा में आये। यहां आपने सत्संग तथा उपदेश द्वारा लोगों को कृत-कृत्य किया। ग्राम वासियों में जो मनोमालिन्य था उसे अपने वचनामृत द्वारा दूर किया। सबको साथ रहने मिल-जुल कर रहने का उपदेश दिया। मानसहरा में आपने मूर्तिपूजा तथा श्राद्ध मण्डन पर बड़ा प्रभावशाली प्रवचन किया। उसे सुनकर नास्तिक भाव रखने वालों की बुद्धि भी चकित रह गई और वे स्वामीजी के अनन्य सेवक बन गये।

एक दिन एक मारवाड़ी सेठ चेतनदेव आश्रम कनखल में आपका प्रवचन सुनने आये। सुनकर स्वामीजी महाराज से प्रार्थना की कि "आप व्रज निवास के प्रेमी हैं, ये ३ लक्ष रुपये मैं आपकी भेंट करता हूँ, आप इनसे अपनी कुटिया और भगवान् का मन्दिर बनवाकर भजन करें" स्वामीजी मुस्कुराये और कहा--सेठजी ! सन्तों के लिये तो "ग्रामे ग्रामे कुटी रम्या, निर्झरे निर्झरे जलम्। सर्वत्र कुटी और सर्वत्र मन्दिर हैं, आपकी उदारता को धन्यवाद, आप जहां उचित समझें, अपने रुपये को सदुपयोग में लगावें" स्वामीजी के त्याग को देखकर सेठजी को अति आश्चर्य हुआ और वे अवाक् रह गये।

स्वर्गारोहण—हरिद्वार से आप रमणरेती आश्रम में पधारे। यहाँ श्री राधारमण विहारीजी के दर्शन करके प्रेमाश्रुओं से गद्-गद् होकर निम्न स्तुति करने लगे—

हेरमणरेती रमणप्रिय, वृषभानुजे घनश्यामजी।
निज पाद पङ्कज में निरन्तर, दे हमें विश्रामजी॥
विन आपके इस लोक में, नहिं लगत कुछ अभिरामजी।
तुम युगल के सम और कोई, है नहीं सुखधामजी॥
तव दर्शकर यह मन हमारा, तृप्त होवत है यथा।

त्रैलोक सम्पति पाय कर, नहिं तृप्त होवत है तथा ।।
उभ आप कार्ष्णि कलाप के, सर्वस्व पुन पितु मात हैं ।
वे जीव जग में धन्य हैं, जो दर्श तुमरे पात हैं ।।

पुन: कुछ दिन आश्रम में निवास करके शीत ऋतु आने पर आप जयश्री ग्राम आगये । यहां परमहंसाश्रम में, अपनी कुटी में निवास करके भगवद्भजन करने लगे । भक्त बिहारीलाल तथा नन्दलाल दोनों भ्राता आपकी अहर्निश सेवा में रहते । श्री स्वामी जी ने दोनों भ्राताओं को संसार का स्वरूप, कमल पत्रवत् उससे निर्लिप्त भाव से रहने का उपदेश दिया । इस उपदेश से उनका मोह दूर हुआ उन्होंने त्याग के मर्म को समझा तथा वे दोनों भ्राता भी श्री स्वामीजी की अनवरत सेवा करते २ भगवद्भजन करने लगे । एक दिन प्रात: काल श्री स्वामीजी जब ध्यानावस्थित निम्न स्तुति कर रहे थे--

करिये यदुनाथ सनाथ मुझे, अब आन पड़ा प्रभु द्वार तुम्हारे ।
अब और न ठौर रही जनको, बिन आप कृपानिधि दीन पुकारे ।।
मम पाप अनेक विचार विभो, परित्याग करो नहिं नन्द दुलारे ।
तव नाम दयालु सुना हमने, निगमागम सन्त निरन्त उचारे ।।

दोनों भ्राताओं ने साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम किया और बैठ गये । भजनोपरान्त स्वामीजी ने कहा--युगल बन्धुओ ! अब तुम जितनी हमारी सेवा कर सकते हो, करलो, अब यह नश्वर शरीर जाने वाला है । हम एक मास यहीं निवास करेंगे । स्वामीजी के वचन सुनकर दोनों भ्राताओं ने उनके चरणों में अपना मस्तक रख दिया और फूट २ कर रोने लगे । स्वामीजी ने उन्हें धैर्य दिया । संसार की गति को समझाया, गीता के श्लोकों द्वारा उनका मोह दूर किया । निरन्तर वे दोनों सेवा में लग गये । खादी की एक कोपीन, अलफी तथा अँगोछा गेरू से रंग कर रख दिया । स्वामी जी की आज्ञानुसार उन्हें श्री पतितपावनी गङ्गा और श्री यमुनाजी

का जल ही पीने को दिया गया। शारीरिक दशा क्षीण होती देख-कर भक्त बन्धुओं ने सीकरी से पं० जगन्नाथप्रसादजी वैद्य को बुला लिया। पुनः श्री स्वा० भास्करानन्दजी, स्वा० परमानन्दजी, कार्ष्णि श्री स्वामी हरनामदासजी को शीघ्र आने के लिये पत्र डाल दिये, तथा पं० शिवशरणजी, श्री विष्णुदासजी सूरी को बगड़ा पत्र डाल कर सूचना देदी। सूचना मिलते ही उक्त सज्जन वृन्द जयश्री आ उपस्थित हुये। श्री का० स्वामी हरिनामदासजी हैदराबाद थे, वे नहीं आ सके। एक दिन प्रातः सबने स्वामीजी से प्रार्थना की कि "प्रभो सेवकों को क्या आज्ञा है ?" आपने बड़ी शान्ति और प्रेम से सबको समझाया "यह संसार एक मुसाफिरखाना (धर्म-शाला) है, यह जीव यात्री है। यात्री ने अवश्य यात्रा करनी है। वह सर्वदा धर्मशाला में नहीं रहेगा। कोई दो दिन आगे कोई दो दिन पीछे, सबने यात्रा पर जाना है। अतः यदृच्छा लाभ सन्तुष्ट रहो, सुख दुःख में समान भाव रखो, द्वन्द्वों से तथा ईर्षा द्वेष से रहित रहो। कार्य की सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखो और प्रभु का सर्वदा स्मरण करते रहो, वह दयालु तुम सब का कल्याण करेगा यह ध्यान सर्वदा रखो--

ठाकुर हमरे रमणविहारी, हम हैं रमणविहारी के।
साधु-सेवा धर्म हमारा, काम क्या दुनियादारी से॥
कोई भला कहे चाहे बुरा कहे, जब हो चुके रमणविहारी के।

सम्वत् १९७९ विक्रमी पौष शुक्ला ६ प्रातः काल ४ बजे का समय था। भक्त बिहारीलाल को आज्ञा देकर गंगा यमुना का जल मँगाया, भक्तजी ने स्वामीजी को स्नान कराया, खादी की कोपीन अलफी तथा अङ्गोछा, जो नवीन रखे थे पहनाये। अब कार्ष्णि कलापाचार्यजी महाराज पद्मासन लगा कर बैठ गये। ध्यान में निमग्न हो गये। उस समय उनके मुख की शोभा अलौकिक थी। देदीप्यमान मस्तक से प्रकाश की किरणें निकल रही थीं, शीतल

मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी, पक्षी हरिनाम संकीर्तन कर रहे थे। सब भक्त-मण्डली टकटकी लगाकर चकोर की तरह स्वामी जी की मुख छवि की ओर निहार रही थी। सब की आंखों से निरन्तर मेघ झड़ी के समान अश्रुपात हो रहा था। अचानक उसी समय स्वामीजी ने अपने नेत्र खोले, भक्त-मण्डली की ओर प्रेम पूर्ण दृष्टि डाली, कुछ मन्द २ मुस्कराये पुनः जय श्री कृष्ण भगवान् की, कहकर हरिः ओ३म् तत्सत् की मधुर ध्वनि करते २ पौने पांच बजे इस नश्वर शरीर को त्याग दिया और उनकी आत्मा परमात्मा में जाकर मिल गई। ग्राम की सारी जनता एकत्रित हो गई। हरि नाम की ध्वनि होने लगी। सुन्दर २ फूलों से सजा कर आपका विमान बनाया। पुष्पमाला चन्दन आदि से पूजन किया पुनः उस सुन्दर विमान को श्री मथुराजी लाये। यहां ध्रुव घाट पर जल-समाधि दी। पुनः सब लोग हरिनाम संकीर्तन करते २ अपने स्थान पर चले गये।

वार्षिक उत्सव का प्रारम्भ——श्री कार्ष्णि कलापाचार्यजी के स्वर्गारोहण के ८ वर्ष पश्चात् उनके श्रद्धालुओं तथा प्रेमियों के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि कोई दिन ऐसा निश्चित होना चाहिये, जब सब लोग एकत्रित होकर श्री स्वामीजी की स्मृति में, भजन कीर्तन, गोपाल विलास, गीता आदि का अखंड पाठ करें। कुछ सन्त महात्माओं के उपदेश भी हों। कार्ष्णि कलापाचार्य श्री स्वामी गोपालदासजी महाराज की जन्म तिथि पर उत्सव मनाने का निश्चय किया। इस कार्य को प्रारम्भ करने में स्वर्गीय महन्त श्री प्रह्लाददासजी ने विशेष उत्साह दिखाया। वे रमणरेती आश्रम के महन्त थे अतः उनके सहयोग तथा का० श्री स्वामी हरनामदासजी, का० श्री स्वामी कृष्णानन्दजी तथा अन्य प्रेमी सज्जनों की सम्मति से प्रथम उत्सव सम्वत् १९८८ फाल्गुन सुदी प्रतिपदा को रामद्वारा, कल्याण वाटिका में मनाया गया। उक्त स्थान में स्वामीजी के प्रेमी भक्त एकत्रित होकर उत्सव मनाते थे। यह क्रम ७ वर्ष तक रहा।

पश्चात् यह उत्सव रमणरेती आश्रम में ही मनाने का निश्चय किया। अब यह उत्सव फाल्गुण सुदी प्रतिपदा, द्वितीया तथा तृतीया को तीन दिन मनाया जाने लगा। उस समय रमणरेती में सघनवन था। एक दो महात्मा भगवद्भजन वहाँ करते थे। एक कुटी में श्री राधारमणबिहारीजी की मूर्ति विराजमान थी। एकान्त-स्थान था, पर था बड़ा सुन्दर। पहले कल्याण-वाटिका से भगवान् का डोला यहाँ आता था। अब उत्सव यहां होने से डोला रमणरेती की ही परिक्रमा करने लगा और उत्सव का स्वरूप बदलने लगा। जनता पर्याप्त संख्या में आने लगी। सन्त और महात्माओं की संख्या भी बढ़ने लगी। कई नवीन कुटिया भी बन गईं। सम्वत् २००३ में मथुरा निवासी (बम्बई प्रवासी) सेठ मदनमोहनजी ने श्री राधारमणबिहारींजी का पक्का मन्दिर बनवा दिया। पश्चात् उन्होंने ही अपने पुत्र की स्मृति में एक पक्का सुन्दर शिवालय भी बनवाया। बहुत समय तक सारे आश्रम में बस ये दो स्थान पक्के थे और पाकशाला (भण्डार) गौशाला, तथा कुटिया सब कच्चे थे। अब पाकशाला और गौशाला, दोनों स्थान पक्के बन गये हैं। इस समय आश्रम में ५०-६० कुटिया हैं जो सब घास फूस की हैं और रमणरेती में मन्दिर के चारों ओर गोलाकार में हैं।

भूतपूर्व महन्त—श्री महन्त का० प्रह्लाददासजी आश्रम के पहले महन्त थे। उन्होंने श्री स्वा० हरनामदासजी की सन्निधि में २० वर्ष तक आश्रम की अनवरत सेवा की। वे श्री स्वामीजी के पूर्ण कृपापात्र थे। महन्तजी में जहां अनेक गुण थे वहां सन्तसेवा उनका मुख्य लक्ष्य था। वे प्राय: कहा करते थे "साधु सेवा धर्म हमारा" इसी कारण वे सर्वप्रिय थे। कुशल प्रबन्धकर्त्ता, मधुरभाषी, गुरु-चरणानुरागी तथा भगवद्भक्त थे। साधु सेवा के लिये वे दिन हो या रात पर्वाह नहीं करते थे। सारे आश्रम का प्रबन्ध उनकी देख रेख में २० वर्ष तक सुचारु रूप से चला। पर कराल काल ने

उन्हें अचानक ४ वर्ष पूर्व आश्रम से पृथक् कर दिया। कहते हैं जिसकी यहां, संसार में आवश्यकता होती है उसकी वहां भगवान् के भी आवश्यकता होती है। श्री महन्तजी का अभाव अभी तक सबके हृदय में खटकता है। आज आश्रम में उनके समान सर्वकार्यदक्ष कोई नहीं दिखलाई देता। श्री स्वामीजी को महन्तजी का अभाव विशेष रूप से खटकता है। क्योंकि महन्तजी की उपस्थिति में श्री स्वामीजी आश्रम की ओर से निश्चिन्त रहते थे अस्तु।

गौशाला--आश्रम में एक गौशाला है। इस समय १२५ के लगभग गौ आश्रम में हैं। उनका दूध भगवान् को भोग लगाकर सन्तों और महात्माओं को वितरण कर दिया जाता है।

आश्रम--वैसे यह उदासीन सम्प्रदाय का आश्रम है। पर सनातन धर्मावलम्बी कोई भी सज्जन, संत या गृहस्थ यहां ठहर सकते हैं किसी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं है। सबमें समान भाव है। जिस प्रकार भी जो चाहे भगवत्प्रसाद को यहां ग्रहण कर सकता है। यदि कोई स्वयं पाकी है, सूखा सामान ले सकता है। बना-बनाया प्रसाद ले तो भोजन कर सकता है। सबके साथ उदारता का व्यवहार है। प्रातः लस्सी, चाय, चणे आदि का अल्पाहार, मध्याह्न को पूर्ण भोजन, पुनः सन्ध्या को भोजन यहाँ मिलता है। विशेषता यह है कि यहां के प्रधान स्वामीजी महाराज भी उसी प्रसाद को सबके मध्यमें बैठ कर पाते हैं, जो भगवान् के भोग लगता है। यहां उनके लिये तथा किसी अन्य के लिये कोई विशेष प्रवंध नहीं होता। जो भगवान् के भोग लग गया वही प्रसाद सबको मिलता है। एवं जिस प्रकार सब संतों की घास-फूस की कच्ची कुटियां हैं उसी प्रकार श्री स्वामीजी की भी घास-फूस की कच्ची कुटिया है। जो भगवान् के मंदिर के ठीक सामने है। वहीं श्री स्वामीजी का आसन है। वहीं आप विराजते हैं।

पाठशाला--आश्रम में एक पाठशाला भी १०-१२ वर्ष से है

उसमें संत तथा विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते हैं। उन्हें वाराणसी विश्व-विद्यालय की परीक्षा भी दिलाई जाती है। छात्रों को भोजन, वस्त्र तथा पुस्तकें यहां मुफ्त दी जाती हैं। एक संस्कृत के विद्वान् पं० हरदत्तशर्मा यहां पाठशाला में अध्यापन कराते हैं। अध्यापन कार्य के अतिरिक्त आप आश्रम का पौरोहित्य कार्य भी करते हैं। बड़े मिलनसार, साधुस्वभाव, तथा भगवद् भक्त हैं।

पाकशाला––पाकशाला का दूसरा नाम भण्डार है। यहां के प्रबंधक को कोठारीजी कहते हैं। कोठारीजी का नाम श्री स्वामी स्वरूपानंदजी है, आप संन्यासी हैं। आप अहर्निश संतसेवा में लगे रहते हैं। यदि कोठारीजी को हम आश्रमकी "मा" कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। ६५-६६ वर्ष की आयु होने पर भी आप युवकों से अधिक बल, उत्साह और धैर्य रखते हैं। सैकड़ों व्यक्तियों को भोजन बनाकर खिलाना आपके लिये साधारण काम है। बड़े कर्मठ, सहनशील और त्यागी हैं। आप जिस समय, जिस वस्तु की आवश्यकता समझें उनसे प्राप्त कर सकते हैं। बड़े हँस मुख हैं। सारे आश्रम की भोजन व्यवस्था आपके हाथ में है। निष्काम सेवाभाव से इस कार्य को सुचारु रूप से आप कर रहे हैं।

आश्रम के कोने में एक छोटी सी वाटिका है। जहाँ श्री राधारमणबिहारीजी महाराज के शृङ्गार के लिये तुलसी तथा सुगन्धित पुष्पों के पौधे हैं। इस वाटिका के संरक्षक एक बहुत वृद्ध सन्त श्री सियारामदासजी हैं। आप मैथिल हैं। ९०-९५ वर्ष की अवस्था है। प्रातः और सायंकाल जब आप पुष्प और धूप लेकर आश्रम में श्री स्वामीजी का पूजन कर वीणा (इकतारा) बजाते हुए परिक्रमा करते हैं तब साक्षात् श्री नारदजी सदृश प्रतीत होते हैं।

आश्रम में दो कूप हैं। एक आश्रम से बाहर उद्यान में, दूसरा
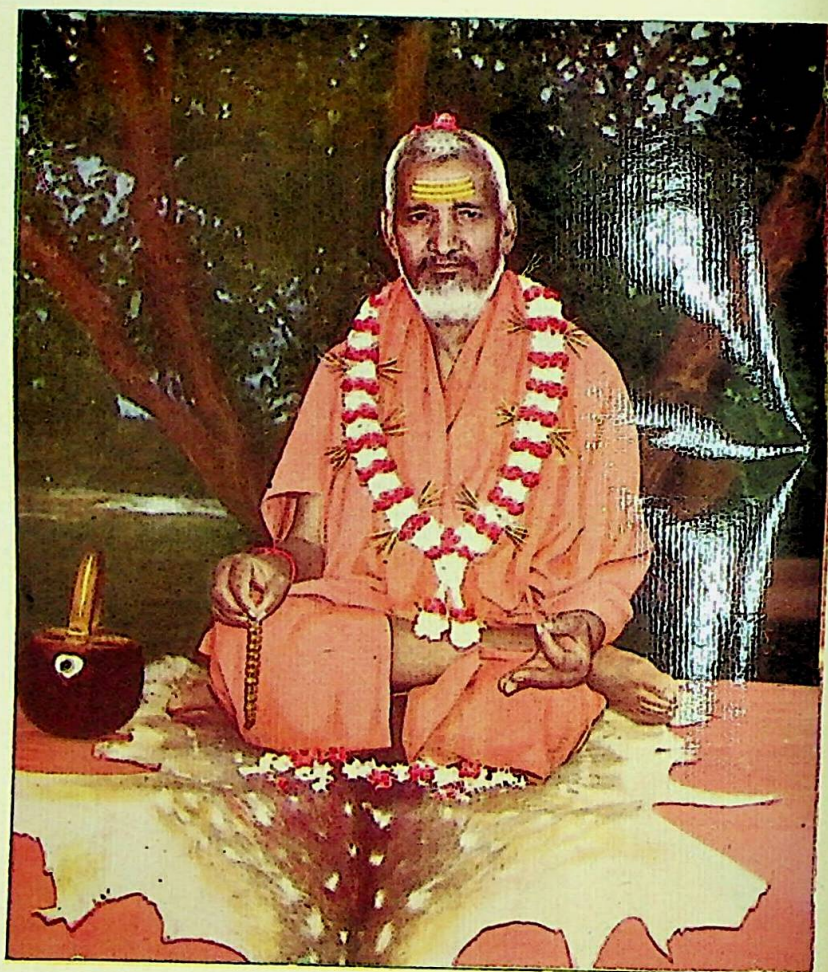
श्रीमत्परमहंसोदासीन श्री १०८ स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजी महाराज
श्री रमणरेती, महावन (मथुरा).

आश्रम के भीतर, संतों के स्नानादि के लिए है। आश्रम में ८ नल कूप (हैण्ड पाइप) हैं। एक गौशाला में, एक पाकशाला में, एक उद्यान में, दो आश्रम में, और दो आश्रम से बाहर हैं।

आश्रम से २-३ फर्लाङ्ग की दूरी पर दक्षिण दिशा में श्री यमुनाजी हैं तथा पश्चिम दिशा में २-३ फर्लाङ्ग पर भक्त-प्रवर रसखान की समाधि है। यहाँ से १ मील पूर्व महावन, १॥ मील श्री ब्रह्माण्ड घाट तथा पश्चिम में १ मील श्री गोकुल है।

आश्रम के प्राण--श्री स्वामी कार्ष्णि हरनामदासजी महाराज को आश्रम का हृदय या प्राण कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। आश्रम की इतनी श्री-वृद्धि आपके तप तथा सद्भाव से ही हुई है और दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। आप बाल-ब्रह्मचारी हैं प्रभु-भक्ति-परायण, सन्त-सेवी तथा मितभाषी हैं। प्रभु श्यामसुन्दर में अटूट श्रद्धा है। आश्रम के महंत न होते हुये भी वे आश्रम के सर्वेसर्वा हैं। बड़े मिलनसार तथा मधुरभाषी हैं। प्रत्येक व्यक्ति, जो उनके सम्पर्क में एक बार आ जाता है, यही समझता है कि स्वामीजी की मेरे ऊपर अपार कृपा है। लोभ आपको छू तक नहीं गया है। जो पैसा आता है उसे भगवत्सेवा तथा सन्त-सेवा में लगाना परम पुण्य समझते हैं। भगवान् का कीर्तन करते समय ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि शरीर की सुधबुध नहीं रहती। आश्रम में प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान रखते हैं। आश्रम में स्वामीजी के आते ही चहल-पहल आरम्भ हो जाती है, नवीन प्राण का संचार हो जाता है। स्वामीजी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। वे बड़े उदारमना हैं। भगवान स्वामीजी को दीर्घ-आयु प्रदान करें।

श्री रमणरेती आश्रम का यह संक्षिप्त परिचय पाठकों की सेवा में सादर समर्पित है।

सतां महात्मनाञ्च पादपद्माश्रितः—
रामचन्द्र शर्मा।

अपनी बात

सन् १९५४ फरवरी का महीना था। मनमें अकस्मात् विचार उत्पन्न हुआ कि अब राजकीय सेवा से निवृत हो रहे हैं। अब रमणरेती आश्रम चलना चाहिये। यह बहुत दिनों से अभिलाषा थी, १०-१२ वर्ष पूर्व एक बार श्री स्वामीजी के दर्शन किये थे तब से, इस प्रबल इच्छा को दबाये बैठा था, अब वह समय समीप आ गया। फाल्गुण शुक्ला प्रतिपदा, द्वितीया तथा तृतीया को आश्रम में उत्सव होता है यह मैं श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी से सुन चुका था। उनसे परिचय-पत्र मँगाकर मैं फाल्गुण कृष्णा त्रयोदशी को आश्रम में पहुँचा। स्वामीजी, सन्त महात्माओं को निमन्त्रण देने वृन्दावन गये थे। इस समय आश्रम में मेरा कोई परिचित नहीं था। अत: मुझे वहाँ ठहरने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई। अगले दिन श्री स्वामीजी आगये, मैंने दण्डवत् प्रणाम किया, स्वामी जी ने मुस्करा कर पूछा—"प्रसन्न हो ?" "क्या आपने मुझे पहचान लिया ?" मैंने प्रश्न किया, "अपनी प्रिय आत्मा को कौन नहीं पहचानता, आप अलवर वाले शास्त्रीजी हैं" हँसते हुये श्री स्वामीजी ने कहा। यह १०-१२ वर्ष के पश्चात् मेरा उनसे मिलन था। उसी दिन वैद्यराज श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी आगये और तीन दिन तक उत्सव में आनन्द से समय व्यतीत हुआ। श्री स्वामीजी के व्यक्तित्व की छाप मेरे हृदय में उसी दिन ऐसी पड़ी कि इन ७-८ वर्षों में मेरे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, अर्थात् मैंने अपने आपको स्वामीजी के समर्पण कर दिया है। मैं उत्सव में तो प्राय: प्रति वर्ष जाता ही हूँ, पर प्रतिवर्ष २-३ बार उनके दर्शन को अवकाश मिलते ही चला जाता हूँ। वहाँ उनकी सन्निधि में मुझे अपार आनन्द मिलता

है। वहां मैं सांसारिक झगड़ों को प्रायः भूल सा जाता हूँ। कभी-कभी १५ दिन तक आपके पास ठहर कर सत्सङ्ग का लाभ उठाता हूँ। आपके सान्निध्य से मुझे अपने जीवन में बड़ा लाभ हुआ है। वैसे स्वामीजी की भी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। उनका वरद हस्त मेरे ऊपर है।

२-३ वर्ष की बात है, एक दिन मैं और श्री स्वामीजी, उन की कुटिया में बैठे थे, श्री स्वामीजी महाराज, कार्ष्णि कलापाचार्य महाराज की लीलाओं का वर्णन कर रहे थे। उनकी विद्वत्ता के विषय में चर्चा करते २ "कार्ष्णि कण्ठाभरणम्" ग्रन्थ का जिक्र आया। यह ग्रन्थ संस्कृत में है। इसकी टीका भी "नरोत्तमीय टीका" नाम से श्री स्वामीजी ने स्वयं की है। इस ग्रन्थ में दश दशक, एक शत श्लोक हैं। प्रत्येक दशक में भिन्न २ छन्द हैं। ग्रंथ भक्ति-विषयक है। सचमुच भक्तों का कण्ठाभरण, गले का हार है। पढ़ते २ मनुष्य आनंद-विभोर हो जाता है। हाँ, यह ग्रंथ सर्व प्रथम सं० १९६६ में मुरादाबाद "लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय" में छपा था। संस्कृत का अधिक पठन-पाठन न होने के कारण या विद्वज्जनों की उपेक्षा के कारण यह ग्रंथ पुनः नहीं छप सका। उस दिन स्वामीजी ने मुझ से कहा कि "कण्ठाभरणम्" का भाषा में अनुवाद होना चाहिये ताकि संस्कृत न जानने वाले भी श्री का० कलापाचार्यजी की अमरवाणी, सुधोक्ति का रसास्वादन कर सकें। मैंने अपने आपको इस कार्य के लिए असमर्थ पाया और श्री स्वामीजी से निवेदन किया--

"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।"

कहां मैं क्षुद्र अल्प मति और कहां श्री स्वामीजी की अनुपम कृति। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की किन्तु स्वामीजी के आग्रह से मैं निषेध नहीं कर सका। आश्रम के पुस्तकालय से पुस्तक लेकर मैं घर, अलवर आगया। यहाँ मैंने इस पुस्तक का ३-४ बार

पारायण किया। पुनः ३-४ श्लोकों का भाषानुवाद करके मेरे परम कृपालु मित्र वेदान्ताचार्य डा० कृष्णदत्तजी भारद्वाज एम०ए०, पी०-एच० डी० के पास नई देहली भेजा। उन्होंने उसे पसन्द किया और मेरे उत्साह को बढाया और भाषानुवाद शीघ्र करने की प्रेरणा की। इस प्रकार इसके अनुवाद में एक वर्ष लग गया। अब इसे छपवाने के लिये पैसे का प्रश्न सामने आया। कागज की मँहगाई तथा छपाई का भाव अधिक होने के कारण फिर मौन-धारण करना पड़ा। इस वर्ष पुनः प्रसङ्ग चला और कुछ दांनी सज्जनों ने इसमें सहयोग देने का वचन दिया। इस ग्रन्थ के छपाने में श्री का० साधुरामजी शास्त्री की बार २ प्रेरणा मिलती रही। उनके विशेष उत्साह से यह ग्रंथ शीघ्र छप सका। पुनः मालूम हुआ कि प्रथम अप्रेल से कागज के दाम बढ रहे हैं, अतः यदि मार्च में कागज ले लिया जाय तो लाभ रहेगा। इसके लिए आश्रम में तो कोई रुपया था ही नहीं, अतः भगवत्प्रेरणा से भगवद्भक्त मथुरा निवासी श्री श्यामलालजी बागला ने कागज के लिए रुपये दे दिये और कागज श्री रमेशचन्द्रजी शर्मा "शर्मा ब्रादर्स इलैक्ट्रिक प्रेस" अलवर वालों से खरीद लिया। छपाई का प्रवन्ध भी उक्त प्रेस में ही किया गया। क्योंकि उक्त प्रेस राजस्थान में सर्व श्रेष्ठ है। इसके अधिष्ठाता श्री रमेशचन्द्रजी शर्मा बड़े सज्जन, भगवद् भक्त तथा सन्त-सेवी हैं। इस ग्रंथ के छापने में शर्माजी का हमें अमूल्य सहयोग मिला। अतः हम उनके आभारी हैं। भूमिका लिखने में मुझे मेरे द्वितीय पुत्र सुरेशचन्द्र शर्मा एम० ए० शास्त्री, साहित्य-रत्न से बड़ी सहायता मिली है। प्रूफ संशोधन में श्री पं० फतहचन्दजी (अलवर निवासी) रिटायर्ड गवर्नमेंट प्रूफ रीडर का अच्छा सहयोग मिला। अतः मैं इनका कृतज्ञ हूँ। इसी समय श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी ने चतुरोपनिषद् को भी इस ग्रंथ के साथ छपवाने की सम्मति दी। अतः श्री स्वामीजी की अनुमति से चतुरोपनिषद् भी इस ग्रंथ के अन्त में लगा दिया गया है।

इस ग्रन्थ के अनुवाद में अनेक त्रुटियाँ अवश्य रह गई होंगी अत: उनके लिये श्रद्धालु प्रेमी तथा विद्वज्जन उदारतापूर्वक क्षमा करने की उदारता दिखलायेंगे। यदि वे उन त्रुटियों को बताने की कृपा करेंगे या कोई नवीन बात बतायेंगे तो भविष्य में यदि इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण छपा तो उन त्रुटियों को अवश्य दूर करने का प्रयत्न किया जायेगा। वैसे--

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति साधव:॥

उक्त उक्ति के अनुसार सज्जन समाधान करने की कृपा करेंगे।

॥ हरि: ओ३म् तत्सत् ॥

विदुषां भक्तानाञ्च चरणरेणू--
रामचन्द्र शर्मा
२७६ रामधाम, मोटर स्टैण्ड
अलवर (राजस्थान)।

गुरु पूर्णिमा सं० २०१८।

आश्रम के वर्तमान महन्त

श्री रमणरेती आश्रम के वर्तमान महन्त श्री स्वामी कार्ष्णि ब्रह्मर्षिजी हैं। "यथा नाम तथा गुण:" इस उक्ति के अनुसार आप वास्तव में ब्रह्मर्षि ही हैं। सुन्दर भव्य ललाट, जटाधारी, संस्कृत के विद्वान्, श्रीमद्भागवत् के प्रवक्ता आदि अनेक गुण आप में विद्यमान हैं। आप सदाचारी, ब्रह्मचारी, उदारमना, हँसमुख सन्त हैं। प्रभु श्यामसुन्दर के चरणों में प्रीति, गुरुदेव के पाद-पद्म में अनन्य भक्ति तथा सन्त सेवा आपके जीवन का लक्ष्य है।

अनुवादक के प्रति

इस ग्रन्थ के अनुवादक पं० रामचन्द्र शर्मा शास्त्री आश्रम के बड़े प्रेमी, भगवद्भक्त विद्वान् हैं। इनका ७-८ वर्ष से, आश्रम में आना जाना रहता है, अतः आश्रम से इनका घनिष्ठ संबंध है। ये प्रायः प्रति वर्ष आश्रम में ३-४ बार आते हैं। पूज्य गुरुदेव की अमर वाणी "कार्ष्णि कण्ठाभरणम्" का भाषानुवाद करने की मैंने उन्हें प्रेरणा की। मेरे आग्रह से उन्होंने इस ग्रन्थ का "पदार्थ तथा भावार्थ" लिखकर भाषा में सरल अनुवाद किया है। यह अनुवाद कैसा हुआ है इसकी परीक्षा विद्वान् भक्तजन ही कर सकेंगे। उक्त शास्त्रीजी ने परिश्रम करके इस लुप्त-प्रायः ग्रन्थ को पुनरुज्जीवित किया अतः वे साधुवाद के पात्र हैं। पण्डितजी आश्रम के कार्यों में बड़ा अनुराग रखते हैं और पूर्ण सहयोग देते हैं। वे आश्रम के अनन्य प्रेमी हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि पण्डितजी इसी प्रकार प्रभु की तथा आश्रम की सेवा भविष्य में भी करते रहें।

श्री उदासीन कार्ष्णि आश्रम, मथुरा
द्वितीय ज्येष्ठ (अधिक मास)
कृष्णा ३० सं० २०१८।

कार्ष्णि हरनामदास
श्री रमणरेती आश्रम
मु० महावन (मथुरा)।

॥ ॐ ॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेश नाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥ १ ॥

झाँकी श्रीराधारमणबिहारीलालजी की

श्री उदासीन कार्ष्णि आश्रम, श्री रमणरेती, महावन (गोकुल) मथुरा.

विद्युत द्युति श्री राधिका, सजल जलद घनश्याम ।
युगल रूप नयनन बसो, नहीं और सों काम ॥
पकरो बाँधो प्रेम गुण, यह मन माखन चोर ।
इनहिं तजत तव हीं ग्रसे, यह कलि काल कठोर ॥
दृग मग हृय भीतर धरो, पलक कपाट लगाय ।
रे मन चरणहिं गहि रहो, भाग कहाँ पुनि जाय ॥
श्री राधा हरिनाम ले, रहियो बन कर दास ।
पावें परमानन्द मन, लखि गोपाल विलास ॥

॥ हरि: ओ३म् ॥

❀ श्री वृन्दावन-विहारिणे नमः ❀

श्री कार्ष्णिकण्ठाभरणम्

अथ भुजंग प्रयात रत्न दशकम्

उमा वामपुत्रं गजास्यैकदन्तं ।
सदासिद्धिसिन्धुं महाबुद्धिमन्तम् ॥
स्वविघ्नापहन्तार मिन्द्रादिमान्यं ।
नमन्त्यात्मदेवं च केचिद्वदान्यम् ॥१॥

गुरून्भागवतान्नत्वा भगवन्तं भवापहम् ।
भक्ति भगवतीं चैव कुर्वे व्याख्यां यथामति ॥१॥
त्रिदशाविषयं शुभ्रं श्लोक्यं कृष्णाशयाशयम् ।
क: समाशंसितु शक्तो मादृशो विषयाशय: ॥२॥
प्रियैर्भागवतै र्वाह्य मन्तर्भागवता तथा ।
प्रेरित: स्वीयभावेन यन्त्रित; क्रिङ्करोति न ॥३॥

इह खल्वपारगम्भीरसंसारपारावारे, विविधवेदनाधारे, मन्मथादि मन्थरमकरागारे, ऽविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशै: पञ्चक्लेशै: क्लेशिताजीवास्ततपरमपारं तरणोपायञ्चाजानन्तो जन्मान्धवन्निमज्जन्त्युन्निमञ्जन्तिच, तत्तारिणीं भगवद्भक्ति तरुण-तर्णिं, विषयवैतृष्ण्यविरतिक्षेपणीशीलितां, परमात्मतत्त्वावबोध-कीलकीलितां, क्लेशकर्मविपाकाशयै रपरामृष्टं भवाम्भोधे: परमपारं परमात्मानञ्च, वैराग्यभास्कर भक्तिप्रकाश गोपालविलासादि निबंधेषुगोपालदासाह्वयोगोपालपादपद्मपरिमलषट्पद:कविवर:प्रदर्श्य, निगमागमरहस्यं स्वहृदिसंलग्न माविष्कुर्वन् कोषोमिधान[1] काव्य-

---

[1] कोष: श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षक: ।

रीतया व्रज्याक्रमेण[२] कार्ष्णिकण्ठाभरणनिबन्धं निबध्नाति। किञ्च केचन तांतरणिमनाश्रिता: (अनीशया शोचति मुह्यमान:) अ० मुं० उ० इत्यादि श्रुते: शोकाकुला: सन्त: (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन) वृ० उ० अ० ६।

(कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:) इत्यादि श्रुतिस्मृति मनुसृत्य कर्मतृणप्लवं समाश्रयन्ति। केचित्तु (प्लवाह्येतेऽदृढायज्ञ-रूपा अष्टादशोक्त[३] मवरं[४] येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति) अ० मुं० उ०। इत्यादि श्रुतिभ्य: कर्मजुगुप्साश्रुत्या तेभ्य उपरता: (न चेदवेदिर्महती विनष्टि। ये एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दु:खमेवापियन्ति) वृ० उ० अ० ६ (सर्वं ज्ञान प्लवेनैव वृजिनंसन्तरिष्यसि) इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यो ज्ञानमाहात्म्यं श्रुत्वा तत्रैव यतन्ते। केचित्तु (यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्र[५] मेवापि नूनं त्वं वेत्थ[६]) सा० त० उ०।

(श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य: शृण्वन्तो पि वहवोयन्न विद्यु:। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट:[७]। क्षुरस्यधारा निशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयोवदन्ति) य० क० उ० (क्लेशोऽधिकतरस्तेषा मव्यक्ता सक्त चेतसाम्) इत्यादिश्रुति स्मृतिभ्यो वाहुभ्यां वारिधि तरणमिव ज्ञानकाठिन्य श्रवणशुष्क-कम्पित हृदयाम्बुरुहा: सन्त: (सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति[८] शान्त उपासीत) सा० छा० उ०। (पुरुष: सपर: पार्थ भक्त्यालभ्य स्त्वनन्यया। मां हि पार्थ विपाश्रित्य येपि स्यु: पापयोनय:। स्त्रियो

---

[२] सजातीयानामेकत्र सन्निवेश:।

[३] षोडशर्त्विज: पत्नीयजमानश्चैतदाश्रयं कर्मोक्तम्।

[४] केवलं ज्ञानवर्जितम्। [५] अल्पम्। [६] जानीषे।

[७] निपुणेनाचार्येण शिक्षित:।

[८] तस्माद्ब्रह्मणो जातं तज्जं तस्मिन्नेव लीयतेतल्लंतस्मिन्नेव स्थिति-कालेऽनिति चेष्टते इति तदनम्।

वैश्यास्तथा शूद्रास्ते पि यान्ति परां गतिम् ।) इत्यादि श्रुतिस्मृति-श्रुत्या प्रफुल्लहृदयारविन्दा भगवदुपासनेसमुत्सुकाः--

(अदृष्ट[१] मव्यवहार्य्यं[२] मग्राह्य[३] मलक्षण[४] मचिन्त्यमव्य-पदेश्यम्[५]) अ० मां० उ० । (यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह) य० तै० उ० । इत्यादि श्रुतिविहितनिर्गुणनिराकारा ऽक्रियाऽनामरूपंभगवन्तं भूमानम् (पराञ्चि[६] खानि[७] व्यतृणत्स्वय-म्भू[८] स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्)[९] य० क० उ० । इत्यादि श्रुत्या साक्षाद् भजितु मक्षमास्तस्मिन्नानानामरूपक्रियां रुचिवैचित्र्या त्प्रकल्प्य प्रतीकोपासना मवलम्बमानाश्चित्तं धारयन्ति । अथवा स्वभक्तभावनया भावितेन परमकारुणिकेन तच्छन्दानुवर्तिना भगवता-धृतेषु दिव्य विविधदेहेषु तं भजन्ति--

तेष्वपि स्मार्तध्येयतया प्रसिद्धानां पञ्चदेवानां परमात्म स्वरूपतां प्रदर्शयं स्तेभ्यो वर्हावतंस परमहंस प्रेमास्पद स्मेरास्य वृन्दावनवीथी विलास स्वजनचित्तचोर नन्दगोपकिशोर प्रीतिं प्रार्थयितुं तावद् गाणपत्यानां गणपतौ भक्तिमाह--उमावामपुत्रमिति मुक्तकेन ।[१०]

केचिद्विघ्नविनाशकामा उमा पार्वती वामः शिवस्तयोः पुत्रं गणेशं नमन्ति नमस्कारादिनाभजन्ति । कथंभूतं गजस्य हस्तिन आस्यमेवास्यं मुखं यस्य स गजास्यश्चासावेकदन्तश्च गजास्यैक दन्तस्तम् ।

---

[१] ज्ञानेन्द्रियाविषयम् । [२] अर्थक्रिया रहितम् ।
[३] कर्मेन्द्रियाग्राह्यम् । [४] अननुमेयम् ।
[५] शब्दाविषयम् । [६] बहिर्मुखानि । [७] इन्द्रियाणि ।
[८] हिंसितवान् सृष्टवानिति तात्पर्यार्थः ।
[९] आत्मानम् ।
[१०] एकेन वृत्तेनाख्यानं मुक्तकम् ।

(अणिमा[११] महिमा[१२] चैव गरिमा[१३] लघिमा[१४] तथा। प्राप्तिः[१५] प्राकाम्य[१६] मीशित्वं[१७] वशित्वं[१८] चाष्ट सिद्धयः) इति मुख्याष्ट सिद्धय स्तथाऽन्यापि यत्र सदा निवसन्त्यतः सदा सिद्धि सिन्धु स्तम्। महद्ब्रह्म विषयामति र्महाबुद्धि स्तया संयुक्तम्। स्वानां भक्तानां विघ्नाः कार्यघातका अन्तरायास्तानपहन्तीति स्वविघ्नापहन्ता तम्।

इन्द्रो देवराज स्तदादिभि र्देव मनुष्यादिभिः कार्यारम्भे मान्यं पूज्यम्। आत्मदेवम् आत्मा चासौ देव आत्मदेव स्तम्, आत्मसु सर्वप्राणिषु दीव्यति द्योतते इति देवस्तमिति वा। वदान्यम् उदारमिति।

पदार्थः--(केचित्) विघ्न विनाशकी इच्छावाले कोई पुरुष (उमावामपुत्रं) पार्वती और शिवजी के पुत्र, श्री गणेशजी की (नमन्ति) नमस्कारादि द्वारा उपासना करते हैं। श्री गणेशजी महाराज (गजास्यैक दन्तं) हाथी के मुख के समान मुखवाले तथा एक दाँत वाले हैं। (सदा सिद्धि सिन्धुं) वे अणिमादि आठ सिद्धियों के सदा समुद्र हैं। (महाबुद्धिमन्तम्) बड़ेबुद्धिमान् हैं। (स्वविघ्नापहन्तारम्) अपने भक्तों के विघ्नों को नाश करने वाले हैं। (इन्द्रादिमान्यम्) इन्द्रादि देवताओं तथा मनुष्यों के मान्य अथवा पूज्य हैं। (आत्मदेवं) वे सर्वप्राणियों में प्रकाश करने वाले हैं। और (वदान्यम्) बड़े उदार तथा दानी हैं।

भावार्थः--सर्व देवों में पाँच देव प्रसिद्ध तथा मुख्य हैं--गणेश, शिव, दुर्गा, सूर्य्य और विष्णु। उनमें परमात्मभाव मानकर श्रद्धालु भक्तजन अपने अपने विश्वास के अनुसार उनकी

---

[११] अणुत्व हेतुः। [१२] महत्त्व कारणम्। [१३] गुरुत्वहेतुः।
[१४] लघुत्वसाधनम्। [१५] वाञ्छित लाभहेतुः।
[१६] दुर्घट कामना पूरकम्। [१७] नियन्तृत्वम्।
[१८] वशीकरणत्वम्।

उपासना करते हैं। उनमें श्रीगणेशजी के उपासकों की श्रीगणपति में सर्वप्रथम भक्ति वर्णन करते हैं। श्रीगणेशजी के भक्त सर्वप्रथम गणपति पूजन करते हैं। क्योंकि श्री गणेशजी विघ्नों के नाश करने वाले हैं। शिव और पार्वती के पुत्र हैं। हाथी के समान उनका मुख है और वे एक दन्त हैं। अणिमा महिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धियाँ सदा उनकी आज्ञा में रहती हैं तथा ब्रह्म ध्यान में सदा उनकी बुद्धि संलग्न रहती है। अपने भक्तों के कार्य में यदि कोई विघ्न आजाता है तो वे शीघ्र ही उस विघ्न को दूर कर देते हैं। स्वर्ग में इन्द्रादि देव तथा भूलोक में मनुष्य शुभ कार्यों के आरम्भ में उनका पूजन करते हैं। वे श्री गणेशजी देव-स्वरूप हैं तथा सबकी आत्मा में प्रकाश करने वाले हैं। वे अपने भक्तों के प्रति बड़े उदार भी हैं।

अथ शैव सेवितां शिवोपासनामाह भवमिति:--

भवं भक्त्यधीनं भवे भव्यदेहं।
कृपालुं मनोजारिकैलासगेहम्॥
कविं ब्रह्मरूपं सुवैराग्यवेशं।
भजन्त्याशुतोषं तु केचिन्महेशम्॥२॥

पुन: केचित्कामविजयकामा: (उमा सहायं परमेश्वरंप्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्। ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्त साक्षि तमस: परस्तात्) इति कैवल्योपनिषदि ध्येयत्वेन प्रसिद्धं तत्पितरं भवं शिवं भजन्ति। कथंभूतं भक्त्याअधीनो भक्त्यधीन स्तं भवे संसारे भक्तानां भव्याय क्षेमार्थंदेहो यस्य स भव्यदेहस्तं कृपालुं निर्हेतुककरुणाकरं, पुन: कीदृशं मनोज: कामदेव स्तस्यारि: रिपुश्चासौ कैलासे कैलासो वा गेहं भवनं यस्य स कैलासगेहस्तं कविं दिव्यदृष्टि ब्रह्म रूपयति प्रकाशयतीति ब्रह्मरूपस्तं ब्रह्मस्वरूपं वा जटाजूट भस्मधारणादि सुष्ठु वैराग्य द्योतको वेषो यस्य तम्।

आशु शीघ्रमेव स्वल्पभजनेन तुष्यतीति आशुतोषस्तं महांश्चासौ ईशो महेशस्तं महेशमिति ।।२।।

पदार्थः--(केचित्) कामको जीतने की इच्छावाले कोई भक्त-जन गणेशजी के पिता (भवं) शिवजी को (भजन्ति) भजते हैं। शङ्कर भगवान् (भक्त्यधीनं) भक्ति के अधीन हैं (भवे भव्यदेहं) वे संसार में भक्तजनों के कल्याण के लिये शरीर धारण करते हैं। (कृपालुं) वे बड़े दयालु हैं। (मनोजारिकैलासगेहम्) शिवजी महाराज कामदेव के शत्रु, भस्म करने वाले तथा कैलासपर्वत पर निवास करते हैं। (कविं) दिव्य दृष्टि वाले (ब्रह्मरूपं) साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। (सुवैराग्यवेशं) वे जटाजूट हैं तथा भस्म धारण करके सुन्दर वैराग्य द्योतक वेष वाले हैं। (आशुतोषं) थोड़ा भजन या स्तुति से शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले देवाधिदेव श्री महादेव हैं।

भावार्थः—अब शिवोपासक भगवान् शङ्कर की इस प्रकार उपासना करते हैं:--भगवान् शङ्कर की कृपा से काम, इच्छाओं को जीता जा सकता है। भगवान् शङ्कर गणपति के पिता हैं। वे थोड़ी सी सच्चे मन से भक्ति करने पर, आक तथा धतूरे के पत्र तथा फलफूल प्रेमपूर्वक अर्पण करने से प्रसन्न हो जाते हैं। संसार में वे भक्तों के कल्याण के लिये अवतार लेते हैं। वे बिना कारण ही दयालु हैं। कामदेव को भस्म करने वाले, कैलासनिवासी, दिव्यदृष्टि वाले वे प्रभु साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, उनके मस्तक पर जटाजूट है तथा शरीर में भस्म धारण कर रखी है, अतः वे सुन्दर वैराग्यद्योतक वेष वाले हैं। वे दयालु देवाधिदेव श्री महादेव स्वल्प-भजन, थोड़ी सी स्तुति से ही प्रसन्न हो जाते हैं।

इदानीं शाक्तानां शक्तौ भक्तिं दर्शयति भवाम्बामितिः--

भवाम्बां भवानीं भवात्मार्द्धकायां ।
सदा सर्वतो मोहिनीं शर्वमायाम् ॥

शिवां शुक्लवर्णां पवित्रात्मकीर्त्ति ।
नमन्तीह दुर्गां श्रिये सत्वमूर्त्तिम् ।।३।।

केचिदिति पूर्ववृत्तादनुवर्त्तनीयम् केचिच्छ्र्च्चर्थिनः (स[1] तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रिय माजगाम[2] बहुशोभमाना मुमां हैमवतीम्)[3] सा० त० उ० इति श्रुत्युक्तां देवराजोपकारिणीं तत्पत्नीं दुर्गां इहलोके श्रिये सम्पत्त्यै नमन्ति । कीदृशीं भवस्य जगतोऽम्बां जननीं, भवानीं रुद्रपत्नीं, भवस्य शिवस्यात्मनोऽर्द्धकायां अर्द्धाङ्गीं, सर्वतः सर्वस्याभक्तजनस्य सदा मोहिनीं मोहकरीं, शर्वस्य शम्भोर्माया शर्वमाया तां । शिवां कल्याणकायां पुनः कथंभूतां शुक्लवर्णां गौराङ्गीं, भक्तपालनादि पवित्रात्मनः कीर्त्तिर्यस्यास्तां सात्त्विका मूर्त्तिस्तनु र्यस्या वा सत्वानि प्राणिसमूहा मूर्त्तयो यस्यास्तां सत्त्वमूर्त्तिमिति ।।३।।

पदार्थः––(केचित्)कोई देवी के भक्त (इह) इस लोक में (दुर्गां) दुर्गा देवी को (श्रिये) कल्याण के लिये (नमन्ति) नमस्कार करते हैं। वह दुर्गा देवी (भवाम्बां) संसार की जननी, माता (भवानीं) शिवजी की पत्नी (भवात्मार्द्धकायां) तथा शङ्कर भगवान् की अर्द्धाङ्गिनी हैं। (सदासर्वतो मोहिनीं) वह सदा अभक्त जनों को मोहने वाली (शर्व मायां) शम्भु की माया स्वरूपा हैं। (शिवां) वह कल्याणरूपिणी (शुक्लवर्णां) शुक्ल, गौर वर्ण वाली (पवित्रात्मकीर्तिं) पवित्र कीर्त्ति से युक्त हैं। (सत्वमूर्त्तिम्) ऐसी सात्विक शरीर वाली श्री दुर्गाजी हैं।

भावार्थः––अब शक्ति के उपासक, शक्ति श्री दुर्गाजी में अपनी भक्ति दिखलाते हैं––

कल्याण की कामना वाले कोई २ भक्तजन, असुर संहारकारिणी श्री दुर्गाजी की, धन सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए पूजा

---

[1] इन्द्रः । [2] उपजगाम । [3] हिमवतस्तनूजाम् ।

करते हैं। वे श्री दुर्गा जी सारे संसार को उत्पन्न करने वाली, भगवान् शिव की पत्नी तथा उनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं। वह अभक्त-जनों, असुरों को मोह में डालने वाली, शङ्कर की माया हैं। वह कल्याण रूपवाली गौर वर्ण सेयुक्त, पवित्र कीर्ति वाली हैं। ऐसी सुन्दर स्वरूपवाली श्री दुर्गाजी हैं।

अधुना सौराणां सूर उपासनामाह परब्रह्मेति––

परब्रह्म तेजोमयो दीप्तदेहः।
प्रजापालको गच्छति ज्ञानगेहः॥
भवं यश्च पश्यन्दिनेशं शरण्यं।
जनास्तं नमस्यन्ति केचिद्वरेण्यम्॥४॥

केचित्तेजः कामाजनाः (विश्वरूपं हरिणं[७] जातवेदसं[८] परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजा-नामुदयत्येष सूर्यः) अ० प्र० उ० इत्यादि श्रुतिदर्शितमुपास्यं चक्षुः प्रकाशप्रदानेन तदादि सर्वेषामुपकारिणं तं दिनेशं नमस्यन्ति, पूज-नादाअशक्ताः केवलं नमस्कारभक्ति कुर्वन्ति। तं कं परब्रह्मणो यत्तेजस्तन्मयो योऽतो दीप्तदेहो द्युतिमद्देहो यस्य, उदयास्ताभ्यां प्रजानां पालको ज्ञानगेहो बोधस्यागारो भवं सर्वसंसारं पश्यन्यो गच्छति सर्वकर्म साक्षीत्यर्थः।

कथंभूतं तं शरण्यं आश्रयकर्तुं योग्यं, वरेण्यम् उपास्यत्वेनाङ्गी करणार्हमिति॥४॥

पदार्थः––(केचिन्) कोई (जनाः) भक्तजन (दिनेशं) सूर्य भगवान् की (नमस्यन्ति) नमस्कारादि द्वारा भक्ति करते हैं। (पर-ब्रह्म तेजोमयो दीप्त गेहः) वह सूर्य, परब्रह्म परमात्मा के तेज से प्रकाशमान है। (प्रजापालकः) वे प्रजा के पालन करने वाले हैं। (ज्ञानगेहः) ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं। (भवं) सारे संसार को

---

[७] रश्मिवन्तम्। [८] जातप्रज्ञानं सूरय उपासत इति शेषः।

(पश्यन्) देखते हुये (यः) जो सूर्य (गच्छति) चलता है। (शरण्यम्) अतः सूर्य भगवान् सब के आश्रय दाता हैं। (वरेण्यम्) और श्रेष्ठ हैं।

भावार्थ--अब सूर्य भगवान् के उपासक, तेजप्राप्ति की इच्छा वाले भक्तजन प्रत्यक्ष पूजने में असमर्थ हैं, अतः केवल नमस्कार द्वारा निज भक्ति प्रकट करते हैं--

"वे सूर्य्य भगवान् विश्वरूप हैं, रश्मि, किरणों वाले हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, ज्योतिष्मान् हैं, सदा तपते रहते हैं, सैकड़ों प्रकार की हजारों किरणों से युक्त हैं। वे प्रजा के प्राण हैं, ऐसे सूर्यभगवान् उदय होकर सबको आनन्द देते हैं" इत्यादि श्रुति द्वारा दिखाये हुये सबके उपास्य, नेत्रों को ज्योति प्रदान करने वाले, सबके उपकारक दिनमणि सूर्य परब्रह्म परमात्मा के तेज-स्वरूप हैं। वे उदय से अस्त तक प्रजा का पालन करते हैं, ज्ञान के भण्डार हैं तथा सारे विश्व को देखते हुये जाते हैं, अर्थात् जीवों के सारे कर्मों के साक्षी हैं। वे सारे संसार के आश्रय दाता हैं--अतः उपासना के योग्य हैं ॥४॥

अथ वैष्णवानां विष्णौ रतिं दर्शयति कृपालु मिति।

कृपालुंस्वभक्तातमपाथोज भानुं।
महादारुणैनो गणैधः कृशानुम् ॥
चतुर्बाहु-विष्णुं जगज्जन्म हेतुं।
स्वमोक्षाय गायन्ति नागारिकेतुम् ॥५॥

केचिदित्यत्राप्यनुवर्तनीयं, केचिन्मुमुक्षवो (सूर्याचन्द्र मसौधाता यथापूर्व मकल्पयत्) (यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलं। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्) इति श्रुति स्मृतिभ्यां दिनकरस्यापि यः कर्त्ता तत्र यस्य तेजश्च तं चतुर्बाहु-विष्णुं चत्त्वारो-

बाहवो यस्य स चतुर्वाहुश्चासौ विष्णु श्चतुर्वाहु स्तं स्व मोक्षाय स्वस्य मुक्तये गायन्तीति उपलक्षणं, कीर्त्तनादि नवधा भक्ति कुर्वन्ति। (शन्नो विष्णु रुरूक्रमः) (विष्णोर्मोक्षकरी मतिः) (ददामि बुद्धियोगं तंयेन मामुपयान्ति ते) इति श्रुतिस्मृति भगवद् वचनाद् भगवतो भक्तेभ्यो मोक्ष दातृत्वं प्रसिद्धम्। कथंभूतं कृपालुं स्वभक्त त्याग-कातरं, तथाच तेनैवोक्तं भा० ६ स्कं०। (ये दारागार पुत्राप्तान्[१] प्राणान्वित्तामिमं[२] परम्[३]। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तु-मुत्सहे) आत्मा हृदयं, पाथो जलं, तत्र जातं पाथोजं कमलं स्व-भक्तहृदयकमलाह्लादने सूर्यसमं, पुनः कीदृशम्, महादारुणानाम् अतीवघोराणाम् एनसां पापानां गणाएव एधांसि इन्धनानि तेषु कृशानुम् अग्निवद्दाहकरं, तदुक्तम् (भर्जनं पापबीजनानां मर्जनं सुख-सम्पदाम्। तर्जनं यमदूतानां हरिर्नामेति गर्जनम्) जगज्जन्महेतुं जगदुत्पत्तिकारणं नागानामरि र्गरुडः केतौध्वजे यस्यतं नागारि-केतु मिति ॥५॥

पदार्थ--(केचित्) कोई मुमुक्षुजन (तं चतुर्वाहुं) उस चार भुजा वाले (विष्णुं) सर्व व्यापक विष्णु भगवान् की (स्वमोक्षाय) अपनी मुक्ति के लिए (गायन्ति) कीर्त्तनादि द्वारा भक्ति करते हैं। वे श्रीविष्णु भगवान् (कृपालुं) बड़े कृपालु हैं। (स्वभक्तात्म-पाथोज भानुं) अपने भक्तों के हृदयरूपी कमल को खिलाने में सूर्य के समान हैं। (महादारुणैनो गणैधः कृशानुम्) बहुत भयङ्कर पाप समूह रूपी इन्धन को जलाने के लिये अग्नि के तुल्य हैं। (जगज्जन्म हेतुम्) संसार की उत्पत्ति के कारण हैं। (नागारिकेतुम्) और सर्पों के शत्रु, गरुड़ की ध्वजा वाले हैं।

भावार्थ--अब वैष्णवों की श्री विष्णुभगवान् में प्रीति दिखाते हैं:--

कोई मोक्ष की इच्छा वाले भक्तजन "उस परमात्मा ने सूर्य

---

[१] पोष्यान्परिजनान्। [२] ऐहिक सुखम्। [३] आमुष्मिक सुखम्।

और चन्द्रमा को यथापूर्व निर्मित किया'' ''जो तेज सूर्य में है और जिस प्रकाश से सारा संसार प्रकाशित होता है तथा जो तेज चन्द्रमा और अग्नि में है, हे अर्जुन, उस तेज को तू मेरा ही तेज जान'' इत्यादि श्रुति स्मृतियों में कहे अनुसार सूर्य को भी तेज प्रदान करने वाले, चार भुजावाले विष्णु भगवान की श्रवण कीर्त्तनादि द्वारा नवधा भक्ति करते हैं। वे श्री विष्णुभगवान् बड़े कृपालु हैं। ''वे विष्णु भगवान् हमारा कल्याण करें'' ''श्री विष्णु भगवान् मोक्ष के दाता हैं'' ''मैं उन्हें बुद्धि योग देता हूँ जिससे वे भक्तजन मेरे पास पहुँच जाते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं'' इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्यों से भगवान् विष्णु अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करने में प्रसिद्ध हैं। ऐसे दयालु विष्णु भगवान् अपने भक्तों को त्यागने में बड़े कातर हैं। जैसे श्री० भा० नवम स्कन्ध में कहा भी है--

''जो भक्तजन निज स्त्री, गृह, पुत्र, परिवार ऐहिकसुख और पारलौकिक सुख को त्याग कर मेरी शरण में आ जाते हैं, मैं उन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ''। वे प्रभु अपने भक्तों के हृदयरूपी कमल को सूर्य के समान खिला देते हैं। पुनः जैसे शुष्क इन्धन को अग्नि शीघ्र ही भस्म कर देती है उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्तों के पाप समूहों को क्षणमात्र में भस्म कर देते हैं। जैसे कहा भी है-- ''भगवन्नाम कीर्त्तन और श्रवण से पाप नष्ट हो जाते हैं, सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है और यमदूत भाग जाते हैं''। श्री विष्णु ही संसार को उत्पन्न करने वाले हैं; वे गरुड़ की ध्वजा को धारण करते हैं अतः उन्हें गरुड़ध्वज कहते हैं ॥५॥

यदर्थ मुपोद्घातरूपा पञ्चदेवोपासना निरूपिता तं स्वाभीष्टं दर्शयति मन इति--

मनः कायवाग्भिस्सुरां स्तांश्च सर्वान् ।
सदाब्रह्म बोधाद्भजेऽकायगर्वान् ॥

रतिं मे मुकुन्दे यशोदा किशोरे।
प्रयच्छन्तु ते गोपिका चीरचोरे ॥६॥

केचन त्वेकैक देव मुपासतेऽहं च तान् सर्वान् सुरान् उक्तपञ्च-देवान् मनसा कायेन वाचा च भजे। कथं भूतान् ब्रह्म बोधात् एकात्म ज्ञानेन सदाऽकायगर्वान् देहाभिमान रहितान्, अयं मदीयो भक्तोऽयं परकीय इति मतिं हित्वा सर्वभक्तेषु कृपां कुर्वन्तीति भावः। ननु त्वं तेषु कोऽसि, न कोऽपि, किंस्मार्त्तोऽसि, नहि नहि, तर्हि कोऽसि, कार्ष्णि[१] रहं। ननु कथं तान्भजसे, परमप्रिय श्रीकृष्ण-प्रीतौ सहायार्थ मित्याशयः। (कृष्णाय देवकी पुत्राय) सा० छां० उ० इत्यादि श्रुति दर्शिते निजनाथे तेभ्यो रतिं प्रार्थयति, ते देवा-यशोदायाः किशोरे बाले रतिं प्रीतिं मे मह्यं प्रयच्छन्तु प्रापयन्तु, कथंभूते मुकुं मुक्ति ददातीति मुकुन्दस्तस्मिन् गोपिकानां चीराणि वस्त्राणि चोरयतीति गोपिकाचीर चोर स्तस्मिन् बाल केलिस्वभावेन चीरचौर्यत्वं पूर्णकामे शिशु विग्रहे वाऽन्य कल्पनाया असम्भवात् ॥६॥

पदार्थ--(तान्सर्वान्) मैं इन उपर्युक्त पांच देवों को (मनः कायवाग्भिः) मन शरीर और वाणी से (भजे) भजता हूँ। (ब्रह्म बोधात्) वे ब्रह्म, ज्ञान होने से (सदाऽकाय गर्वान्) सदा देहा-भिमान से रहित हैं। ये पञ्चदेव (गोपिका चीरचोरे) गोपियों के चीरों को चुराने वाले (यशोदाकिशोरे) यशोदा के बालक (मुकुन्दे) मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् में मेरे लिये (रतिं) प्रेम (प्रयच्छन्तु) प्रदान करें।

भावार्थ--श्री स्वामी कार्ष्णि गोपाल दासजी महाराज भूमिका रूप में पञ्च देवों की उपासना के अनन्तर अब अपना अभीष्ट कहते हैं--कोई २ भक्तजन एक एक देव की उपासना करते हैं किन्तु मैं

---

[१] सौरो न चाहं नहि वैष्णवो वा नो नास्तिकः कार्ष्णि रहंतु कश्चित्, इत्यादिना तैरेव कार्ष्णि पञ्चके समुदीरितम्।

इन उपर्युक्त पाँचों देवों की उपासना मन, शरीर और वाणी से करता हूँ, क्योंकि ये सब एकात्म ज्ञानी हैं और सदा देहाभिमान से रहित हैं। "यह मेरा भक्त है यह दूसरे का भक्त है" इस बुद्धि को छोड़ कर सब भक्तों पर कृपा करते हैं।

प्रश्न–तो क्या आप स्मार्त हैं, शाक्त है या वैष्णव हैं ?

उत्तर––मैं तो कार्ष्णि[१] हूँ, श्री कृष्ण भगवान् का सेवक हूँ।

प्रश्न––तो फिर उक्त पाँच देवों की आपने स्तुति क्यों की ?

उत्तर—मैंने उक्त पाँच देवों की स्तुति परम प्रिय श्रीकृष्ण भगवान् की प्रीति में अपनी सहायता करने के लिए की है। "देवकी के पुत्र श्री कृष्ण को मेरा बारम्बार नमस्कार" इत्यादि श्रुति द्वारा दिखलाये हुये अपने स्वामी में उक्त पञ्च देवों से प्रेम की प्रार्थना करते हैं––वे पंचदेव, गोपियों के चीरों को चुराने वाले, मोक्ष के देने वाले, यशोदा के बालक श्रीकृष्ण भगवान् में प्रतिदिन मेरे प्रेम की वृद्धि करें, यही प्रार्थना है।

ननूपासितेभ्य स्तेभ्योऽन्यत्किञ्चित्प्रार्थय किं चौररत्या इत्याकाङ्क्षायाम् (यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेयतत्कुरुष्व मदर्पणम्) इति भगवदाज्ञां शिरसि कृत्य तत्राह सुराचार्य्य इति।

सुराचार्य्यसेवा तपोध्यानगङ्गा।
निवासश्च विद्या जपः साधुसङ्गः॥
मदीयं समस्तं यशोदा सुतार्थं।
ततः कृष्णपत्प्रेम याचे निजार्थम् ॥७॥

सुराणां सेवा पुष्पादिभिः आचार्याणां गुरूणां सेवा पादसंवाहन जलानयनादिभिस्तदानुकूल्येन वा, तदुक्तम् (आज्ञापालनमेवाहुर्मुख्य-

---

[१] कार्ष्णि शब्द की व्याख्या, कार्ष्णि कलापाचार्य श्री स्वामी गोपाल दासजी कृत "अवतार मीमांसा" में देखिये।

माराधनं सताम्) तपः स्ववर्णाश्रमधर्म्मो ध्यानं ध्येयैकतानता गङ्गा-
तीरे निवासो विद्या आत्मादिविषया, जपः प्रणवादीनां, साधवः
समदर्शिनस्तेषां सङ्ग इत्याद्यन्यदपि मदीयं सर्वं कृत्यं यशोदासुतार्थं
श्रीकृष्णार्पण मेव तत्प्रीत्यर्थ मित्यर्थः । अत स्ततस्तेभ्यः श्रीकृष्ण-
चरण प्रेमाणं निजार्थं स्वार्थं याचे, प्रेमञ्छब्दः पुन्नपुंसकयोरिति ॥७॥

पदार्थ--(सुराचार्य्यसेवा) देवता और गुरुजनों की सेवा
(तपोध्यान गङ्गा निवासश्च) तप ध्यान और श्री गङ्गाजी के तट
पर निवास (विद्याजपः) आत्मविद्या की प्राप्ति, 'ओ३म्' आदि
भगवन्नाम का जप (साधु सङ्गः) साधुओं की सङ्गति इत्यादि
(मदीयं) मेरे (समस्तं) सारे कार्य (यशोदासुतार्थं) यशोदा के पुत्र
आनन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र के अर्पण हैं । अतः मैं (ततः) उन सब
देवों से (कृष्णपत्प्रेम) श्रीकृष्ण के चरण कमलों में प्रेम (निजार्थं)
अपने स्वार्थ के लिए (याचे) माँगता हूँ ।

भावार्थ--पञ्च देवों की उपासना करके कुछ और प्रार्थना
करो "चोर में मेरी रति हो" इस प्रार्थना से क्या प्रयोजन ?
इस प्रश्न का उत्तर देते हैं--"हे अर्जुन, जो कुछ तू करता है,
जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान करता है और जो तप
करता है वह सब कुछ मेरे अर्पण कर" भगवान् की इस आज्ञा को
सिर पर धारण कर के कहते हैं:--पुष्प फलादि द्वारा देवताओं की
सेवा, पादसंवाहनजलानयनादि द्वारा गुरुओं की सेवा, अपने वर्ण तथा
आश्रम के धर्मपालन रूप तप, एकान्त में एकचित्त होकर भग-
वच्चिन्तन, ध्यान, परमपावनी श्री भागीरथी के किनारे एकान्त में
निवास, अध्यात्मविषयक चिन्तन, 'ओ३म्' आदि प्रभु के नामों का
जप, समदर्शी परम कृपालु सन्तजनों की सङ्गति इत्यादि और जो
कुछ भी मेरे कार्य हैं वे सब श्री यशोदा के पुत्र श्री भगवान् कृष्ण-
चन्द्र की प्रीति के लिए हैं । इसलिए उन पाँच देवों से मैं केवल

अपने स्वार्थ के लिए श्रीकृष्ण भगवान् के चरण कमलों में निरन्तर प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ ॥७॥

ननु (एको देवः सर्वभुतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च) य० श्वे० उ० (सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत) सा० छा० उ० इत्यादि श्रुति विहितैकात्मभावोपासनां परित्यज्य केवल कृष्ण पद प्रीति प्रार्थनया भगवदवतारेषु भेददर्शनेनागतं शिरसि (मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति) य० क० उ० इत्यादि श्रुति दर्शितं भेद दर्शनजनित भय मित्या शङ्कायां तत्राह-रमेश इति ।

रमेशे गणेशे विरिञ्चे महेशे ।
व्रजेशे न भेदोस्ति देव्यां दिनेशे ॥
मुरारेः पृथग्विश्वविश्वं न जाने ।
रतिर्मे मुकुन्देस्ति रुद्रादिमान्ये ॥८॥

रमाया लक्ष्म्या ईशो विष्णुः, गणेशोगजाननो, विरिञ्चो ब्रह्मा महेशोरुद्रः, व्रजेशः श्रीकृष्णो, देवी भगवती, दिनेशः सूर्य, एषु न भेदोस्ति एकात्मनः सर्वे अवताराभेदे का वार्त्ताऽहन्तु मुरारेः श्रीकृष्णात्पृथग् विश्वविश्वं सर्वप्राणिमात्रं न जाने कुतो मे भयं परन्तु मे मम प्रीतिस्तु रुद्रादिमान्ये शिवादि मानार्हे मुकुन्दे श्रीकृष्णेस्ति । श्रुतौत्वात्मभेद दर्शने दोषो दर्शितो न देह भेद दर्शने कल्पितान्हित्वाऽधिष्ठाने रतिं कुर्वतो न कोऽपि ममापराध इति भाव ॥८॥

पदार्थ--(रमेशे) रमापति में (गणेशे) गणपति में (विरिञ्चे) ब्रह्माजी में (महेशे) महादेव में (व्रजेशे) श्रीकृष्ण में (देव्याम्) देवी में और (दिनेशे) सूर्य्य में (न भेदोऽस्ति) कोई भेद नहीं है । किन्तु मैं तो (मुरारेः) श्रीकृष्ण से (पृथक्) भिन्न (विश्वविश्वं) सर्व प्राणिमात्र को (न जाने) नहीं जानता । (मे रतिः) मेरी

प्रीति तो (रुद्रादि मान्ये) शिवादि से मान्य (मुकुन्दे) मुकुन्द भगवान् में (अस्ति) है।

भावार्थ--"वह एक ही देव है, सब प्राणियों में गुप्त रूप से रहता है, सर्व व्यापक है, सब भूतों, प्राणियों की अन्तरात्मा है, सर्व कर्मों का अध्यक्ष, स्वामी है, सब प्राणियों में वास करता है, सब का साक्षी है तथा निर्गुण और निर्विकार है"।

"निश्चय रूप से यह सब ब्रह्म है" इत्यादि श्रुति प्रतिपादित एकात्मभाव की उपासना को छोड़कर केवल कृष्णपद प्रीति की प्रार्थना से तथा भगवद् अवतारों में भेद दर्शन से सिरपर आई हुई "वह मृत्यु को प्राप्त होता है जो यहाँ उसको नहीं देखता है" इत्यादि श्रुति द्वारा दिखलाये भेद जनित भय की आशंका से कहते हैं--

लक्ष्मी पति, गजानन गणेश, चतुरानन ब्रह्मा, देवाधिदेव महादेव, ब्रज के स्वामी श्रीकृष्ण, विश्व जननी जगदम्बा और भुवन भास्कर श्री सूर्य्य भगवान् इन सब देवताओं में मैं कोई भेद नहीं देखता। ये सब एकात्मा, परमात्मा के भिन्न २ रूप हैं, पर मैं तो आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र से भिन्न इस संसार में किसी भी प्राणी को नहीं जानता। मुझे किस से भय हो सकता है। मेरा प्रेम, मेरी भक्ति रुद्रादि देवों से मान्य, मोक्षप्रदान करने वाले आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र श्री कृष्ण भगवान् में है। श्रुति में आत्म भेद दर्शन में दोष दिखाया है न कि देहभेद दर्शन में, अतः कल्पितों को छोड़ कर अधिष्ठान में प्रीति करने से मेरा कोई अपराध नहीं है ॥८॥

यादृशे श्रीकृष्णे प्रीतिः प्रार्थिता तादृशं दर्शयति युतं गोभिरिति।

युतं गोभिराभीरबालैश्च कान्तं।
दिवेशात्मजायास्तटे तं प्रयान्तम्॥

व्रजेन्द्रात्मजं श्यामतेजः शरीरं।
मदीये दृशौ पश्यतां पीतचीरम् ॥६॥

यस्मिन्ममरतिरस्ति तं व्रजेन्द्रात्मजं नन्दतनयं मदीये दृशौ ममेमे नेत्रे पश्यतां, कथंभूतं गोभिः आभीर बालै र्गोपार्भकैश्च युतं, दिवेशः सूर्य्य स्तस्यात्मजा पुत्री यमुना तस्यास्तटे प्रयान्तं गच्छंत, पुनः कथंभूतं श्यामतेजः शरीरं मरकतमणिसमं श्यामतेजोमयं शरीरं यस्य तं, पीतानि चीराणि वस्त्राणि यस्यतं पीतचोरं। ननु (हृदिगत मति साक्षी ब्रह्मसोहं चिदात्मा) इत्यादिना तेनैव भक्तिप्रकाशे जीव-ब्रह्मैक्यमुक्तं, तथाच वक्ष्यति एवं स्वात्ममयोपि कृष्ण भगवानित्या-दिना (यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः) इति भगवद् वचनादात्मैक्यज्ञानं सर्वेच्छान्तकरं तर्हि कथं विदुषो भगवद्दर्शनेच्छा संभवेत्, निर्गुणस्य स्वात्मस्वरूपत्वात्सगुणस्यानृत्वादिति चेच्छृणु (किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्। आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा) ज्ञानिना मीदृशी मतिर्भवति तथापि यथा याज्ञवल्क्य प्रभृति विदुषां सभा विजयादि परपीडन-कर्म्मणि कौतूहलेन पूर्वसंस्कारेण वा प्रवृत्तिः श्रुतौ श्रूयते, एवं कौतुकेन वा मुमुक्षाकालीनसंस्कारवशाद्विज्ञानां भगवतः साकार विग्रह दर्शनेच्छापि सम्भवति वा भगवद्गुणानामीदृशी शक्तिर्या सूरीणामपि चित्तमपकर्षति भगवद्दर्शनेच्छा मुत्पादयति च तदुक्तम् भा० द० स्कन्दे (आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्य-हैतुकीं भक्तिमित्थंभूत गुणोहरिः) अथवा (प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थ-महं स च मम प्रियः) इति भगवद् वचनाज्ज्ञानिनो भगवतश्च परस्परं प्रीति रस्ति। भगवाँस्तु प्रीत्या (निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्, अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रि रेणुभिः) भा० स्कन्द ११ अ० १४। इति वाक्यान्निज प्रियाणां विदुषां चरणरेणुमपि शिरसि धत्ते, तथाच (तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्) इति प्रतिज्ञावचनात्प्रारब्धमनपेक्षैव तेषां योगक्षेमंकरोति, विद्वांसस्तु

भगवद्दर्शनेच्छयैव प्रीतिं पालयति । श्रूयतेहि नारदव्यासादि विदुषां भगवद्दर्शनार्थं पुनः पुनः द्वारिकाया मागमनं, तथैव परमज्ञानिभिः श्रीशङ्कराचार्यैः (जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे। भवतुमम कृष्णोक्षि विषयः) इत्यादि वाक्यैर्भगवद्दर्शनाभिलाषो दर्शितः। यदि विज्ञाय भगवद्दर्शन मात्रमपि न रोचते तर्हि भगवत्प्रिय इति कथं ज्ञायते, प्रियदर्शनेतु सर्वेषामिच्छा दृश्यते। अथवा यथार्जुनो भगवन्महिमानं ज्ञात्वापि विश्वविजये स्वयं समर्थोऽपि स्नेहेन भगवन्तं दास्ये नियुक्तवान्। एवं (ज्ञानी त्वात्मैव मेमतम्) इति स्वात्मभूतमति प्रियं ज्ञानिनं प्रेम्णैव श्रीकृष्णः स्वदास्ये नियोजयति। तदुक्तं मधुसूदनस्वामिभिः (अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्याः स्वानन्द सिंहासन लब्धदीक्षाः। शठेनकेनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन[१]) अतः प्रियस्वामि सेवार्थं तत्सम्मुखे स्थातुमुचित मेवज्ञानिनां, किञ्च यस्मै दर्शनमात्रमपि न रोचते तस्य भजनं तु कुतः। (यमेवैषवृणुते[२] तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम्)। (तमक्रतुः[३] पश्यति वीतशोको[४] धातुः[५] प्रसादान्महिमानमात्मानः) य० क० उ० (तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रतीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते) इति श्रुतिस्मृतिवाक्याद्येव भगवताज्ञानं दत्तं तमभजतां विदुषां शिरसि कृतालया कृतघ्नता पिशाची। अतः कृतघ्नत्वनिवृत्त्यर्थमपि विद्वांसो भगवन्तं भजन्ति।

ननु भगवद्गुणगानादिना तन्निवृत्तिर्भवतु किंदर्शनेच्छयेति चेन्निर्गुणस्य गुणाः कुतः सगुणस्य मायिका गुणा इति विचार्य्य तादृशा गुणानपि नैव गायन्ति कथं तस्या निवृत्तिः।

---

[१] अभुक्तभोग जारो विटः।

[२] यं साधकं एष परमेश्वरो वृणुतेऽनुगृह्णाति तेनेश्वरानुगृहीत साधकेनैव एष परमेश्वरो लभ्यः तस्य साधकस्य एष आत्मा परमेश्वरः स्वां पारमार्थिकीं तनूं विवृणुते प्रकाशयति इति प्रथम श्रुत्यर्थः।

[३] अकामः। [४] अशोको भवति। [५] परमेश्वरस्य।

ननु तिष्ठतु कृतघ्नता विदुषः का हानिर्मुक्तिस्तु ज्ञानसमकालीनैव तस्याः प्रतिबन्धे न कोऽपि शक्त इति चेच्छृणु--चण्डालपचितं गोपिशितं भिक्षापात्रे प्रपतितं त्वया त्याज्यते न वा लोकशास्त्रविरुद्धत्वात्त्यज्यत इति चेत्कृतघ्नतापि (यावज्जीवं त्रयोवन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः। आदौज्ञानाप्तये पश्चात्कृतघ्नत्वापनुत्तये)। (कृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः) इति शास्त्रविरुद्धा, लोकेऽपि च निन्द्या कथं न निवार्य्यते। द्वितीये तदङ्गीक्रियते चेत्तर्हिश्रृणु--

(भिक्षो मांस निषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यंविना, मद्यं चापि तवप्रिय प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह। वेश्या प्यर्थरुचिः कुतस्तवधनं द्यूतेन चौर्येणवा, चौर्यद्यूतपरिग्रहोपि भवतो नष्टस्य कान्यागतिः।) इत्थं नानार्थजाले, न लज्जसे भगवद्दर्शनेन ते ज्ञानं क्षीयते। अहो तव ज्ञानमाहात्म्यम्।

(बुद्धाद्वैत स्वतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि। शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचि भक्षणे) इति पञ्चदशीकृद्वाक्यमपि त्वया चरितार्थकृतम्।

(अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितंमन्यमानाः) य० क० उ० इत्यादि श्रुतिरपि त्वादृशमेव लक्ष्यीकृत्याहेत्यलमति प्रसङ्गेन ॥६॥

पदार्थ--(तं व्रजेन्द्रात्मजं) उस नन्दराज पुत्र को (मदीये) मेरी (दृशौ) दोनों आँखें निरन्तर (पश्यताम्) देखती रहें। वे नन्दकुमार श्रीकृष्ण (गोभिः) गौओं से (आभीरबालैश्च) और गोप बालकों से (युतम्) युक्त हैं।

(कान्तं) कमनीय, सुन्दर हैं। (दिवेशात्मजायाः) सूर्यपुत्री, यमुना के (तटे) तट पर (प्रयान्तम्) जारहे हैं, (श्याम तेजः शरीरं) वे साँवले और तेज से युक्त शरीर वाले हैं। (पीतचीरम्) पीले रङ्ग का वस्त्र धारण किये हैं।

भावार्थ--जैसी श्रीकृष्ण में प्रीति की प्रार्थना की वह दिखलाते हैं:--

जिन आनन्दकन्द ब्रजचन्द्र श्री श्याम सुन्दर में मेरी प्रीति है, उन नन्दकुमार को मेरे नयन निरन्तर देखते रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है। वे श्रीनन्दकुमार गौओं और गोप बालकों से घिरे हुये हैं, कमनीय अति सुन्दर हैं, तथा सूर्यपुत्री श्री यमुना के तीर पर भ्रमण कर रहे हैं। मरकतमणि के समान साँवला और तेज से युक्त उनका सुन्दर शरीर है जिस पर उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है, ऐसे श्रीश्यामसुन्दर हैं।

अथस्वस्य सुसिद्धातंपरेषामप सिद्धान्तं च दर्शयति अजमिति।

अजं निर्गुणं चिन्मयं निर्विकारं।
धियोऽतीतमाम्नाय गीतं त्वपारम् ।।
विभुं ये च जानन्ति जानन्त्वरूपं।
भजे बल्लवी लालितं भोजभूपम् ।।१०।।

अजं जन्मरहितं निर्गुणं मायिकगुण वर्जितं चिन्मयं चैतन्यस्वरूपं निर्विकारं अपक्षयादिविकार विधुरं धियोऽतीतं बुद्धेः परम्। आम्नायगीतं वेद वेद्यम्। अपारं देशकालादिपरिच्छेद शून्यम्। विभुं व्यापकम्। अरूपं परिणामिरूपरहितम्। ईदृशं भगवन्तं ये जानन्ति ते जानन्तु केवलं जानन्त्येव न तु ज्ञात्वा भजन्त्यतोऽस्माभिरुपेक्षिता इति भावः। अहन्तु भगवन्तं स्वात्मानं ज्ञात्वा तद् गुणगृहीतचित्तः प्रियत्वाद्वा कृतघ्नत्वापनुत्तये वा वल्लवीभिर्यशोदादिगोपीभिः पुत्रत्वेन प्रियत्वेन वा लालितं, भोजानां यादवानां भूपं यदूत्तमं श्रीकृष्णं भजे।

श्रीश्यामसुन्दर दर्शनार्थं पर्वतान्निपातं भाद्रपदे भागीरथ्यां पतनं तिलशोऽवयवानां कर्त्तनं चाप्यहं बहु न मन्ये किं पुनर्भगवल्लीलावलोकन नाम सङ्कीर्त्तनादि भजनमिति भावः।

तदुक्तं मधुसूदनस्वामिभिः--

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा यन्निर्गुणं निष्क्रियं,
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते ।
अस्माकन्तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं,
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महोधावति ॥१०॥

पदार्थ--(अजं) जन्म रहित (निर्गुणं) तीनों गुणों से रहित (चिन्मयम्) चैतन्य स्वरूप (निर्विकारम्) विकारों से रहित (धियोऽतीतम्) बुद्धि से पर (आम्नाय गीतम्) वेदों से गाये हुये (अपारं) जिसका पार नहीं है, (विभुं) सर्वव्यापक (अरूपं) रूप रहित, इस प्रकार भगवान् को जो जानते हैं, वे ऐसा जानें। मैं तो (वल्लवी लालितं) यशोदादि गोपियों से पाले हुये (भोजभूपम्) यदुवंशियों में उत्तम आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र को ही (भजे) भजता हूँ।

भावार्थ--अब अपने उत्तम सिद्धान्त को और दूसरों के भिन्न सिद्धान्त को दिखाते हैं--

वह प्रभु अजन्मा है, सत्व, रज, तम इत्यादि गुणों से रहित है, चैतन्य स्वरूप है, उसमें अपक्षय वृद्धि आदि विकार नहीं हैं-- अर्थात् न वह घटता है और न वह बढता ही है, वह सदा एक रस रहता है। वह बुद्धि से अगम्य है, वहाँ बुद्धि नहीं पहुँच सकती। वेद सदा उसके गुणों का गान करते हैं। उसका पार नहीं है। वह सर्वव्यापक है और रूप से रहित है, अर्थात् उसका कोई प्राकृत रूप नहीं है। इस प्रकार भगवान् को जो जानते हैं वे जानें। सत्, चित् आनन्द स्वरूप का जो चिन्तन करते हैं वे बन्धुजन ऐसा करें। ऐसा करने वाले केवल जानते ही हैं जानकर वे भजन नहीं करते, अतः वे उपेक्षणीय हैं, मैं तो प्रभु श्यामसुन्दर को अपनी आत्मा समझता हूँ, उनके गुणों ने मेरे चित्त को हर लिया है।

अतिशय प्रेम के कारण या कृतघ्नता की निवृत्ति के लिए यशोदादि गोपियों द्वारा पुत्र रूप से या प्रेमी के रूप से पाले हुये, यदुवंश में श्रेष्ठ आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रको ही मैं भजता हूँ। मैं तो श्रीश्याम सुन्दर के दर्शनों के लिये पर्वत के शिखर से गिरना, भाद्रपद में भागीरथी की धारा में डूबना तथा तिल २ करके शरीर के अङ्गों का उस प्यारे के लिये कट जाना भी कुछ नहीं समझता। मोहन प्यारे की लीलाओं को देखना, भगवन्नाम संकीर्त्तन करना यही मेरे जीवन का परम लक्ष्य है।

श्री मधुसूदन स्वामी ने कहा भी है--ध्यान और अभ्यास द्वारा मन को वश में करके जो योगीजन जिस निर्गुण, निष्क्रिय या किसी ज्योति को देखते हैं, वे देखें, पर हमारे नेत्रों में चमत्कार उत्पन्न करने वाले तो श्रीश्यामसुन्दर ही हैं जो सदा कालिन्दी के पुलिन पर क्रीड़ा करते रहते हैं।

इति भुजङ्ग प्रयात रत्न दशकम्।

अथ तोटक रत्न दशकम्

बल्लवीलालित मित्यनेनागत प्राकृत मनुष्यत्व निवारणाय भगवतो देवर्षि पूज्यत्वमाहशिवशक्तीति ।

शिव शक्ति गणेशसुरैः प्रणतं ।
विधिनारद शेष मुनीशनतम् ।।
निजभक्त सरोज दिनेशकरं ।
प्रणतोस्मि निजात्मनि देववरम् ।।१।।

अहं निजात्मनि स्वहृदि देववरं देवदेवं श्रीकृष्णं प्रणतोस्मि प्रकर्षेण नतोस्मि । कथंभूतं शिवश्च शक्तिश्च गणेशश्च वासवादयः सुराश्चैभिः प्रकर्षेण कायेन वचसा मनसा नतं नमस्कृतं तथा च विधिश्च नारदश्च शेषश्च व्यासादयो मुनीशाश्चैतैर्नुतं स्तुतम् । निज भक्ता एव सरोजानि कमलतुल्याः स्वदर्शन दानेन पोष्यास्तेषां ह्लादकत्वेन दिनेशकरं दिनेशः सूर्यस्तस्य करा रश्मयस्तत्सदृश मिति ।।१।।

पदार्थ--(अहं) मैं (निजात्मनि) अपने हृदय में (देववरं) देवों के देव श्रीकृष्ण को (प्रणतोऽस्मि) प्रणाम करता हूँ। (शिव शक्ति गणेशसुरैः) शिव, दुर्गा, गणेश तथा इन्द्रादि देव (प्रणतं) जिनको नमस्कार करते हैं। (विधिनारद शेष मुनीश नतम्) ब्रह्मा, नारद, शेषभगवान् तथा बड़े २ मुनीश्वर जिनकी स्तुति करते हैं। (निज भक्त सरोज दिनेश करम्) वे अपने भक्तरूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य्य के समान हैं।

भावार्थ--कार्ष्णि कलापाचार्य्य श्री स्वामी गोपालदासजी महाराज कहते हैं कि मैं अपने हृदय में देवाधिदेव श्रीकृष्ण भगवान् को नम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ। उन्हें भगवान् शङ्कर, विश्वशक्ति-रूपा जगज्जननी दुर्गा, विघ्नविनाशक श्रीगणपति तथा इन्द्रादि देवता

मन, वाणी और शरीर से नमस्कार करते हैं। सृष्टि के उत्पन्न करने वाले चतुरानन ब्रह्मा, नारद जैसे महर्षि, भूभार धारण करने वाले शेष भगवान् तथा व्यासादि प्रमुख मुनीश्वर उनकी स्तुति करते हैं। जिसप्रकार दिनकर सूर्य्य भगवान् की किरणें कमलों को विकसित कर देती हैं उसी प्रकार आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र भी निजदर्शन देकर अपने भक्तों के हृदय कमल को प्रफुल्लित कर देते हैं।

इदानीं भगवतः शोभातिशयं प्रदर्शयन् स्वानन्यताम्प्रदर्शयति सन्दानितकेन[१]।

कमनीय कराम्बुज वेणुधरात्,
कटकाङ्गद रत्न किरोटवरात्।
इतरं न वदामि च माधवतः
प्रणमामि नतम्प्रिययादवतः ।।२।।

अहं माधवतो माधवादितरं कमपि न वदामि न सम्भाषे। कथंभूतात्--कमनीययोरतिमनोहरयोः कराम्बुजयोः करकमलयोर्वेणुं वंशीं धरतीति वेणुधरस्तस्मात्। कटकौ वलयौ अङ्गदकेयूरे रत्न-किरीटं मुक्तहीरकादिमयं मुकुटं एतानि भूषणानि वृणोति स्वीकरोति अङ्गेषु धरतीति स कटकाङ्गद रत्नकिरीटवरस्तस्मात्। तथा च प्रिय-श्चासौ यादवः प्रिययादवस्तस्मात् कृष्णात्। तम् इतरं न प्रणमामि मनसा न नौमि न वदामि च व्यवहारतस्तु नमामि च वदामिच्च वा कृष्णबुद्ध्यैवेतरान्नमामि वदामि चान्यथा नैवेति भावः ।।२।।

पदार्थ—(अहं) मैं (माधवतः) श्रीकृष्ण से (इतरं) अतिरिक्त दूसरे किसी से भी (न वदामि) नहीं बोलता हूँ, अर्थात् ईश्वर चिन्तन के अतिरिक्त मैं व्यर्थ बातों में अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं करता। (कमनीयकराम्बुजवेणुधरात्) श्याम सुन्दर ने अपने

[१] त्रिभिर्वृत्तै राख्यानं सन्दानितकम्।

अति सुन्दर कमल-सदृश हाथों में वंशी धारण कर रखी है। (कटकाङ्गदरत्नकिरीटवरात्) श्री कृष्ण के कटक कड़े, अङ्गद तथा मुकुट आदि आभूषणों में रत्न जड़े हुए हैं। ऐसे (प्रिययादवत:) यादवों के परम प्रिय श्री कृष्ण के (इतरं) अतिरिक्त मैं किसी को भी (न प्रणमामि) प्रणाम नहीं करता हूँ।

भावार्थ--अब आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र की अतिशय शोभा को दिखाते हुए अपनी अनन्यता दिखाते हैं--मैं नन्दनन्दन मनमोहन के अतिरिक्त किसी से भी नहीं बोलता हूँ अर्थात् प्रभु-चिन्तन के अतिरिक्त व्यर्थ सांसारिक बातों में अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं करता और न किसी अन्य देव की उपासना ही करता हूँ। उन आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र ने कमल जैसे कोमल हाथों में वंशी तथा श्रीविग्रह पर कङ्कण, अङ्गद, किरीट मुकुटादि रत्नजटित आभूषण धारण कर रखे हैं। ऐसे यादवों के प्राणप्रिय, मुरलीधर श्री नन्दनन्दन के अतिरिक्त मैं किसी को प्रणाम नहीं करता अर्थात् अन्य देवों को मैं भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप ही समझ कर उनकी उपासना करता हूँ।

इतर देव न वन्दने हेतुमाह मनसेति--

मनसा व्रजराजमुखेन्दुसुधाः
पिबतो हृदि या मृगयन्ति बुधाः।
निज आत्मनि बोधरसेस्तु रतिः[१]
मम कृष्णमुखेन हृता हि मतिः ॥३॥

व्रजराजस्य श्रीनन्दनन्दस्य मुखेन्दोर्मुखचन्द्रस्य सुधाः पीयूषाणि मनसा पिबतो मम मतिः कृष्णस्य मुखेन मुखचन्द्रेण हि दाढर्येन हृता अतः बोधो ज्ञानं रस आनन्दस्तस्मिन्ज्ञानानन्दस्वरूपे

---

[१] अत्र रेफाऽनादेशोऽनुप्रासार्थमेवमग्रेऽपि प्रथमतृतीयपादान्तेषु ज्ञेयः।

आत्मनि परमात्मनि श्रीकृष्णे मम रतिरस्तु। कथंभूते निजे स्वीयात्मस्वरूपे। ताः का व्रजराजमुखेन्दुसुधाः या बुधा विद्वांसो हृदि मृगयन्ति अन्वेषणं कुर्वन्तीति ।।३।।

पदार्थ--(व्रजराजमुखेन्दुसुधाः) व्रजराज श्री कृष्ण के मुखचंद्र से निकले अमृत को (मनसा) मनसे (पिवतः) पीते २ (ममतिः) मेरी बुद्धि (कृष्णमुखेन) कृष्ण मुख रूपी चंद्र से (हृता) हरी गई है। इसलिए (बोधरसे) ज्ञानानन्द स्वरूप (आत्मनि) परमात्मा श्रीकृष्ण में (ममरतिः) मेरी प्रीति (अस्तु) हो। (या) जिन व्रजराज श्रीकृष्णचंद्र के मुखचंद्र की सुधा, अमृत को (बुधाः) विद्वान् तथा महात्माजन (निजहृदि) अपने हृदय में (मृगयन्ति) ढूँढते हैं।

भावार्थ--श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवों को वंदना न करने का कारण कहते हैं--श्री नंदनंदन के मुख रूपी चंद्रमा से निरंतर जो अमृत बहता है उसे मै मन लगा कर खूब पीता हूँ, अर्थात् आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के मुखचंद्र की श्री, शोभा को टकटकी लगा कर (निरंतर) देखता रहता हूँ। अतः श्यामसुंदर के मुख रूपी चंद्रमा ने मेरी बुद्धि को हर लिया है। जिन वृंदावनविहारी मुरारि श्रीकृष्ण के मुख चंद्र की सुधा को विद्वान् तथा महात्मा लोग अपने हृदय में ढूँढते हैं उन ज्ञानानंदस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी निरंतर रति, प्रीति हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

ननु (सर्वस्य सुखमीप्सितम्) इति भरतवाक्यात् सर्वे सुखमेवेच्छन्ति, सुखं तु (सैषानंदस्य मीमाꣳसा भवति) इत्यादिना तैत्तिरीयोपनिषदि मानुषानंदादारभ्य शतगुणोत्तरोत्तरं ब्रह्मानंदपर्य्यंतं दर्शितमतो वेदार्थालोचनेनैव सुखज्ञानं तत्तत्कर्मानुष्ठानेन तत्तत्सुखावाप्तिः, किं व्रजराजमुखेन्दुसुधापानेनेत्याशङ्कायामाह परिहृत्येति।

परिहृत्य मुकुन्दमुखेन्दुसुधा
निगमे मृगयामि मुदं न मुधा।

नहि　यस्य　हरिर्नयनाध्वगतः
स　च　बोधसमाधिमखादिरतः ।।४।।

मुकुन्दस्य श्रीकृष्णस्य मुखेन्दोर्मुखचन्द्रस्य सुधा अमृतानि परिहृत्य त्यक्त्वा निगमे वेदे मुदम् आनन्दम् मुधा वृथा न मृगयामि अन्वेषणं न करोमि। भगवद्ध्यानेन सर्व आनन्दाः करतलगता इवातो वेदे सुखमार्गणमपार्थमेवेति भावः।

ननु सर्वे मुकुन्दमुखेन्दु सुधां कथं न पिबन्ति, कथं च सुखप्राप्त्यर्थं ज्ञानयोगादीन् साधयन्तीत्याकाङ्क्षायामाह नहीति--हरिः आनंद-विग्रहः श्रीकृष्णो यस्य नयनाध्वानं नेत्रयोर्मार्गं न गतो न प्राप्तो येन ध्यानेपि भगद्दर्शनं न कृतं स न बोधे शास्त्रविचारे समाधौ अष्टाङ्ग-योगे मखादौ यज्ञादिषु रतः अनुरक्तस्तेषु प्रवृत्त इत्यर्थः ।।४।।

पदार्थ--(मुकुन्दमुखेन्दुसुधा) श्रीकृष्ण के मुखरूपी चंद्रमा के अमृत को (परिहृत्य) छोड़कर (निगमे) वेद में (मुदम्) आनंद को (मुधा) व्यर्थ (न मृगयामि) मैं नहीं ढूँढना चाहता हूँ। (हरिः) भगवान् श्रीकृष्ण (यस्य) जिसके (न) नहीं (नयनाध्वगतः) नेत्रों में समाये (स च) वही पुरुष (बोधसमाधिरतः) शास्त्रों के विचारने में, समाधि में तथा यज्ञादि कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ--"सब सुख चाहते हैं" इस भरतवाक्य से "यही आनंद की मीमांसा होती है" तथा इस तैत्तिरीय उपनिषद् वचन से, मानवी आनंद से लेकर शतगुण उत्तरोत्तर ब्रह्मानंद पर्यंत दिखलाया है, इसलिए वेदार्थों के पर्यालोचन तथा मनन से ही सुख तथा ज्ञान प्राप्त हो सकता है, तत्तत्कर्म के करने से तत्तात्सुख की प्राप्ति हो सकती है, फिर व्रजराज श्रीकृष्ण के मुखरूपी चंद्र के सुधापान से क्या लाभ ? इस आशङ्का का उत्तर देते हैं--

मैं आनंदकंद श्री कृष्णचंद्र के मुखरूपी चंद्रमा के अमृत को छोड़कर व्यर्थ ही वेद शास्त्रों में परमानंद को ढूँढना नहीं चाहता

और न व्यर्थ के मायाजाल में पड़ना चाहता हूँ। प्रभु श्यामसुंदर के ध्यान से सारे पदार्थ करतलगत हो जाते हैं इसलिए वेद शास्त्रों में सुख अन्वेषण करना व्यर्थ है।

प्रश्न--तो सब मनुष्य श्री कृष्ण के मुखचंद्र की सुधा को क्यों नहीं पान करते, वे सुख-प्राप्ति के लिए ज्ञानयोगादि का साधन क्यों करते हैं ?

उत्तर--नाना रूपधारी श्री राधारमण विहारी के जिसने अपने नेत्रों से दर्शन नहीं किये अर्थात् जिसने ध्यान द्वारा वनमाली श्री वृन्दावनविहारी को हृदयस्थल में विराजमान नहीं किया, वे ही पुरुष शास्त्रों के विचारने में, अष्टाङ्ग योग में तथा यज्ञादि में प्रवृत्त होते हैं, पर जिन्होंने साक्षात् मनमोहन प्यारे के दर्शन कर लिए, अपनी इन आँखों में बिठा लिया, उनके लिए योग, यज्ञ, शास्त्र आदि से क्या प्रयोजन ?

ननु भगवद्भजनं हित्वापि यागयोगादिनोत्तमलोकप्राप्तिरस्त्येवातोऽत्र का क्षतिरित्याशङ्कायां तस्य महती हानिरित्याशयेनाह भववन्द्येतियुग्मेन--

भववन्द्यपदाम्बुज यो भवतः
चरणं शरणं परिहृत्य गतः।
भवनीरनिधौ स च सम्पतितः
नहि तस्य हरे भुवि कोप्यविता ॥५॥

स निजात्मरिपुः श्वसितोपि मृतः
श्वपचाधम आगमकैः कथितः।
नहि तं व्रजति स्वभवोस्ति यतः
भव एव भवोऽस्य वृथा प्रगतः ॥६॥

भवेन शिवेन जगता वा वन्द्ये वंदनीये पदाम्बुजे चरणारविंदे

यस्य तस्य सम्बोधनं हे भववंद्यपदाम्बुज, यः कश्चिद् भगवतश्चरणं शरणं त्रातारं परिहृत्य त्यक्त्वा ब्रह्मलोकादिषु गतो योगयागादि तत्साधनानि वा प्राप्तः स भवनीरनिधौ संसारसागरे हि सम्यक् पतितो हे हरे भुवि पृथिव्यां तस्य कोऽपि योगादिसाधनं महेंद्रादि देवो वा न ह्यविता नैव त्राता को ब्रह्मापि नैवावितेति वा । स भवतो विमुखो निजात्मनो रिपुः शत्रुः आत्मघातीत्यर्थः । श्वसितोपि जीवितोपि मृततुल्यः । आगमकैः शास्त्रैः श्वपचाधमः श्वपचेषु चण्डालेषु अधमः कुत्सितः कथितः । तथाहि भा० ७ स्कन्धे--

(विप्राद् द्विषड्[1] गुणयुतादरविन्दनाभ--
पादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचने हितार्थ-
प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः)

किञ्च यतो भगवतः सकाशात् स्वभवो निजजन्मास्ति येनोत्तम-जन्मदत्तं चेत्तं भगवंतं नहि व्रजति, शरणं नैवोपयाति तर्हि भवे संसारे अस्य शरणागतस्य भवो जन्म वृथैव प्रगतो नष्टः । भगवद् विमुखा योगयागादिना ब्रह्मलोकादीन् गता अप्यधः पतंति । इहापि जातिविद्यादिनोत्तमा अपि निंद्या इति तात्पर्यार्थः ॥५-६॥

पदार्थ—(भववंद्यपदाम्बुज) भगवान् शङ्कर या सारा संसार जिनके कमलसदृश चरणों की वंदना करता है ऐसे हे प्रभो (यः) जो कोई (भवतः) आपके (चरणं) चरणों की (शरणं) शरण को (परिहृत्य) छोड़कर (गतः) ब्रह्मलोकादि में चलागया (स च) वही (भवनीरनिधौ) संसार रूपी समुद्र में (सम्पतितः) अच्छी

---

[1] धनं अभिजनो रूपं तपः श्रुतं ओजः तेजः प्रभावो बलं पौरुषं बुद्धिः योगश्चेति द्वादशगुणयुक्तादरविन्दनाभस्य भगवतश्चरणारविन्दाद्विमुखाद्विप्रात् श्वपचं वरिष्ठं मन्ये । कथंभूतं-तस्मिन्नरविन्दनाभे र्ऽपितामनोवचनं चेहितं कर्म अर्थो धनं प्राणाश्च येन तं स एवंभूतः श्वपचः कुलं पुनाति; भूरि प्रचुरं मानो यस्य स भूरिमानो विप्र आत्मानमपि न पुनाति कुतः कुलमित्यर्थः ।

प्रकार गिर गया। (हरे) हे पापों के हरने वाले श्यामसुंदर (भुवि) इस पृथ्वी पर (तस्य) उस प्राणी का (कोऽपि) कोई भी (अविता न) रक्षा करने वाला नहीं है ॥५॥

(स) वह आपसे विमुख प्राणी (निजात्मरिपुः) अपनी आत्मा का शत्रु है, (श्वसितोऽपि मृतः) वह साँस लेता हुआ भी मृतक के समान है। (आगमकैः) उसे शास्त्रों ने (श्वपचाधमः) चांडालों से भी नीच (कथितः) कहा है। (यतः) जिस प्रभु की कृपा से (स्वभवोऽस्ति) यह उत्तम जन्म मिला है (त्वं) यदि फिर भी तू उस प्रभु की (शरणं) शरण में (न व्रजति) नहीं जाता है तो (भवे) इस संसार में (अस्य) ऐसे प्राणी का (भवः) जन्म लेना (वृथा एव) व्यर्थ ही है। (प्रगतः) उसने अपने इस जीवन को नष्ट कर लिया है ॥६॥

भावार्थ--भगवान् का भजन न करके भी यज्ञयोगादि से उत्तम २ लोकों की प्राप्ति हो सकती है, इसलिए ऐसा करने में क्या हानि है ? ऐसी शङ्का का समाधान करते हैं--

त्रिपुरारि शङ्कर या सारा संसार जिनके चरणकमलों की वंदना करता है ऐसे हे दयालु प्रभो, जो कोई प्राणी आपके चरणों की शरण को छोड़कर ब्रह्मलोकादि में चला गया तथा जिसने योग यज्ञादि द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर भी लिया, वह प्राणी इस संसाररूपी समुद्र में अच्छी प्रकार से गिर पड़ा, अर्थात् वह संसार की माया में बुरी तरह फँस गया, हे भगवन्, इस पृथ्वी पर न तो योग यज्ञादि साधन और न महेंद्र तथा ब्रह्मा आदि देवता गण ही उस जीव की रक्षा कर सकते हैं। आपसे विमुख हुआ वह प्राणी अपनी आत्मा का शत्रु है अर्थात् आत्मघाती है, वह प्राणी तो लुहार की धौंकनी के समान साँस लेता हुआ भी मृतक के तुल्य है। ऐसे कुत्सित जीव को वेद शास्त्रों ने चांडालों से भी नीच कहा है--श्रीमद् भागवत दशम स्कंध में कहा है--

"यदि कोई द्वादश गुणों से युक्त ब्राह्मण भी, कमलनाभ भगवान् श्यामसुंदर से विमुख है, अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र का अनन्य-भक्त नहीं है तो मैं ऐसे ब्राह्मण से उस चांडाल को श्रेष्ठ मानता हूँ जिसने भगवान् कमलनाभ के चरणकमलों में मन, वचन, इष्टकर्म, धन और अपने प्राणों को भी अर्पण कर दिया है, इस प्रकार का चांडाल अपने कुल को भी पवित्र कर लेता है किंतु भगवान् से विमुख बहुत मानवाला ब्राह्मण अपने आपको भी पवित्र नहीं कर सकता, वह कुल को पवित्र कहाँ से करेगा।" अतः जिस करुणा सागर प्रभु ने अपार दया करके यह उत्तम जन्म प्रदान किया है, उस कृपालु भगवान् की शरण में यदि यह जीव नहीं जाता है तो इस संसार में इसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। इस जीव ने अपने अमूल्य जन्म को व्यर्थ ही नष्ट कर लिया। भगवान् से विमुख प्राणी योग यज्ञादि द्वारा चाहे ब्रह्मलोक या स्वर्ग लोक को प्राप्त करले, किन्तु फिर भी वह अधोगति को ही प्राप्त होता है। इस लोक में चाहे कोई व्यक्ति, जाति तथा विद्या से कितना ही उत्तम क्यो न हो, पर यदि वह भगवद्विमुख है, प्रभु का भक्त नहीं है तो वह निन्दनीय ही माना जायेगा।

केवलं निन्द्या नैव किन्तु त्याज्या अपीत्याह श्रुतमिति--

श्रुतमीशयशो न च यैर्विमलं,
गदितं नहि संसृतिमोक्षफलम्।
हरिनाम हृदा खलु तानुपलान्
प्रणमामि सुदूरत एव खलान् ॥७॥

यैर्विमलंसर्वदोषविवर्जितं ईशयशः पतितोद्धारकादिकर्मजं भगवतो यशो न श्रुतं तथा च संसारान्मोक्ष एव फलं यस्य तद्धरि-नामापि यैर्नहि गदितं नैव समुच्चारितं तान् खलान् दुर्जनान् हृदा हृदयेन उपलान् पाषाणान् उपलवत्कठिनहृदयानित्यर्थः। खलु

निश्चयेन दूरत एव प्रणमामि, प्रणमामीति वक्रोक्तिर्दूरे त्याज्या न संस्पर्शसम्भाषणार्हा इति तात्पर्यार्थः ॥७॥

पदार्थ--(यैः) जिन प्राणियों ने (विमलं) निर्मल, स्वच्छ (ईशयशः) भगवान् के यश को (न श्रुतं) नहीं सुना, (संसृतिमोक्ष फलं) और जिन्होंने संसार से मोक्ष रूपी फल को, भगवन्नाम को (न गदितं) नहीं उच्चारण किया, ऐसे (खलान्) दुष्टजनों को (हृदा) जो हृदय से (उपलान्) पत्थर के समान कठोर हैं (खलु) निश्चय से (तान्) उन नीच जनों को (सुदूरत एव) दूर से ही (प्रणमामि) मैं प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ--भगवद्विमुख प्राणी केवल निन्दनीय ही नहीं होते अपितु वे त्याज्य भी होते हैं--जिन अज्ञानियों ने सर्वशक्तिमान्, सर्व दोष रहित पतितपावन श्री भगवान् के निर्मल यश को नहीं सुना, जिन्होंने संसार से मोक्ष दिलाने वाले प्रभु के नाम को प्रेम से उच्चारण नहीं किया, ऐसे पाषाण-हृदय वाले दुष्ट जीवों को मैं दूर से ही प्रणाम करता हूँ। ऐसे दुष्ट प्राणी सर्वथा त्याज्य हैं, ये तो संस्पर्श तथा सम्भाषण के भी अयोग्य हैं। जैसे कहा भी है--दुष्टों, हरि विमुखों के साथ न मित्रता और न हो प्रीति करनी चाहिए, क्योंकि जैसे आग का अङ्गारा जब गर्म होता है, हाथ को जलाता है पर जब ठंडा होता है तो हाथ काला कर देता है इसी प्रकार नीच जनों की संगति किसी प्रकार भी अच्छी नहीं।

भक्तशिरोमणि श्री सूरदासजी ने कहा भी है--अरे मानव जिनकी संगति से बुरी बुद्धि होती है और भजन में विघ्न पड़ता है, ऐसे हरिविमुखों, नीच जनों का साथ छोड़ दो।

ननु तेषां धनादिन्यैहिकसुखसाधनानि तीर्थनिवास-मखादीन्यामुष्मिकसुखसाधनानि च सन्ति कथं ते निन्द्यास्त्याज्याश्चेत्याशङ्कायांमाह धनधामसुतैरिति ॥

धनधामसुतैर्वनिताभिरलं
किमु तीर्थनिवासमखादिफलम् ।
नच गायति चेज्जगदीशकथा—
मकृतप्रभुपादरतिश्च तथा ।।८।।

धनं च धाम च सुताश्च धनधामसुतास्तैः वनिताभिर्युवतिभिश्च अलं पर्याप्तिस्तेष्वविद्या विजृम्भितं सुखं वस्तुतस्तु दुःखोदर्का एवेत्याशयः ।

तीर्थनिवासस्य मखादीनां यज्ञादीनां च फलं तत्तीर्थनिवासमखादिफलं स्वर्गादिसुखं, उ इति वितर्के, किं न किमपि सप्रेम भगवत्कथासुखापेक्षयाऽतितुच्छम् । जगदीशस्य अखिलब्रह्माण्डनायकस्य परमेश्वरस्य कथा जगदीशकथा तां चेत् यदि नैव गायति तथा च अकृता न कृता प्रभोः श्रीकृष्णस्य पादयोः रतिर्येन सोऽकृतप्रभुपादरतिश्चेत् । भगवत्कथाप्रीतौ ते सहायाश्चेत्तर्हि सेव्या अन्यथा त्याज्या इत्यभिप्रायः ।।८।।

पदार्थ–(धनधामसुतैः) धन धाम और सुतादि से (वनिताभिः) तथा युवती स्त्रियों से (अलम्) क्या लाभ ? (तीर्थनिवासमखादिफलं) तीर्थों पर रहने से और यज्ञादि करने से (किमु) क्या फल ? (जगदीशकथां) जगदीश की कथा को (चेत्) यदि (नच) नहीं (गायति) गाता है । और (अकृतप्रभुपादरतिः) यदि प्रभु के चरणों में प्रेम नहीं करता है तो सब व्यर्थ हैं ।।

भावार्थ––उन जीवों के पास इस लोक के सुख साधन के लिये धनादि हैं, तथा परलोक के सुखसाधनार्थ वे तीर्थों पर निवास तथा यज्ञादि करते हैं पुनः वे जीव कैसे निन्दनीय हैं और कैसे त्याज्य हैं ? इस शङ्का का उत्तर देते हैं––अनन्त धन और ऐश्वर्य, बड़े-बड़े ऊँचे और विशाल महल और पुत्रादि तथा सुन्दर २ अगणित रमणियों से क्या लाभ ? ये सब तो अज्ञानजनित क्षणिक सुख देने

वाले हैं, वास्तव में तो दुःखरूप हैं। तीर्थस्थानों पर निवास का तथा यज्ञादि का फल स्वर्गादि सुख है, वह भी क्षणिक है, अतः इनसे भी क्या लाभ ? हाँ, प्रेम सहित हरिनाम सङ्कीर्तन तथा भगवत्कथा से प्राप्त सुख की अपेक्षा ये उपर्युक्त सब सुख अति तुच्छ हैं। यदि प्राणी भगवत्कथा को प्रेम से नहीं सुनता या गाता है, अर्थात् हरिनाम उच्चारण करते २ तन्मय नहीं हो जाता है और श्यामसुन्दर के चरण कमलों में प्रेम नहीं करता है तो सब व्यर्थ हैं। यदि ये ऊपर वर्णन की हुई बातें भगवत्कथा-प्रीति में सहायक हैं तब तो सेवनीय हैं, अन्यथा इनका त्याग देना ही श्रेयस्कर, कल्याणकारी है।

भगवद्भक्तिशून्यानां सङ्गतिः सिंहादिक्रूरप्राणिसङ्गमादप्यधिक दुःखदा अतस्ते हेया इत्याशयेनाह मकरादिति ॥

मकरान्मृगराजभुजङ्गमतः
गरलाद् ग्रहरोगदवानलतः ।
क्षुध आतपतो न बिभेमि तथा
प्रभुपद्रतिशून्यहृदश्च यथा ॥६॥

मकरो जलचरजीवविशेषस्तस्मात्। मृगराजाश्च भुजङ्गमाश्च मृगराजभुजङ्गमास्तेभ्यो मृगराजभुजङ्गमत इति समाहार एकवद्भावो वा पञ्चमी बहुवचनार्थे तसिः। गरलाद् विषात्। ग्रहाः क्रूराः शनैश्चरादयो, रोगा ज्वरादयो, दावानलो वनाग्निस्तेभ्यो ऽत्रापि पूर्ववत्तसिः। क्षुधो बुभुक्षाया, आतपतः सूर्यस्य उष्ण प्रकाशात् तथा इत्थं न बिभेमि यथा प्रभोः श्रीकृष्णस्य पदोः पादयोः रतिस्तया शून्यं हृद् हृदयं यस्य तस्मात्प्रभुपद्रतिशून्यहृदो बिभेमि। मकरादीनां सङ्गमात्तु सकृदेव देहपातो दुर्जनसङ्गमात्पुनःपुनर्जन्म-मरणमतस्तेभ्योऽप्यधिकभयहेतव इति भावः ॥६॥

पदार्थ--(मकरात्) मगरमच्छ से (मृगराजभुजङ्गमतः) सिंह

और साँप से (गरलात्) विष से (ग्रहरोगदवानलतः) शनि आदि क्रूर ग्रह, ज्वरादि रोग तथा वन की आग से (क्षुधः) भूख से (आतपतः) सूर्य की गर्मी से (तथा) उतना (न बिभेमि) मैं नहीं डरता हूँ, (तथा) जितना (प्रभुपद्रतिशून्यहृदः) प्रभु के चरणों में प्रेम से शून्य हृदय वाले से डरता हूँ।

भावार्थ––भगवद्भक्ति से शून्यजनों की सङ्गति सिंहादि क्रूर, घातक प्राणियों के मेल से भी अधिक दुःख देने वाली होती है, इसलिए हरिभजन से विमुख जनों की संगति त्याग देनी चाहिये––

मगरमच्छादि जलचर जीवों से, सिंहादि हिंसक वनचरों से, सर्पादि भयंकर कीटों से, हलाहल विष से, शनि आदि क्रूर ग्रहों से, ज्वरातिसारादि भयंकर रोगों से तथा वन की भयानक अग्नि से, भूख से और सूर्य की प्रचंड गर्मी से मैं इतना भयभीत नहीं होता जितना आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमलों में प्रेम से शून्य हृदयवाले जनों से डरता हूँ। कारण यह है कि मगरमच्छ सिंह सर्पादि के द्वारा एक बार ही मृत्यु होती है किन्तु हरि-विमुख दुर्जनों के संग से बार २ जन्म मरण होते हैं, इसलिए वे अधिक भयानक हैं।

भगवद्भक्तस्तु जातिधनादिना हीनोऽपि सेव्य इत्याशयेनाह-हृदीति।

हृदि यस्य सदा व्रजराजरतिः
स मुनि द्विज पण्डित साधुमतिः।
गुरुपूज्य सुरेन्द्र नरेन्द्र यतिः
मम तस्य पदाब्जयुगेस्तु नतिः॥१०॥

ब्रजराजे श्रीकृष्णे रतिर्व्रजराजरतिर्यस्य हृदये सदास्ति, स एव मुनिश्च द्विजश्च पंडितश्च साधु श्रेष्ठा मतिर्यस्य स साधुमतिः।

गुरुश्च पूज्यश्च सुरेन्द्रश्च नरेन्द्रश्च यतिश्च स एव। मुनिद्विजाति-वत्समान्य उत्तमगतिप्राप्त्या तत्तुल्यो वेतिभावः। तस्य पदाब्जे चरण-कमलद्वन्द्वे मम नतिर्नमस्कारोऽस्तु ॥१०॥

पदार्थ--(यस्य) जिसके (हृदि) हृदय में (सदा) सर्वदा (व्रजराजरतिः) व्रजराज श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम है, (स) वही (मुनिद्विजपण्डितसाधुमतिः) मुनि है, ब्राह्मण है, पण्डित है और श्रेष्ठ बुद्धि वाला है। (गुरुपूज्यसुरेन्द्रनरेन्द्रयतिः) वही गुरु है, पूजनीय है, सुरेन्द्र और नरेन्द्र के समान है और वही यति, संन्यासी है। (तस्य) उस महापुरुष के (पदाब्जयुगे) दोनों चरणकमलों में (मम) मेरा (नतिः) नमस्कार (अस्तु) हो।

भावार्थ--भगवद्भक्त तो जाति तथा धन से भी चाहे रहित हो तो भी सेवा के योग्य है। इस विषय में कहते हैं--जिस भक्त के हृदय में सदा व्रजराज श्री कृष्णचन्द्र के प्रति प्रगाढ प्रेम है, अनुराग है, वही मुनि है, विद्वान् ब्राह्मण है, सदसद् विवेकशील पण्डित है तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाला मनुष्य है, वही गुरु है, पूजा, सम्मान के योग्य है, वही सुरेन्द्र, देवताओं का स्वामी है तथा नरेन्द्र, नरपति है और वही यति, संन्यासी है। ऐसे भगवत्प्रेमी सज्जनों के दोनों चरण कमलों में मेरा बारम्बार नमस्कार है।

इति त्रोटक-रत्न-दशकम्।

अथ मालिनी रत्न दशकम्

अथानाद्यविद्याकामकर्मसंस्कारवशाद्भवाटव्यां भ्रमतां प्राणिनां (समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः) इति मुण्डकोपनिषद् दर्शितानांविविधकुत्सितदशां प्राप्तानां तन्निष्का-सोपायं भगवत्प्रार्थनां प्रदर्शयितुं संसारारण्यं निरूपयन् (जोषयेत्सर्व-कर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्) इति भगवद्वचनपरिपालनाय भगवन्तं प्रार्थयतिभववन इति त्रिभिः ।

भववन इह घोरे क्रोधकामादि चोरे,
सुतयुवतिभुजङ्गे, भोगतृष्णाविहङ्गे ।
शमदमदलशीर्णे, रोगशूलादिपूर्णे,
विविधभयसमीरे, शुष्कसत्सङ्गनीरे ।।१।।

प्रकृतिपरविनीतान्, मोहमैरेयमत्ताञ्-
श्रमिततृषितभीताञ्, शोकसिंहैर्गृहीतान् ।
स्वदुरितभरयुक्तान्, पुण्यपाथेयमुक्तान्
सपदि नय मुरारे, नो निजे शान्त्यगारे ।।२।।

भवो जन्ममरणादिसंसारः स एव वनं वनवद्विविधवेदनाप्रदः इह अस्मिन् घोरे भयानके भववने संसारारण्ये प्रकृतिः अविद्या सैव परः शत्रुस्तेन विशेषेण नीतान् प्राप्तान् नः अस्मान् हे मुरारे निजे स्वीये शान्तिश्चासौ अगारं शान्त्यगारं तस्मिञ्छान्तस्वरूपे धामनि सपदि शीघ्रमेव नय प्रापयेति द्वयोरन्वयः ।

कथंभूते भववने कामक्रोधादयश्चोरास्तस्करा यस्मिंस्तत्र आदि शब्देन लोभमोहाहङ्कारा ज्ञेयाः । सुताश्च युवतयश्च सुतयुवतयः पुत्रकलत्राणि ता एव भुजंगाः सर्पा यस्मिन् । भोगतृष्णा एव विहंगाः पक्षिणो यस्मिन् । शमो मनोनिग्रहो दम इन्द्रियनिग्रहस्तावेव

दलानि पत्राणि शीर्णानि यस्य तस्मिन् । ज्वरादिरोगा एव शूलादय: कण्टकादयस्तै: पूर्णे आदि शब्देन शर्करा ज्ञेया: । नृपव्याघ्रादिनिमित्तं विविधं भयमेव समीर: पवनो यस्मिन् शुष्कं सत्संग एव नीरं जलं यत्र दुर्लभसत्संगपानीय इत्यर्थ: । कथं भूतान्नो मोह एव मैरेयं मदिरा तस्य पानेन मत्तान् क्षीबान् आत्मानुसन्धानरहितान् । श्रमिता: परिश्रमयुक्तास्ते च तृषिता: पिपासितास्ते च भीता भययुतास्तान् पुत्रपत्नीमरणादिनिमित्ताशोका एव सिंहास्तैर्गृहीतान्स्ववशेप्राप्तान् । स्वस्य दुरितानि पापान्येव भरो भारस्तेन युक्तान् पुण्यानि सुकृतान्येव पाथेयं पथिभोज्यं तेन मुक्तान् रहितानिति ।।१-२।।

पदार्थ--(इह) इस (घोरे) भयानक (भववने) संसार रूपी वन में (प्रकृतिपरविनीतान्) अविद्यारूपी शत्रु से पकड़े हुये (न:) हमको (मुरारे) हे मुर नामक राक्षस के मारने वाले (निजे) अपने (शान्त्यगारे) शान्तस्वरूप धाम में (सपदि) शीघ्र (नय) ले चलिये । इस संसार रूपी गहन वन में (क्रोधकामादिचोरे) कामक्रोध आदि चोर निवास करते हैं । (सुतयुवतिभुजङ्गे) पुत्र और स्त्री आदि सर्प हैं । (भोगतृष्णाविहंगे) भोग और तृष्णा रूपी पक्षी हैं । (रोगशूलादि पूर्णे) यह रोग आदि काँटों से पूर्ण है । (विविधभयसमीरे)अनेक प्रकार की भयरूपी पवन चल रही है । (शुष्कसत्सङ्गनीरे) सत्संगरूपी जल सूख गया है, ऐसा यह संसार है । हम कैसे हैं—जो (मोहमैरेयमत्तान्) मोहरूपी मदिरा में मस्त हैं । (श्रमिततृषितभीतान्) थके हुये प्यासे और डरे हुये हैं । (शोकसिंहैर्गृहीतान्) हमें शोक रूपी सिंह ने पकड़ रखा है । (स्वदुरितभरयुक्तान्) अपने पापों के भार से युक्त हैं । (पुण्यपाथेयमुक्तान्) पुण्यरूपी पाथेय (मार्ग-भोजन) से रहित हैं ।

भावार्थ--अब अविद्याजनित कर्मसंस्कार वश से इस संसार रूपी वन में भटकते हुये तथा अनेक प्रकार की बुरी दशा को प्राप्त

हुये प्राणियों के उद्धार के लिए संसाररूपी वन की भयंकरता दिखाते हुये इन दो श्लोकों द्वारा भगवान् से प्रार्थना करते हैं--

हे प्रभो अनेक प्रकार की वेदनाओं से परिपूर्ण यह संसाररूपी वन है। इस भयानक संसाररूपी वन में, अविद्यारूपी शत्रु से पीडित हमको, हे मुरारि, अपने शान्तिस्वरूप धाम में शीघ्र ले चलिए, अर्थात् हमारे अविद्यारूपी अन्धकार का नाश करके हमें शांति प्रदान कीजिए।

हे भगवन्, इस संसाररूपी भयंकर वन में काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि चोरों का निवास है, यहां पुत्र स्त्री रूपी भयानक सर्प रहते हैं, भोग तृष्णा आदि पक्षिगण हैं। इस डरावने वन के शम (मन को वश में करना) दम (इन्द्रियों का दमन) रूपी पत्ते झड़ चुके हैं, अर्थात् हम इतने अशक्त हो गये हैं कि न मनको वश में रख सकते हैं, न इंद्रियों के वेगों को रोक सकते हैं। यह वन, हमारा शरीर अनेक प्रकार के रोगरूपी काँटों से पूर्ण है।

यहाँ नृप रूपी सिंहव्याघ्रादि द्वारा विविधभयरूपी पवन बड़े वेग से चल रही है। यह संसाररूपी वन सत्संगरूपी जल के बिना शुष्क हो चुका है। हम लोग यहां मोहरूपी मदिरा को पान करके मस्त हो रहे हैं, हमें अपनी आत्मा का भी अनुसंधान नहीं है, हम थके हुए, प्यासे और भयभीत हैं। पुत्र पत्नी आदि की मृत्यु आदि शोक रूपी सिंह ने हमें पकड़ रखा है। अपने अनेक प्रकार के पापरूपी भार से हम दबे हुए हैं और हमारे पास पुण्य रूपी पाथेय (मार्ग-भोजन) भी नहीं है, ऐसी दशा में, हे करुणासागर भगवन् आप ही शांति प्रदान करने वाले हैं।

ननु केन प्रकारेण नयामीत्याकाङ्क्षायामाह विषयविषेति।

विषयविषविलेहान्, कालदावैधदेहान्
तवपदसृतिमुग्धान्, प्रेमपीयूषलुब्धान्।

अकृतनिजनिवासान्, भग्नभूजीवनाशान्
प्रतिनिजभुजयष्टिं, देहि देवान्धदृष्टीन् ॥३॥

पुनः कथं भूतान्नः शब्दादयो विषया एव विषं तदेव विशेषेण लेह्यो भोजनं येषां तान् । लवक्षणादिरूपकाल एव दावो वनाग्निस्तत्र एधाः[१] शुष्ककाष्ठतृणानि तत्तुल्यदेहा येषां तान् । कालवनाग्निना दग्धदेहान्नित्यर्थः । तव पदं स्थानं धामेति यावत् तस्य सृतिर्मार्गस्तत्र मुग्धान् मूढान् । त्वयीति शेषः । त्वयि प्रेमैव पीयूषं तत्र लुब्धान् अभिलाषुकान् । न कृतो निजनिवासो विश्रामालयो यैस्तान् निराश्रयान् । भग्ना भुवि जीवनाशा येषां तान् । अंधाऽविवेकात्मिका दृष्टिर्येषां तान्न इत्यनुवर्तनीयं नोऽस्मान्प्रति हे देव निज भुजयष्टिं स्वीयभुजदंडं देहि अस्माकं करे स्वबाहुयष्टिं दत्वा नः स्वधाम नयेति समुच्चयार्थः ॥३॥

पदार्थ—(विषयविषविलेहान्) विषयरूपी विष में लिपटे हुए (कालदावैधदेहान्) कालरूपी दावाग्नि में ईंधन के समान देह वाले (तवपदस्मृतिमुग्धान्) आपके स्थान के मार्ग से अनभिज्ञ (प्रेम पीयूषलुब्धान्) आपके प्रेमरूपी अमृत के लोभी (अकृत निजनिवासान्) जिन्होंने अपना विश्राम स्थान भी नहीं बनाया है (भग्नभूजीवनाशान्) जिनकी संसार में जीवन की आशा भी भग्न हो चुकी है (अंधदृष्टीन्) ऐसे अंधदृष्टि वाले (नः) हमको (प्रतिनिजभुजयष्टीन्) हे प्रभो, अपनी भुजारूपी लकड़ी का (देहि) सहारा देकर अपने धाम में ले चलिये ।

भावार्थ--"किस प्रकार मैं तुमको अपने शांतिधाम में ले जाऊँ, इस आकाङ्क्षा में कहते हैं--हम कैसे हैं पहले यह पुनः बताते हैं--शब्द, रूप, रसादि विषयरूपी विष ही हमारा भोजन है, अर्थात् हम रात दिन विषयों में लिप्त रहते हैं, कालरूपी वन

---

[१] एधोऽदन्तः पुंसि प्रोक्तः ।

की आग ने हमारे शरीर को शुष्क ईंधन की तरह जला रखा है। आपके धाम के मार्ग के प्रति भी हम अनभिज्ञ हैं, किंतु आपके प्रेमरूपी अमृत के हम निरंतर अभिलाषी हैं, हमने अपने निवास के लिए विश्रामालय भी नहीं बनाया है अर्थात् हम निराश्रय पड़े हैं। इस संसार में जीवन की हमारी आशा नष्ट हो चुकी है, हम अज्ञान के कारण अंधे हैं, इसलिए हे करुणा-सागर श्यामसुन्दर हमें अपनी भुजारूपी लकड़ी का सहारा देकर ऐसी कृपा करिये जिससे हम आपके धाम में पहुँच जावें।

अथ सिंहावलोकनन्यायेन पुनरपि भगवद्दर्शनं प्रार्थयति-प्रियेति।

प्रियवदनविधुं मे, दर्शय त्वं स्वकीयं
हरति हृदयतापं, यश्च तं दर्शनीयम्।
अपहृतजनचित्तं, योगिनामात्मवित्तं
स्वजनदयिततूर्णं, घार्ण्यपीयूषपूर्णम् ॥४॥

हे प्रिय, स्वजनदयित स्वजना भक्ता दयिताः प्रिया यस्य स स्वजनदयितस्तस्य सम्वोधनम्। त्वं मे मह्यं स्वकीयं नैजं वदनविधुं मुखचन्द्रं तूर्णं शीघ्रमेव दर्शय। कथंभूतं यो मुखचन्द्रो भक्तानां स्वदर्शदाने हृदयतापं विरहजं दुःखं हरति तं दर्शनीयं दर्शनयोग्यम्। तथा च अपहृतजनानां भक्तानां चित्तं येन तं योगिनाम् आत्मवित्तम् आत्मवत्प्रियं धनम्। घार्ण्य कारुण्यमेव पीयूषं अमृतं तेन पूर्ण-मिति ॥४॥

पदार्थ--(प्रिय) हे प्यारे (स्वजनदयित) अपने भक्तों से प्यार करने वाले (त्वं) तुम (मे) मेरे लिए (स्वकीयं) अपना (वदन-विधुम्) मुखरूपी चन्द्र को (तूर्णम्) शीघ्र ही (दर्शय) दिखलाओ। (यः) जो मुखचन्द्र (हृदयतापं) भक्तों के हृदयताप को (हरति) हरता है। (तं) उस (दर्शनीयं) दर्शन करने योग्य को, (अपहृत-

जनचित्तं) जिसने भक्तजनों के चित्त को हर लिया है, (योगिनां) जो योगियों के लिए (आत्मवित्ताम्) आत्मा की तरह प्यारे धन के समान है (घार्ण्यपीयूषपूर्णम्) और जो करुणा रूपी अमृत से परिपूर्ण है ।

भावार्थ--अब सिंहावलोकन-न्याय से फिर भी भगवन् से दर्शन की प्रार्थना करते हैं--

हे प्यारे श्यामसुन्दर, हे अपने दासों पर सदा प्रेम करने वाले भक्तवत्सल प्रभो, आप मुझे अपने चन्द्ररूपी मुख के दर्शन शीघ्र कराइये, अर्थात् कृपा करके मुझे शीघ्र दर्शन दीजिए । हे दयालु भगवन् आपके मुखचन्द्र के दर्शन से भक्तों के हृदय का ताप शीघ्र ही दूर होता है अर्थात् आपका मुखचन्द्र भक्तों की वियोगाग्नि शीघ्र ही शांत कर देता है । यह योगियों को आत्मा के समान प्यारा धन है और आपकी करुणारूपी अमृत से भरा हुआ है । ऐसे मुख-चन्द्र के मुझे दर्शन कराइये ।

इदानीं दर्शनाभिलाषुको दर्शनकारणं दास्यसख्यतादात्म्यमिति त्रिविधसम्बन्धं प्रार्थयति-कुर्विति ।

कुरु निजपददासं, मानसं मामकीयं,
यदुवर कुरु कायं, स्वं सखायं मदीयम् ।
अमरनुतनिजात्मा–नं ममात्मामेव
तव च मम च संगस्त्वेवमद्यास्तु देव ।।५।।

हे यदुवर मदीयं कायं देहं निजपददासं स्वचरणयोः सेवकं कुरु । तथा च मामकीयं मदीयं मानसं चित्तं स्वं स्वीयं सखायं मित्रं कुरु । हे अमरनुत देवस्तुत ममात्मानं निजात्मानमेव कुरु। हे देव एवं त्रिधा तव च मम च सङ्गः सम्बन्धोऽद्य इदानीमस्त्वित्यन्वयार्थः । त्रिविध-सम्बन्धिभ्यो भगवन् स्वयमेव दर्शनं ददातीति विचार्य्यात्र त्रिविधसंगः

प्रार्थितः । तथाहि दास्येन हनुमते सख्येनार्जुनाय तादात्म्येन जनक-राजाय स्वयमेव भगवता दर्शनं दत्तं नतु तैः पौरुषं कृत मिति।।५।।

पदार्थ--(यदुवर) हे यदुवंश में श्रेष्ठ, मदीयं मेरे (कायं) शरीर को (निजपददासं) अपने चरणों का सेवक कीजिए, बनाइए। (अमरनुत) हे देवताओं से स्तुति किये गये प्रभो (मम) मेरी (आत्मानं) आत्मा को (निजात्मानं) अपनी आत्मा (एव) ही (कुरु) करिए (देव) हे देव (एवम्) इस प्रकार (तव च) आपका (मम च) और मेरा (सङ्गः) सम्बन्ध (अद्य) अभी (अस्तु) हो जाय।

भावार्थ--अब दर्शनाभिलाषी भक्त प्रभु से दर्शन के कारण दास्य, सख्य तथा तादात्म्य इन तीन प्रकार के सम्वन्धों की प्रार्थना करते हैं--

हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्री कृष्णचन्द्र मेरे इस शरीर को अपने चरणों का सेवक वना लीजिए, तथा हे प्रभो, मेरे इस चित्त को अपना सखा, निरन्तर साथ रहने वाला साथी वना लीजिए। देवता जिनकी निरन्तर स्तुति करते हैं ऐसे हे मनमोहन, मेरी आत्माको अपनी आत्मा में मिला लीजिए अर्थात् में आप में ही मिल जाऊँ ऐसी कृपा करिए। हे देव ! इस तरह तीन प्रकार से आपका और मेरा अटूट सम्वन्ध अभी से हो जाय ऐसा उपाय करिए।

दास्य-भाव रखने से हनुमान् को, सख्य-भाव रखने से अर्जुन को और तादात्म्यभाव रखने से महाराज जनक को अपने आप ही भगवान् ने दर्शन दिये, इसके लिए उन्होंने कोई पुरुषार्थ नहीं किया।

ननु धनिकराजादिभिर्वा विरक्तसाधुभिरक्षगोचरैः सङ्ग-मन्विच्छ किमनक्षगोचरेणाधोक्षजेनेच्छसि अलमनया क्लिष्टकल्पनया वेत्याशङ्कायामाह- नयनपथेति।

नयनपथगतानां, सन्ति केचिद्विरक्ताः
सदयहृदयवन्तस्ते च पातुं न शक्ताः ।
शरणमिह मदीयं, नास्त्यतस्त्वद्द्वितीयं
प्रियवर कुरु रक्षामीश रक्तोऽसि दक्षः ।।६।।

नयनपथगतानां नेत्र मार्ग प्राप्तानां, अक्षिगोचराणां मध्ये केचिद् धनिकधरानाथादयो मयीति शेषो मयि विरक्ताः सन्ति धनाभिमानेन मत्ता मयि भिक्षुके नानुरक्ता मां नैवेच्छन्तीत्यर्थः । ये च दयया सहितं हृदयं सदयहृदयं तद्वन्तस्तेन युक्तास्ते दयालवो मां पातुं मदीयं योगक्षेमं कर्तुं न शक्ता अतः कारणात् इह संसारे त्वत् त्वत्तो द्वितीयं अन्यत् मदीयं शरणं रक्षकं नास्ति । हे प्रियवर अतस्त्वमेव मम रक्षां कुरु । हे ईश समर्थ त्वं रक्तोऽसि अनुराग युक्तोऽसि कारुणिकोऽसीत्यर्थः, तथाच दक्षो रक्षणे निपुणोऽसीति ।।६।।

पदार्थ--(नयनपथगतानां) आँखों के द्वारा देखने वाले (केचित्) कोई धनी तथा राजा आदि (विरक्ताः) मुझसे विरक्त (सन्ति) हैं । (सदय हृदयवन्तः) और जो दयालु तथा सहृदय हैं (ते) वे (पातुं) मेरी रक्षा करने में (न शक्ताः) असमर्थ हैं (अतः) इस कारण से (इह) इस संसार में (त्वद्द्वितीयं) आपसे दूसरा (मदीयं) मेरा (शरणं) रक्षक (नास्ति) कोई नहीं है। (प्रियवर) हे प्यारे श्यामसुन्दर, इसलिए आप ही मेरी (रक्षां) रक्षा (कुरु) करिए । (ईश) हे सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वर (रक्तोऽपि) आप अनुराग से युक्त हैं। (दक्षः) और आप ही मेरी रक्षा करने में निपुण (अस्ति) हैं ।।६।।

भावार्थ--धनवानों तथा राजामहाराजाओं की, जो प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं सङ्गति करनी चाहिये जिससे धनादि सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हो । किन्तु जो अदृश्य है, अगोचर है, उससे सङ्गति की प्रार्थना से क्या लाभ ? ऐसी शंका का उत्तर देते हैं--

प्रत्यक्ष दिखलाई देने वालों में धनवान् तथा राजा महाराजादि मुझसे विरक्त हैं, मुझसे उदासीन हैं, क्योंकि धन राज्यादि के मद में वे मत्त हैं, वे मेरे जैसे दीन हीन भिक्षु में क्यों अनुराग रखेंगे अतः वे मुझे नहीं चाहते और जो दयालु तथा सहृदय व्यक्ति हैं, वे मेरा योगक्षेम कर नहीं सकते, वे मेरी रक्षा करने में असमर्थ हैं, इस कारण से इस संसार में, हे दीनानाथ, अनाथ-रक्षक, आपके अतिरिक्त कोई और दूसरा मेरा रक्षक नहीं है। हे दीनबन्धु प्राण प्यारे अब आप ही मेरी रक्षा करिए। हे सर्व-शक्तिमान् आप करुणा-सागर हैं, अतः आप ही दासजनों की रक्षा करने में दक्ष हैं।

प्रार्थना दार्ढ्यार्थ पुनरपि तदभीष्टं प्रार्थयति—निगम कथितेति—

निगमकथितकीर्त्ते, नाथ तेनाथनाथ
सकरुणहृदसोदं, नाथितं नाथयाथ।
पुनरपि भवतोन्यं, नो यथानाथयेयं
निरयमयभवेस्मिन्, कानने न भ्रमेयम् ॥७॥

निगमैर्वेदैः कथिता कीर्त्तिर्यस्य स निगमकथितकीर्त्तिस्तस्य सम्बोधनं हे निगमकथितकीर्त्ते। इदं पूर्वोक्तं संसारारण्यनिष्कासनं दास्यं सख्यं तादात्म्यं च नाथितं याचितं नाथते याचते मह्यं नाथय आशंसय देहीत्यर्थः। करुणया सहितं हृद् हृदयं यस्य स सकरुणहृद् हे नाथ यतस्त्वं कारुणिकोसि। नाथानां ब्रह्मादीनां नाथो नाथनाथ-स्तस्य सम्बोधनं हेनाथनाथ अनाथनाथेति वा। अथ त्वत्प्रार्थनानन्तरं पुनरपि भवतोन्यं यथाहं नो नाथयेयं न याचेयं तथं चैवं कृपां कुरु यथाहं निरयं निरयमयभवे दुःखबहुले संसारेऽस्मिन् कानने संसारण्य इत्यर्थः। न भ्रमेयं भ्रमणं न कुर्यामिति ॥७॥

पदार्थ—(निगमकथितकीर्त्ते) वेद जिसकी कीर्त्ति का बखान करते हैं, ऐसे हे प्रभो, (इदं) इस पहले कहे हुए (नाथितं) अभीष्ट को (नाथते) माँगने वाले मुझ को (नाथय) आश्वासन दीजिए।

(सकरुणहृद्) प्रभो, आप दयालु हृदय वाले (असि) हैं। (नाथ-नाथ) हे नाथों के नाथ (अथ) इसके पश्चात् (भवतः) आपसे (अन्यं) और दूसरों से (पुनरपि) फिर (तथा) जैसे मैं (नो नाथयेयं) नहीं माँगूँ और (अस्मिन्) इस (निरयमयभवे) दुःख बहुल-संसाररूपी (कानने)वन में (न भ्रमेयं) मैं घूमता न फिरूँ ऐसी कृपा दास पर करिये।

भावार्थ--प्रार्थना की दृढता के लिए फिर अपने अभीष्ट की प्रार्थना करते हैं--

वेद आपकी कीर्त्ति का बखान करते हैं, ऐसे हे प्रभो, पूर्वोक्त संसाररूपी वन से उद्धार के लिए दास्य, सख्य और तादात्म्यभाव मैंने माँग लिया, अब मुझ भिक्षुक को आश्वासन देकर सनाथ, कृतार्थ करिए। हे नाथ आप बड़े दयालु हैं, आप ब्रह्मादि देवों के भी नाथ, स्वामी हैं, या अनाथों के नाथ हैं। अब आप से प्रार्थना के अनन्तर फिर आपके अतिरिक्त मैं किसी से कुछ न माँगूं, ऐसी कृपा आप मुझ पर करिए, हे दयालो भगवन्, अनेक दुःखों से परिपूर्ण इस संसाररूपी भयंकर वन में मैं फिर न घूमता फिरूँ, बस दास पर ऐसी कृपा करिए।

ननु कथं पुनःपुनर्दास्यादि सम्बन्धं प्रार्थयसीत्याकाङ्क्षायां यावन्ति संसारदुःखानि दास्यादि भगवत्सम्बन्धपर्यवसानान्यतोदुःख मोक्षेच्छुभिस्तत्सम्बन्धा आश्रयणीया इत्याशयेनाह-वसुसुतेति ॥

वसुसुतसुहृदर्थं, तावदस्तीश शूलं
विपुलपरिभवो वा, ऽहं ममेत्यार्त्तिमूलम् ।
भवननिगडमुग्रं, लालसालोभशोकाः
सुहृदघदमनं त्वा, यावदाप्ता न लोकाः ॥८॥

हे ईश, वसु धनं सुताश्च सुहृदो मित्राणि च तेषामर्थं तन्निमित्तं तावदेव शूलं उपतापोस्ति तथा च विपुलं वृहत्परिभवो-

ऽनादरो, वेति चार्थे। देहादिष्वहं भावः पुत्रादिषु ममभावः स एवाऽऽर्त्तिमूलंदुःख कारणमपि तावदेव। भवनमेव निगडं शृंखलं बन्धनहेतुत्वात् तदेव उग्रं भयंकरम्। तथा च लालसा अत्यन्तेच्छा, लोभः शोकश्चापि तावदेव यावल्लोकाः प्राणिसमूहास्त्वां भगवन्तं नाप्ता न प्राप्ताः। कथं भूतं त्वां सहृदां भक्तानां अघदमनं पापहन्तारमिति ॥८॥

पदार्थ--(ईश) हे ईश्वर (वसुसुतसुहृदर्थं) धन पुत्र और मित्रों के निमित्त (तावत्) तब तक ही (शूलं) शूल, कष्ट (अस्ति) है, (विपुलपरिभवो वा) और बहुत भारी अनादर भी तभी तक है (अहं ममेत्यार्त्तिमूलं) तथा देहादि में अहंभाव, पुत्रादि में ममता, यह दुःख का कारण भी तभी तक है। (भवननिगडं) यह घर रूपी साँकल, बन्धन (उग्रं) बड़ा भयंकर है, (लालसालोभशोकाः) प्रवल कामना, लोभ और शोकादि भी तभी तक हैं (यावत्) जबतक (लोकाः) प्राणियों का समूह (सुहृदघदमनं) भक्तों के पापों का नाश करने वाले (त्वाम्) आपको, भगवान् को (न आप्ताः) प्राप्त नहीं हुये हैं।

भावार्थ--वारम्बार दास्यादि सम्बन्ध की तुम क्यों प्रार्थना करते हो ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं--जितने भी संसार के दुःख हैं उनका दास्य सख्य आदि भाव द्वारा भगवत् सम्बन्ध से अन्त होता है अतः दुःख से छूटने की इच्छा वालों को भगवत् संबंध का आश्रय लेना ही चाहिये। इसलिए कहते हैं--

हे दयासागर भगवन्, इस असार संसार में धन पुत्र तथा मित्रादि के लिए कष्ट तभी तक ही है, अत्यन्त अनादर भी तभी तक है, तथा शरीरादि नश्वर वस्तुओं में अहं भावना, पुत्रकलत्रादि में ममत्व ये सब दुःख के कारण भी तभी तक हैं, गृहरूपी बन्धन भी बड़ा भयंकर है, किं च प्रबल इच्छाएँ लोभ शोकादि भी तभी तक हैं जब तक इस संसार के प्राणी भक्तों के पापों को नष्ट करने

वाले दयालु आपको नहीं प्राप्त करते हैं अर्थात् ये सब कष्ट तभी तक हैं जब तक हम उस करुणा-सागर प्रभु श्यामसुन्दर की शरण में नहीं जाते हैं।

इदानीं (विषयाविनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्ज रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते) इति स्मृत्यर्थ प्रदर्शयन् भगवत्सन्निधिमभिलषति––सहेति

सह करणकदम्बैर्विग्रहः क्षीणशक्तिः
भवति न च तथापि क्षुद्रभोगाद्विरक्तिः।
नवविषयविलासे, वर्द्धते दुष्टतृष्णा
स्वचरणशरणान्नो, हा क्व हित्वास्ति कृष्णः ॥९॥

करणकदम्बैः इन्द्रियसमूहैः सह विग्रहो देहः क्षीणशक्तिर्विषयभोगसामर्थ्यरहितोपि तथापि क्षूद्रभोगात् अल्पविषयसुखभोगादपि विरक्तिः वैराग्यं न भवति प्रत्युत लवविषयविलासे अणुविषयविभ्रमेपि दुष्टतृष्णा वर्द्धत एव। यथा कश्चिन्नाटचे सिंहवेषं मनुष्यं दृष्ट्वा विह्वलः सन् सहसैव स्वासिं स्मरेत्तथाहि कदाचिच्चित्तचापल्यमवलोक्य विक्लवः सन्नात्मत्वेनान्तर्यामित्वेन ध्येयत्वेन च सन्निकृष्टमपि स्वप्रियं श्रीकृष्णमनिकटमिव मत्वाऽऽह हा कष्टम् अस्मिन् भयस्थाने नः अस्मान् हित्वा त्यक्त्वा कृष्णः क्व कुत्रास्ति कुत्र गतः। कथं भूतान्नः स्वस्य श्रीकृष्णस्य चरणावेव शरणे रक्षके येषां तान्। इयं प्रेम्णः काचिद् भूमिकायाः गोचरेप्यगोचरबुद्धिर्यथा जलक्रीड़ायां प्रत्यक्षमपि श्रीकृष्णमप्रत्यक्षमिव मत्वा श्री रुक्मिणीप्रमुखानां वैक्लव्यवाक्यानि ॥९॥

पदार्थ—(सहकरणकदम्बैः) इन्द्रियसमूहों के साथ २ (विग्रहः) इस शरीर की भी (क्षीणशक्तिः) शक्ति क्षीण हो जाती है। (तथापि) तोभी (क्षुद्रभोगात्) अल्प विषय सुखों से (विरक्तिः) वैराग्य (न भवति) नहीं होता। (लवविषयविलासे) अपि तु छोटे

छोटे २ विषय-विलास में (दुष्टतृष्णा) यह दुष्ट तृष्णा (वर्धत एव) बढती ही जाती है। (हा) हाय (स्वचरणशरणात्) अपने चरणों की शरण से (नः) हमको (हित्वा) छोड़कर (कृष्णः) श्रीश्याम-सुन्दर (कुत्र अस्ति) कहाँ चले गये हैं।

भावार्थ--अब "निराहारी पुरुष की इन्द्रियों के विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, राग निवृत्त नहीं होता, पर परमात्मा को साक्षात् करके इस पुरुष का राग भी निवृत्त हो जाता है"। इस भाव को दिखलाते हुये भगवान् के सान्निध्य की अभिलाषा करते हैं--

हे प्रभो, हमारी इन इन्द्रियों की शिथिलता के साथ २ इस शरीर की शक्ति भी क्षीण होगई, अर्थात् अब विषयभोग की सामर्थ्य भी नहीं रही, तो भी साधारण विषयसुखों से वैराग्य नहीं होता, प्रत्युत छोटे २ विषयों में फँसकर यह दुष्ट तृष्णा प्रतिदिन बढ़ती ही ज़ाती है। जैसे किसी नाटक में सिंहवेष बनाये किसी मनुष्य को देखकर कोई व्यक्ति व्याकुल होकर एकदम अपनी तलवार को याद कर लेता है उसी प्रकार कभी चित्त की चंचलता को देखकर व्याकुल हो अन्तर्यामी भगवान् को हृदय में विराजमान, ध्यान में आये हुये, समीप होते हुये भी अपने परम प्यारे श्रीकृष्ण चन्द्र को दूर मान कर हम दुखी होते हैं। हाय बड़ा कष्ट है, इस भयानक स्थान में हमको एकाकी छोड़कर वह मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर कहाँ चले गये, उन दयालु प्रभु के चरण ही हमारे रक्षक हैं।

यह प्रेम की भूमिका है--जहाँ प्रत्यक्ष में भी अप्रत्यक्ष बुद्धि हो जाती है। जैसे--जलक्रीड़ा के समय प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण भगवान् को अप्रत्यक्ष की तरह मानकर श्री रुक्मिणी जी आदि व्याकुल हो गई थीं।

तस्यामेव प्रेमभूमिकायामुपालम्भमुखेन स्वरक्षां प्रार्थयति, त्यजसीति ॥

त्यजसि यदि मुकुन्द, त्वं स्वभृत्योपरामः
कमिह शरणमन्यं, स्वार्थसक्तं व्रजामः ।
नलिननयन शौरे, पाहि गोपालदाशान्
विधुवदनविधोऽस्मान्; सर्वतो नो निराशान् ॥१०॥

हे मुकुन्द यदि त्वं स्वभृत्योपरामः स्वदासेषूपरतः सन् नः अस्मान् त्यजसि तदा इह लोके स्वार्थसक्तं स्वप्रयोजनप्रियं कमन्यं शरणं वयं व्रजामो गच्छामस्त्वदन्यो न कोऽपि शरणार्ह इति भावः । प्रेम्णा रोमाञ्चितो गद्गदाक्षरः सन् बहुधा सम्बोधयति नलिननयन, हे कमलनेत्र, शौरे, शूरसेनवंशोद्भव, विधुवदन हेचन्द्रानन, विधो विशेषेण भक्तानामज्ञानं धुनोति नाशयतीति विधुस्तस्य सम्बोधनं हे विधो (विश्वम्भरः कैटभजिद्विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः) इत्यमरेण भगवन्नामसु विधुः कथितः । हे गोपाल, सर्वतः सर्वस्मात् निराशान् स्वरक्षणाशारहितान् नः अस्मान् दाशान्[१] दासान् वा गोपालदास नामधेयान् अस्माञ्चित्तचापल्यखेदात् पाहि स्वोपलब्ध्या तृष्णारहितमचञ्चलं चित्तं कुर्विति भावः ॥१०॥

पदार्थ—हे मुकुंद (यदि त्वं) यदि आप (स्वभृत्योपरामः) अपने भक्तों पर उपेक्षा करके (नः) हमको (त्यजसि) छोड़ रहे हैं तो (इह) इस लोक में (स्वार्थसक्तं) स्वार्थ में लगे हुये (कमन्यं) किस दूसरे की (शरणं) शरण में (व्रजामः) हम जावें । (नलिननयन) हे कमल-नेत्र, (शौरे) हे शूरसेन-वंशी (विधुवदन) हे चन्द्रानन, (विधो) हे भक्तों के अज्ञान को नाश करने वाले (गोपाल) हे गौओं के पालन करने वाले, (सर्वतः) सब ओर से (निराशान्) निराश हुये (नः) हम (दाशान्) दासों की (पाहि) रक्षा करिये ।

---

[१] तालव्यान्तोऽमतो वाऽनुप्रासलोभेनधृतो वस्तुतो दन्त्यान्तः । (रलयोः डलयोश्चैव शसयोर्वबयोस्तथा) इति वाक्येन शसयोः सावर्ण्यात् धृतो वा ।

भावार्थ--उसी प्रेम की भूमिका में उपालम्भ द्वारा अपनी रक्षा के लिये प्रभु से प्रार्थना करते हैं--

हे मोक्ष प्रदान करने वाले भगवन् श्याम-सुन्दर, यदि आप अपने दासों पर उपेक्षा दिखा कर हमें निराधार छोड़ देगें तो इस लोक में, जहाँ सब अपने स्वार्थ की सिद्धि में लग रहे हैं, फिर हम आपके अतिरिक्त किस की शरण में जावें। आपके सिवाय शरण में रखने वाला हमें कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। हे कमलनयन, हे शूर-वंश में जन्म लेने वाले, हे चन्द्रमुख, हे भक्तों के अज्ञानान्धकार को नाश करने वाले श्यामसुन्दर, हे गौओं के पालन करने वाले, सब ओर से निराश हुये हम दासों की रक्षा करिये, अथवा मैं जो गोपालदास नाम वाला हूँ, मेरे चित्त की चञ्चलता से मुझे जो खेद हो रहा है, मेरी रक्षा कीजिये और अपने चन्द्रमुख के दर्शन देकर मेरे चित्त को तृष्णारहित तथा चपलता-विहीन करिये।

इति मालिनी-रत्न-दशकम्।

अथ शार्दूलविक्रीडित-रत्न-दशकम्

इदानीं (बिलेवतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य। जिह्वाऽसती दर्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥१॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्। शावौ करौ नो कुरुत सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२॥ वर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये। पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥३॥) भा० स्कं० २। इत्यादि पुराणार्थमाश्रित्य तत्तदङ्गेन तत्तद्भगवत्सेवां विनेन्द्रियवैयर्थ्यमाह-वाणीति युग्मेन।

वाणी मे भवदीय पुण्ययशसः, शून्या विना गायनं
चित्तं चञ्चलनायकश्च भवतो, ध्यानं विना मामकं।
श्रोत्रं मे श्रवणं विनाथ भगवञ्छून्यं कथायास्तव
वर्णाचारजपव्रताश्रमतपस्ते तत्त्वबोधं विना ॥१॥

शून्ये ते मुखचन्द्रदर्शनमृते, नेत्रे मदीये करौ
शून्यौ मे तव पादसेवनमृते, पादौ च यात्रां विना।
शीर्षं मे प्रणतिं विना च वदनं, ते भुक्तशेषं विना
शून्यं सर्वमृते भवन्तमनिशं, कण्ठश्च कण्ठं विना ॥२॥

हे भगवन् भवदीयपुण्ययशसस्त्वदीयपवित्रकीर्त्तेर्गायनं विना मे मम वाणी शून्या रिक्ता स्वार्थवर्जिता न शोभत इत्यर्थः। भवतो ध्यानं विना चञ्चलनायकः चपलानां स्वामी तेषु मुख्यं मामकं मदीयं चित्तं च शून्यम्। अथ तथा च तव कथायाः श्रवणं विना मे श्रोत्रं शून्यं वर्णाचारः स्नानसन्ध्यावन्दनादिरूपः जपः प्रणवादीनां, व्रता एकादशीप्रभृतयः। आश्रमा ब्रह्मचर्यादयः। तपः स्वाध्यायादि तप इत्येकवद्भावः। ते तव तत्त्वबोधं विना वर्णाचारादि तपोऽन्तं सर्वं शून्यमिति ॥१॥

ते तव मुखचन्द्रदर्शनं ऋते विना मदीये नेत्रे शून्ये । तव पाद-सेवनम् ऋते विना मे मम करौ शून्यौ । ते यात्रां विना तव दर्शनार्थं गमनं विना मे पादौ शून्यौ । ते प्रणतिं प्रणामं विना मे शीर्षं मस्तकं शून्यम् । तथा च ते कण्ठं विना मे कंठं शून्यमिति शेषः । भवन्तं त्वां ऋते अनिशं सततं मे सर्वं शून्यमिति ।।२।।

पदार्थ--हे भगवन् (भवदीयपुण्ययशसः) आपकी पवित्र कीर्त्ति को (गायनं विना) गाने के विना (मे) मेरी (वाणी शून्या) वाणी शून्य, रिक्त है । (भवतः) आपके (ध्यानं विना) ध्यान के विना (चञ्चलनायकः) चपलों के स्वामियों में मुख्य (मामकं) मेरा (चित्तं च शून्यम्) चित्त शून्य है । (अथ) और (तव कथायाः) आपकी कथा के (श्रवणं विना) सुनने के विना (मे) मेरे (श्रोत्रं शून्यम्) कान शून्य हैं । तथा (ते) आपके (तत्त्वबोधं विना) तत्त्वज्ञान के विना (वर्णाचारः) स्नान सन्ध्या वन्दनादि (जपः) प्रणवादि का जप (व्रताः) एकादशी आदि (आश्रमाः) ब्रह्मचर्यादि आश्रम (तपः) स्वाध्यायादि तप ये सब (शून्यम्) शून्य हैं । (ते) आपके (मुखचन्द्रदर्शनं ऋते) मुखचन्द्र के दर्शन के विना (मदीये नेत्रे शून्ये) मेरे नेत्र शून्य हैं । (ते यात्रां विना) हे प्रभो आपके दर्शनार्थ यात्रा के विना (मे) मेरे (पादौ शून्यौ) पाँव शून्य हैं । (ते प्रणतिं विना) आपको प्रणाम किये विना (मे) मेरा (शीर्षं शून्यम्) मस्तक शून्य है । (ते) आपके (भुक्तशेषं विना) भोजन करने के पश्चात् बचे हुये उच्छिष्ठ प्रसाद के विना (मे वदनं शून्यम्) मेरा मुख शून्य है । (ते) आपके (कण्ठं विना) कण्ठ, गले के विना (मे कंठं शून्यम्) मेरा कंठ, गला शून्य है । (भवन्तं विना) आपके विना (अनिशं) रात दिन (सर्वं शून्यम्) सब कुछ शून्य है ।

भावार्थ--(श्री शौनक ऋषि कहते हैं कि हे सूत जी, जो मनुष्य आनंदकंद व्रजचंद्र भगवान् श्यामसुन्दर के विक्रमों, कार्यों को चाव से नहीं सुनता, उसके ये कान सर्प बिल के समान व्यर्थ हैं,

केवल रन्ध्र (सूराख) हैं और जो पुरुष वृन्दावन-विहारी की गाथाओं को प्रेम से नहीं गाता, उसकी जिह्वा मेंढक की जीभ के समान, 'टर्र-टर्र' करने वाली, कटुभाषिणी है ।।१।।

सुन्दर रेशमी पटका बाँधे हुए और किरीट मुकुट पहने हुए भी जो सिर भगवान् मुकुन्द के सामने नहीं झुकता, मुरलीमनोहर की छवि देखकर, विनम्र होकर दण्डवत् प्रणाम नहीं करता वह मस्तक केवल भाररूप है। सुवर्ण के कंकण धारण करने वाले वे हाथ यदि व्रजविहारी की सेवा नहीं करते तो वे मृतक (मुर्दे) के समान अशुद्ध हैं ।।२।।

इसी प्रकार मनुष्यों के जो नेत्र श्री राधारमण विहारी की मूर्त्ति के श्रद्धा तथा प्रेम से दर्शन नहीं करते वे नेत्र केवल मयूर-पंख (चन्दोवे) के तुल्य हैं, एवं मनुष्यों के जो पाँव भगवान् के क्षेत्र क्रीड़ा-स्थलों, गोकुल वृन्दावनादि पवित्र विहार-स्थानों की यात्रा को नहीं जाते वे वृक्षों के समान जड़ हैं ।।३।। भा० २ स्कं० तृतीयोऽध्यायः इत्यादि श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवत्सेवा के विना प्राणी के सब अङ्ग व्यर्थ हैं, इस प्रकार अब इन्द्रियों की व्यर्थता दिखाते है--

हे मनमोहन श्यामसुन्दर आपके पवित्र गुणगान के विना मेरी यह वाणी निरर्थक है, किसी काम की नहीं है। आपके पवित्र ध्यान के विना मेरा यह महाचञ्चल चित्त व्यर्थ है और श्रीमद् भागवतादि की पवित्र कथा सुनने के विना मेरे कान निष्फल हैं। हे दयालु प्रभो, आपके तत्त्वज्ञान के विना स्नान संध्या वंदनादि, ओ३म् आदि का जप, एकादशी आदि का व्रत, ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासादि आश्रम तथा स्वाध्यायादि तप सब निष्फल हैं। हे व्रजचंद्र कृष्णचंद्र, आपके मुखरूपी चंद्र दर्शन के विना मेरी ये आँखें भी व्यर्थ हैं। हे पतित-पावन आपकी चरण-सेवा के विना मेरे हाथ शून्य हैं, तथा आपके दर्शन के लिए मथुरा

वृंदावनादि आपके क्रीड़ा-स्थलों की यात्रा के विना मेरे ये पाँव भी निरर्थक हैं। हे श्यामसुंदर, आपको प्रणाम किए विना, आपके सम्मुख विनीत भाव से झुके विना मेरा मस्तक व्यर्थ है, और आपके भुक्तशेष, उच्छिष्ठ प्रसाद को प्राप्त किए बिना मेरा मुख शून्य है। एवं आपके कंठमिलन के विना मेरा कंठ, गला व्यर्थ है अर्थात् यदि आपने मुझे अपने गले से नहीं लगाया तो मेरा गला निरर्थक है। हे राधारमण आपके विना मेरे लिए यह सारा संसार निष्फल हैं।

ननु निर्गुणं निष्क्रियं निष्कलं निरञ्जनमस्वपरं प्रपञ्चातीतं शान्तं मां विना किं ते सर्वं शून्यं वस्तुतस्तु मयि सर्वं शून्यं तादृश मेकाकिनं मां किं पुनःपुनर्भजसे मत्तोऽन्या वह्वो गुणिनः संति तान् भजस्वेत्येवं प्रेरयंतं भगवंतं प्रति यद्यपि त्वं स्वत ईदृशोसि तथापि स्वभक्तानुग्रहार्थं विविधान्सद्गुणानाविष्करोत्यतस्त्वयि सर्वे गुणाः संति अन्यत्र तु व्यभिचारिणो गुणास्तवैवांशांशा अतस्त्वां भज इत्याशयेनाह विज्ञा इति युग्मेन ।।

विज्ञाः केचन केवलं च विरताः, भक्तप्रियाः सात्विकाः
केचिल्लोकपरोपकारनिपुणा, वाक्यप्रिया दानिनः ।
धीरा धर्मधुरन्धरा अकुटिलाः, कान्ताः कृतज्ञा हरे
केचित्कृष्णकृपालवश्च धनिनो, विद्याप्रदाने रताः ।।३।।

वीराः केचन शुद्धकर्मनिरता, मान्या वदान्याः प्रभो
सिद्धाः सत्यपरायणा विजयिनो, ज्ञानी तु कश्चिन्मतः ।
एकैकांशविभागिनः सुरनरा, एवं मया ज्ञायते
त्वां वै सर्वगुणालयं स्वशरणं, त्यक्त्वेह कं याम्यहम् ।।४।।

हे हरे केचन जनाः केवलं विज्ञाः पण्डिता एव नतु तेषु विरागादयः। केवलमितिपदं प्रत्येकपदेन योज्यम्। केचन केवलं विरता

विरक्ता एव न तु तेषु विद्याभक्तानुरक्तादयोगुणाएवमग्रेपि योज्यम्। भक्ताः स्वसेवकाः प्रिया येषामिति केचन केवलं भक्तप्रियाः। केचन केवलं सात्त्विकाः। केचित्केवलं लोकपरोपकारनिपुणा लोकेषु परोपकारे चतुराः। केचित्केवलं कान्ता मनोहराः। मान्या मानार्हाः। वदान्या दानशूराः। कश्चित्केवलं ज्ञानी मतः। अन्यत्सर्वस्पष्टम्। हे कृष्ण एवं एकैकांशविभागिनस्तव गुणानामेकैकांशविभागवन्तः सर्वे सुराश्च नराश्च सुरनराः। एवं इत्थं मया (यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंशसम्भवम्) इति तववचनादेव ज्ञायते। अतस्त्वां सर्वगुणालयं निखिलकल्याणमन्दिरं वै निश्चयेन स्वशरणं निजत्रातारं त्यक्त्वा इह लोके कम् अन्यं शरणम् अहं यामि न कमपि। परमप्रेमास्पदं त्वामेव भजामीत्यर्थः ॥३-४॥

पदार्थ--हे हरे (केचन) कोई मनुष्य (केवलं विज्ञाः) केवल पंडित हैं (न च विरताः) किंतु उनमें वैराग्यादि गुण नहीं हैं, और कोई केवल (विरताः) विरक्त ही हैं उनमें विद्या नहीं है। कोई २ देवता (भक्तप्रियाः) अपने भक्तों को ही प्यार करते हैं, कोई केवल (सात्त्विकाः) सात्त्विक भाव वाले हैं। (केचित्) कोई केवल (लोकपरोपकारनिपुणाः) लोकों के उपकार करने में चतुर हैं। कोई (वाक्यप्रिया-) बोलने में प्यारे हैं, मधुरभाषी हैं। कोई केवल (दानिनः) दानी हैं, कोई (धीराः) केवल धैर्य वाले हैं। कोई केवल (धर्मधुरन्धराः) धर्मात्मा हैं, कोई केवल (अकुटिलाः) कुटिल, टेढे नहीं हैं, सरलस्वभाव के हैं, कोई २ (कान्ता) केवल मनोहर हैं, कोई (कृतज्ञाः) केवल कृतज्ञ हैं। (हरे) हे पापों के हरने वाले श्यामसुन्दर, कोई केवल (कृष्ण कृपालवः) भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के इच्छुक हैं। कोई केवल (धनिनः) धनवान् हैं। कोई (विद्याप्रदाने रताः) केवल विद्या-दान में संलग्न हैं। कोई (वीराः) केवल शूरवीर हैं, कोई (शुद्धकर्मनिरताः) शुद्ध कर्मों में लीन हैं, कोई (मान्याः) केवल मान योग्य हैं, कोई

(वदान्याः) केवल दान शूर हैं, हे प्रभो कोई केवल (सिद्धाः) सिद्ध हैं तथा कोई केवल (सत्यपरायणाः) सत्यवादी हैं। (कश्चित्) कोई केवल (ज्ञानी मतः) ज्ञानी ही माने जाते हैं, (एवं) इस प्रकार हे भगवन् (सुरनराः) ये देवता और मनुष्य आपके गुणों के (एकैकांशविभागिनः) एक एक अंश के भागी हैं, (एवं मया ज्ञायते) ऐसा मैं समझता हूँ, इसलिए (सर्वगुणालयं) सारे गुणों वाले (स्वशरणं) मेरी रक्षा करने वाले (त्वां) आपको (त्यक्त्वा) छोड़कर (इह) इस लोक में (कं) किस दूसरे की (शरणं) शरण में (अहम्) मैं (यामि) जाऊँ।

भावार्थ—मैं निर्गुण, निष्क्रिय, निष्कल, निरञ्जन, अपने पराये से रहित, प्रपंच से अतीत एकाकी हूँ, मेरे विना तुम्हारा सर्वशून्य क्या? वास्तव में मुझ में ही सर्वशून्यता है ऐसे एकाकी मुझे क्यों बार बार भजते हो? मुझसे और भी अधिक गुण वाले हैं, उनको भजो, उनके भजन से तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध होंगे, इस प्रकार की शंका करने पर भगवान् से कहते हैं—"यद्यपि आप स्वयं ऐसे ही हैं–तथापि अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए आप अनेक प्रकार के अच्छे २ गुणों का आविष्कार करते हैं अतः आप सर्व गुणों से परिपूर्ण हैं, अन्यों में ऐसे सब सद्गुण कहाँ? क्योंकि वे तो आपके अंशों के अंश हैं।" अतः मैं आपको ही भजता हूँ—

हे शरणागतवत्सल श्यामसुन्दर इस संसार में देवता और मनुष्यों में मुझे ऐसा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता जिसकी मैं शरण में जाऊँ, क्योंकि कोई केवल पण्डित है उसमें वैराग्यादि गुण नहीं हैं। कोई केवल विरक्त है पर पण्डित नहीं। एवं कोई देवता केवल भक्तप्रिय है तो कोई केवल सात्विक गुण युक्त है। कोई केवल लोकों की भलाई करने में तल्लीन है तथा कोई केवल मधुर भाषी है अर्थात् केवल मीठे २ वाक्यों द्वारा आश्वासन ही देते हैं।

कोई केवल दानी है, कोई केवल धैर्यवाला, कोई धर्मात्मा तो कोई केवल सरल स्वभाव वाला है कोई सुंदर तथा कोई केवल कृतज्ञ है। हे करुणावरुणालय, भगवन् कोई २ भक्त केवल आनंदकंद श्रीकृष्ण चंद्र की कृपा का भिखारी है तथा कोई केवल धनी है, कोई विद्या दान करने में लगे हुये हैं, कोई केवल वीर हैं, कोई शुद्ध कर्मों में निरत हैं, कोई मान, आदरसत्कार के योग्य है, तथा कोई दानवीर हैं, कोई केवल सिद्ध हैं, कोई सत्यभाषी है और कोई केवल ज्ञानी ही है। हे मनमोहन श्यामसुन्दर, ये देवता और मनुष्य आपके एक एक गुणों के भागी हैं अर्थात् इनमें एक एक गुण है। यह सब मैं आपके वचनों से ही जानता हूँ। क्योंकि आपने श्रीगीताजी में स्वयं कहा है--

"हे अर्जुन, जो जो विभूति वाले, श्रेष्ठ गुण वाले श्रीमान् तथा बलशाली हैं, उन सबको तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ जान।" इसलिए हे मनमोहन प्यारे, निखिल कल्याण गुण मंदिर तथा मेरे रक्षक ऐसे कृपालु आप प्रभु को छोड़कर मैं और किस दूसरे की शरण में जाऊँ? मुझे आप जैसा दयालु सर्व गुण-सम्पन्न कोई अन्य दिखाई नहीं देता, इसलिए परमप्रिय स्वामिन् मैं आपकी ही शरण में आता हूँ।

इदानीं प्रेमपरीक्षार्थं भगवदुपेक्षां सम्भाव्य तत्रादत्तदृष्टिः सन् परभक्तिमतामनन्यतां प्रदर्शयन् भाविदर्शनाशां हृदि निधाय विविध-दृष्टान्तैर्दर्शनेच्छां दृढयति, मात्वमिति कलापकेन[१],

मा त्वं देहि दयानिधे जनिशते, मह्यं निजं दर्शनं
तद्वाञ्छां न कदा त्यजामि भगवन्नाहं तु तत्प्रार्थनाम्।
ह्रस्वाम्रो न फलं ददाति यदि किं, नो मालिकः सिञ्चति
मेघो वर्षति चेन्न चातकखगः, किन्नो तदा क्रोशति ॥५॥

---

[१] चतुर्भिर्वृत्तैराख्यानं कपालकम्।

सिन्धूनां सरसां जलं पिबति किं, स स्वातिबिन्दुं विना
पीयूषांशुरहस्करोदयमृते, स्यात्पद्मतोषाय किम् ।
इत्थं लोचनगोचरे त्वदपरे, नो मे मनस्तुष्यति
ह्येवं न त्वयि निर्घृणापि तरुणे, वृक्षे फलं जायते ।।६।।

दयानिधे हे करुणाकोश भगवन् जनिशते जन्मनां शते मह्यं निजं दर्शनं त्वं मा देहि, शतजन्मस्वपि यदि दर्शनं न दास्यसीति तात्पर्य: । तथापि तद्वाञ्छां तस्य दर्शनस्येच्छां तत्प्रार्थनां दर्शनयाच्ञां च कदाप्यहं न त्यजामि । अत्रदृष्टान्तानाह--ह्रस्वाम्रो वामन-सहकारो यदि फलं न ददाति किं मालिको वृक्षपालको नो सिञ्चतीति काकूक्तिरपि तु सिञ्चत्येव । फलदातृत्वं वृक्षस्य धर्मो जलसिञ्च-नन्तु मालिकस्य धर्मोऽतो मालिकः स्वधर्मं पालयति वृक्षः स्वधर्मं पालयेद् वा त्यजेदेवमहं स्वधर्मं पालयामि त्वं तु त्यजेर्वा पालयेरिति किम्म इतिभाव: ।

ननु यर्ह्यहं स्वधर्मं न पालयेयं तर्हि तव स्वधर्मपालनेन कोऽर्थ इत्याकाङ्क्षायां स्वधर्मपालनं मम स्वभाव एवेत्याशयेनाह चेत्कदाचि-न्मेघो न वर्षति तदा चातकश्चासौ खगः सारङ्गपक्षी किन्न क्रोशत्य-पितु क्रोशत्येवैवमहमपि प्रार्थयामि । स चातकः स्वातिविंदुं विना सिंधूनां नदीसमुद्राणां सरसां तडागानां च जलं किं पिबति किंतु नैव । एवमहमपि प्रियत्वेनान्यान्न पश्यामि । अहस्करो दिनकर-स्तस्योदयम् ऋते विना पीयूषांशुश्चंद्रः पद्मतोषाय किं स्यादपि तु नैव । इत्थं यथोदाहरणे निरूपितं त्वदपरे त्वत्तोऽन्यस्मिन् लोचन गोचरे दृष्टिपथगते जने मे मनो न तुष्यति, त्वत्तोन्यदर्शनेन मे मनो न हृष्यतीत्यर्थः ।

ननु किमहमदयालुर्यतस्त्वं प्रार्थयस्यहं तवाभीष्टं न ददा-मीति । नहि नहि । एवमपि दर्शनादानेपि त्वयि निर्घृणा अकरुणता नास्ति । कथमित्याशङ्क्य दृष्टांतमाह-तरुणे वृक्षे फलं जायते ।

तथा तरुणो वृक्षः फलति नतु ह्रस्वः, एवमस्माकं प्रार्थना स्वल्पैव महत्प्रार्थनायां त्ववश्यमेव दर्शनं भविष्यतीत्यर्थः ।

पदार्थ--(हे दयानिधे) हे दया के समुद्र श्यामसुंदर (जनिशते) सैकड़ों जन्म पर्यंत (मह्यं) मेरे लिए (निजं) अपने (दर्शनं) दर्शन (त्वं) आप (मा देहि) चाहे न दें, तथापि (तद्वाञ्छां) आपके दर्शन की इच्छा (तत्प्रार्थनां) तथा दर्शन की प्रार्थना को (कदापि) मैं कभी भी (न त्यजामि) नहीं छोड़ूंगा । जैसे-(ह्रस्वाम्रः) आमका छोटा पौदा (यदि फलं) यदि फल (न ददाति) नहीं देता है तो (किं मालिकः) क्या माली (नो सिञ्चति) उसे नहीं सींचता ? (चेत्) यदि कभी (मेघो न वर्षति) मेघ नहीं बरसता (तदा) तो (चातकखगः) चातक पक्षी (किन्न क्रोशति) क्या रट नहीं लगाता ? (स) वह चातक (स्वातिबिंदुं विना) स्वाति नक्षत्र की बूंद के विना (सिंधूनां) नदी और समुद्रों का (सरसां) और तालावों का (किं जलं पिवति) क्या जल पीता है ? (अहस्करोदयं ऋते) सूर्योदय के विना (पीयूषांशुः) चंद्रमा (पद्मतोषाय किं स्यात्) क्या कमलों को खिला सकता है ? (इत्थं) इस प्रकार (त्वदपरे) आपके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के (लोचनगोचरे) दृष्टिगोचर होने पर भी (मे मनः) मेरा मन (न तुष्यति) नहीं प्रसन्न होता । (एवं अपि) इस प्रकार दर्शन न देने पर भी (त्वयि) आप में (निर्घृणा न) अदयालुता, कठोरता नहीं है । क्योंकि (तरुणे वृक्षे) वृक्ष के तरुण, बड़ा होने पर (फलं जायते) फल लगते हैं छोटे पौदों में नहीं लगते ।

भावार्थ--अब प्रेम-परीक्षार्थ भगवान् की उपेक्षा की सम्भावना करके, उधर दृष्टि न देकर दृढ भक्ति द्वारा अनन्यभाव दिखाते हुये भविष्य में प्रभु के दर्शनों की आशा को हृदय में रखकर विविध दृष्टांतों द्वारा दर्शन की इच्छा को दृढ करते हैं--

हे करुणा-सागर श्यामसुंदर, सैकड़ों जन्मों में भी यदि आप

मुझे दर्शन नहीं देंगे तो भी मैं आपके दर्शनों की इच्छा को तथा आपके दर्शनों की प्रार्थना को कभी भी नहीं छोडूंगा। जैसे आम का छोटा सा पौदा यदि फल नहीं देता है तो क्या माली उसे नहीं सींचता ? अवश्य सींचता है। क्योंकि फल देना वृक्ष का धर्म है और जल देना माली का धर्म है अतः माली अपने धर्म को पालता है वृक्ष अपने धर्म को पाले या न पाले। इसी प्रकार मैं तो अपने धर्म का पालन करूँगा आप उसे छोड़ें या पालें आपकी इच्छा।

प्रश्न---यदि मैं अपना धर्म, कर्तव्य-पालन नहीं करता तो तुझे अपना धर्म पालन करने से क्या लाभ ?

उत्तर---हे दयालु भगवन्, स्वधर्म पालन करना मेरा स्वभाव ही है। जैसे---यदि कभी मेघ वर्षा नहीं करता तो क्या चातकपक्षी रट लगाना बन्द कर देता है कभी नहीं। इसी प्रकार यदि आप कृपा नहीं करते तो मैं तो बारम्बार आपसे प्रार्थना करता ही रहूँगा, आप सुनें या न सुनें।

क्या वह चातकपक्षी स्वाति नक्षत्र की बूंद के विना नदी, समुद्र या तालाब का जल पी लेता है ? कदापि नहीं पीता। इसी प्रकार मैं भी आप का अत्यंत प्रिय दास होने के कारण आपके अतिरिक्त और किसी की ओर नहीं देखता।

एवं सूर्य भगवान् के उदय होने के विना क्या अमृतवर्षी चंद्रमा कमलों को खिलाने में समर्थ हो सकता है ? इन उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि आपके अतिरिक्त कोई भी मेरे दृष्टि-पथ में आवे, उससे मेरा मन संतुष्ट नहीं हो सकता, अर्थात् आपके दर्शन के विना मुझे चैन नहीं प्राप्त हो सकता।

तो क्या मैं इतना अदयालु, कठोर हूँ जो तुम्हारे प्रार्थना करने पर भी मैं तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि नहीं करता ?

इसके उत्तर में कहते हैं---बारम्बार प्रार्थना करने पर भी

दर्शन न देना आपकी अकरुणता (निर्दयता) नहीं है, क्योंकि जैसे वृक्ष तरुण, बड़ा होने पर ही फल देता है इसी प्रकार अभी मेरी प्रार्थना बहुत स्वल्प (छोटी, थोड़ी) है, जब अनन्य भाव से मेरी प्रार्थना परिपक्व होगी तब आप के दर्शन मुझे अवश्य होंगे, ऐसा मेरा पूर्ण तथा दृढ विश्वास है।

ननु यथा यस्य पत्युर्बह्व्यः पत्न्यः संति स काञ्चिदुपेक्षते, कस्याञ्चिद्वैषम्यं कुरुते च पत्नीनांतु सापत्यदुःखं भवत्येवं मयि स्वामिन्यपि द्वौ दोषावागतौ युष्माकं भक्तानां सापत्य दुःखमप्यपरिहार्य्यं प्राप्तं तस्मादलमुपास्योपासकभावेनेत्याशङ्कायामाह एक इति ॥

एको नोसि भवान्मुकुन्दबहवः, सन्तीह ते मादृशा–
नोपेक्षा भवतीह नो विषमता, सापत्यदुःखं न नः।
पद्मानां रविरेक एव न रवेः, पद्मान्यनेकानि किं
शक्तो गच्छति तं तमेकसमये, नोल्लङ्घ्यतद्भावनाम् ।७।

हे मुकुन्द नोऽस्माकं उपासकानां भवानेक उपास्योसि ते तव मादृशा मत्सदृशा उपासका इह लोके बहवः सन्ति। तथापि उपास्योपासकभावे भवति उपास्यदेवे नोपेक्षा नोविषमता च त्वय्युपेक्षा विषमता दोषौ न स्तः। नः अस्माकं सापत्ये[1] दुःखमपि नैव। यथा बहूनां पद्मानां प्रीतिविषय एक एव रविः किं नेति काक्वाकथनं किन्त्वस्त्येव। एकस्य रवेर्विकासे यान्यनेकानि पद्मानि किं न अपितु सन्त्येव। अयं भावो यथा कमलानां विकासने सूर्यो न कमप्युपेक्षते न कस्मिंश्चिद्वैषम्यं करोति किन्तु सर्वाणि समकाले विकासयत्यतो न तेषां परस्परविवादविरोधजं दुःखमस्ति। एवं भगवद्भागवतेष्वपि दोषपरिहारो ज्ञेयः। ननु पतिपत्नी दृष्टांते न दोषो भाति दिनकरारविन्दोदाहरणेन, निर्दोषता भाति कथं हि दोषपरिहारो ज्ञेय इत्याकाङ्क्षायामाह-शक्तः समर्थः सूर्यप्रभृतिः तेषां कमलादीनां भावनां

---

[1] एकस्मिन्समानपतिभावेन यद् दुःखं तत्सापत्यदुःखम्।

नोल्लङ्घ्य तत्तद्भावनानुसारेण तं तं कमलादिकम् एक समय एव गच्छति प्राप्नोति। अतोऽशक्तपतेर्दृष्टांतो विषमः, समर्थसूर्योदाहरणं सर्वाङ्गमिति ॥७॥

पदार्थ--(हे मुकुंद) हे मोक्ष प्रदान करने वाले प्रभो, (नः) हम उपासकों के (भवान् एकः) आप ही एक उपास्य हैं। (ते) आपके लिए (मादृशाः) मेरे जैसे उपासक (इह) इस लोक में (वहवःसन्ति) वहुत हैं। तो भी (इह) इस उपास्य उपासक भाव में (भवति) आप उपास्य में (नोपेक्षा) न तो उपेक्षा है (नो विषमता) और न ही विषमता का दोष है। तथा (नः) हमें (सापत्यदुःखं न) समान पति भाव का भी दुःख नहीं है। (पद्मानां) जैसे वहुत से कमलों को खिलाने में (रविः एक एव) एक ही सूर्य समर्थ है। (रवेः) क्या एक सूर्य के प्रकाश से अनेक कमल नहीं खिल जाते हैं ? (शक्तः) समर्थ सूर्य्यादि उन कमलादिकों की (भावनां) भावना को (नोल्लङ्घ्य) उल्लङ्घन न करके उनकी भावना के अनुरूप (तं तं) उन २ कमलादिकों को (एक समय एव गच्छति) एक समय में ही प्राप्त होते हैं।

भावार्थ--जैसे जिस पति के बहुत पत्नियां हों वह किसी की उपेक्षा करता है और किसी के साथ विषमता का बर्ताव करता है, अतः उन पत्नियों को तो सापत्न्य दुःख होता है। इस प्रकार मुझ स्वामी में भी उक्त दोनों दोष आगए, तुम भक्तों का सापत्न्य दुःख अपरिहार्य है इसलिए उपास्य उपासक भाव की क्या आवश्यकता है ? इस आशंका का समाधान करते हैं—

हे मुक्ति प्रदान करने वाले प्रभु श्यामसुन्दर, हमारे जैसे उपासकों के तो केवल एक आप ही उपास्य देव हैं। क्योंकि हमारे जैसे उपासक तो इस लोक में बहुत हैं, तो भी हे उपास्यदेव, आप में उपेक्षा या विषमता का दोष सम्भव नहीं है और न ही हमें सापत्य (एक पत्नी के कई पति) होने का दुःख हैं। जैसे अनेक

कमलों को प्रसन्न करने वाला, खिलाने वाला एक ही रवि (सूर्य) है। क्या सूर्य के प्रकाश करने पर सारे कमल नहीं खिल उठते हैं ? जैसे कमलों के खिलाने में सूर्य भगवान् न किसी की उपेक्षा करता है और न किसी के साथ विषमता का वर्ताव करता है अपितु सब कमलों को एक समय में ही खिला देता है, इसलिए उन कमलों में परस्पर न विवाद होता है और न विरोध ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार भगवान् और भक्तों में परस्पर विवाद या विरोध उत्पन्न नहीं होसकता ?

शंका——पति-पत्नी के दृष्टांत में दोष नहीं प्रतीत होता और सूर्य कमल के उदाहरण में निर्दोषता ज्ञात होती है फिर दोष का परिहार कैसे जानना चाहिए। इस शंका का उत्तर देते हैं—— इसी प्रकार समर्थ सूर्यादि उन कमलादिकों की भावनाओं को उल्लङ्घन न करके उनकी भावना के अनुसार उन २ कमलादिकों को एक समय में ही प्राप्त होते हैं। इसलिए अशक्त पति का दृष्टांत विषम है और समर्थ सूर्य का उदाहरण सर्वाङ्गपूर्ण है ।।७।।

ननु भवतु समर्थः कृष्णः परञ्च (चोर-जार-शिखामणिः) इति वचनात्तस्मिश्चोरे-प्रेम्णा कोऽर्थः। स तु प्राप्तमपि वस्तु चोरयत्य-प्राप्तस्य तु काऽऽशेत्याशङ्कायां कस्मिश्चिद्वस्तुन्यपहृतएवार्थलाभस्त-स्यापहर्ता मित्रमेव ज्ञेय इत्याशयेनाह—श्रीकृष्ण इति ।।

श्रीकृष्णे मतिरेव पूर्वमभवद्, दासोहमस्मीति मे
गोपीगोरसतस्करेण हरिणेदानीं ततोदाहृतः ।
प्राप्तं स्वीयमुखं सदैव मुकुरे, द्रष्टुं प्रवृत्ता जना
एवं स्वात्ममयोपि कृष्ण भगवानिच्छामि तद्दर्शनम् ।।८।।

दासोऽहमस्मीत्येव मे मतिर्निश्चयः श्रीकृष्णे पूर्वमभवत् । इदानीं ततो दासोऽहमस्मीति वाक्यात् । भक्तानां पापान्यज्ञानं वान्यदपि वस्तु कौतुकेन प्रेम्णा वा हरति चोरयतीति हरिस्तेन हरिणा दा

इत्येकाक्षरो हृतश्चोरितः। कथं भूतेन गोपीनां गोरसस्य नवनीतस्य तस्करेण चौरेण। ननु किमर्थं तेन दा हृत इति चेत्स स्तेयभावो हरि-नामव्युत्पत्त्यैव दर्शितो भिक्षुभवनेऽन्यत्रैव दृष्टमतोदाहृतो मधुसूदन-स्वामिभिरप्युक्तम् (दासोऽहमिति या बुद्धिः पूर्वमासीज्जनार्दने। दाकारोपहृतस्तेन गोपीचीरापहारिणा) ननु दापहृते सोऽहमस्मीति परिशेषितमस्यायमेवार्थः स कृष्णोऽहमस्मीति यदि त्वमेव कृष्णस्तर्हि कथं दर्शनार्थं भगवन्तं प्रार्थयसीत्याशङ्क्य दृष्टांतपूर्वकमुत्तरमाह--यथा सदैव प्राप्तं ग्रीवास्थं स्वीयमुखं निजवदनं जना मुकुरे दर्पणे द्रष्टुं प्रवृत्ता अयमर्थो यथा नित्यप्राप्तमपि स्वमुखं प्रियत्वात्पुनःपुन-र्द्रष्टुं जनाः समिच्छन्ति साक्षात्तद्द्रष्टुमशक्ताः सन्तो मुकुरे प्रति-बिम्बितं तदेव पश्यन्ति। एवं कृष्णश्चासौ भगवांश्च कृष्णभगवान् स्वात्ममयोपि स्वात्मत्वेन ज्ञातोपि तस्य दर्शनमिच्छामि, ज्ञातस्वा-त्मनोपि दर्शनेच्छा संभवति प्रियत्वात् यद्यत्प्रियं तस्य-तस्य दर्शनेच्छा, यथा स्वमुखं व्यतिरेकी वा यस्य दर्शनेच्छा नास्ति तत्र प्रियत्वमपि नैव यथा शत्रोः। आत्मनः प्रियत्वन्तु सर्वानुभूतं तथा च श्रुत्याचार्य-वाक्यमपि (तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा) (आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति) इत्यादि वृहदा-रण्यकश्रुतिः (अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः। मानभूवं हि भूयांसमिति प्रेमात्मनीक्षते) इति पञ्चदशीकारवाक्यमतो ज्ञात-स्वात्ममयपरमात्मनः प्रियत्वाद्दर्शनेच्छायां सत्यां साक्षात्तं द्रष्टुम् (न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्) इति कठश्रुतेरयोग्यत्वाच्छ्रीकृष्ण-रूपेण तमेवाविर्भूतं द्रष्टुमिच्छामो यद्यपि सर्वव्यक्तिषु तस्यैव दर्शनं तथापि नयनानन्दस्तु गोपिकाकरकमललालितवर्हावतंसप्रियनट-वरवेषश्यामसुन्दरवंशीविभूषितस्य दर्शनेनैवेतिदिक् ॥८॥

पदार्थ--(दासोऽहमस्मि) हे श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, मैं आपका दास हूँ, इस प्रकार (मे मतिः) मेरा विश्वास (श्रीकृष्णे) श्रीकृष्णमें

(पूर्वमभवत्) पहले था। किन्तु (इदानीं) अब (गोपीगोरस-तस्करेण) गोपियों के माखन को चुराने वाले (हरिणा) दासजनों के पाप तथा अज्ञान को कौतुक मात्र या प्रेम से हरने वाले, हरि ने (ततः) उस 'दास' शब्द में से (दा हृतः) 'दा' अक्षर को हर लिया। जैसे (सदैव प्राप्तं स्वीयं मुखं) सदा ग्रीवा के ऊपर स्थित अपने मुख को (मुकुरे) दर्पण में (द्रष्टुं प्रवृत्ता जनाः) देखने के लिए लोग प्रवृत्त होते हैं, (एवं) इसी प्रकार (कृष्ण भगवान्) श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द (स्वात्ममयोपि) अपने आत्मस्वरूप भी हैं–तो भी (तद्दर्शनम्) उनके दर्शन (इच्छामि) मैं चाहता हूँ।

भावार्थ––चाहे श्रीकृष्ण सब प्रकार से समर्थ हैं पर वे तो "चोरजारशिखामणिः" हैं इसलिए उनसे प्रेम करने से क्या लाभ ? वे तो प्राप्त वस्तु को भी चुरा लेते हैं फिर अप्राप्त वस्तु की क्या आशा ? इस आशङ्का का उत्तर देते हैं––किसी वस्तु के चुराये जाने में भी लाभ है, उसका चुराने वाला भी मित्र समझना चाहिए। इस विषय में कहते हैं–हे आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र मैं आपका दास हूँ, इस प्रकार पहले मेरा दृढ विश्वास श्यामसुन्दर भगवान् में था। अब "दासोऽहम्" (मैं आपका दास हूँ) इस वाक्य में से गोपियों के माखन चुराने वाले तथा दासजनों के अज्ञान तथा पापों को प्रेम द्वारा हरने वाले श्रीहरि ने "दा" इस अक्षर को हरलिया और "सोऽहम्" अर्थात् वह, श्री कृष्ण स्वरूप, मैं ही हूँ, यह रहगया। जैसे श्री मधुसूदन स्वामी ने भी कहा है–"मैं आपका दास हूँ ऐसी मेरी बुद्धि पहले श्री जनार्दन भगवान् में थी, पर गोपियों के चीर को चुराने वाले श्रीकृष्ण ने "दा" इस अक्षर को हरलिया।"

समाधि में केवल ध्येय का आभास ही रहजाता है, ध्याता अपने स्वरूप को भूल जाता है, यह महर्षि पतञ्जलि का कथन है।

एवं भक्त भी भगवान् के 'तैल धारावत्' अविच्छिन्न ध्यान में अपने आपको भूले रहते हैं।

यदि तुमही श्रीकृष्ण स्वरूप हो तो उनके दर्शन के लिए क्यों प्रार्थना करते हो ? ऐसी शंका उत्पन्न होने पर उत्तर देते हैं—सब जन इस बात को जानते हैं कि ग्रीवा के ऊपर मस्तक वर्तमान है फिर भी दर्पण में उसे देखने को प्रवृत्त होते हैं। क्योंकि अपने मुख को स्वयं तो देख नहीं सकते, पर अधिक प्रिय होने से उसे वारम्वार दर्पण में देखते हैं, इसी प्रकार यह जानते हुए भी, कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे हृदय में ध्येय रूप से विराजमान हैं, वे स्वात्ममय हैं, फिर भी अपने नेत्रों से उनके दर्शन करने की प्रवल इच्छा होती ही है। आनन्द तो मुझे तभी प्राप्त होगा जब व्रज-गोपियों के कर-कमल द्वारा लालित, वर्हावतंस प्रिय, नटवर वेषधारी, वंशी-विभूषित कर, श्रीश्यामसुन्दर केवल मेरे मन में ही नहीं निवास करेंगे अपि तु सम्मुख प्रकट होकर मुझसे सम्भाषण करेंगे और मेरे मस्तक पर अपना वरद हस्त रखेंगे।

तत्त्वविदामपि यद्भगवद्दर्शनेच्छा तत्र वस्तुशक्तिरेव कारण-मित्याशयेनाथ पक्षान्तरमाह अद्वैतेति—

अद्वैतामृतसागरे शिवतमेऽपारे मुनीन्द्राश्रिते,
नानाशास्त्रगुरूपदेशसृतिभिः, सन्दर्शिते स्वात्मनि।
मीनं नित्यमगाधचारुविमले, लीनं मदीयं मनः,
गोपालस्य निशाकरस्य वडिशं, स्मेरं बलात्कर्षति ॥६॥

अद्वैतरूपेऽमृतसागरे नित्यं लीनं मदीयं मनः कर्मभूतं गोपालस्य आस्यं वदनं तदेव निशाकरश्चन्द्रश्चन्द्रवदाह्लादकं तस्य श्रीकृष्ण-मुखचन्द्रस्य स्मेरं स्मितं ईषद्धास्यमेव वडिशं मत्स्यवेधनवदाकर्षण-शक्तिकर्तृभूतं बलात् कर्षति बलात्कारेण स्वाभिमुखं करोति। कथंभूते शिवतमे कल्याणमये, अपारे देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्ये,

मुनीन्द्राश्रिते व्यासवसिष्ठादिमुनीश्वरैः सेविते, नानाशास्त्रमार्गैर्गुरूपदेशमार्गैश्च स्वात्मनि निजहृदये दर्शिते । तदुक्तं भा० स्कं० १ (आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः) तथा च मधुसूदनस्वामी (अद्वैतवीथीपथिकैरूपास्याः स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः । शठेन केनापि वयं हठेन, दासीकृता गोपावधूविटेन इति ।।६।।

पदार्थ--(अद्वैतामृतसागरे) हे भगवन्, अद्वैतरूपी अमृत सागर में (नित्यं) सदा (लीनं) मग्न (मदीयं मनः) मेरे मन को (गोपालस्य निशाकरस्य) श्रीगोपाल का मुखरूपी चन्द्र अथवा चन्द्रमा की तरह आह्लादक श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की (स्मेरं) मन्द मुस्कानरूपी (वडिशं) मत्स्य वेधनी के समान आकर्षण शक्ति (वलात्) बलात्कार से अपनी ओर (कर्षति) खैंचती है । जैसे-(अगाधरुचिरे विमले) अथाह सुन्दर निर्मलसमुद्र में सदा मग्न (मीनं) मछली को वडिश (मछली बींधने का काँटा) (कर्षति) अपनी ओर खींच लेता है । पुनः वह अद्वैतामृत सागर कैसा है-(शिवतमे) कल्याणमय है । (अपारे) देशकाल वस्तु परिच्छेद से शून्य है। (मुनीन्द्राश्रिते) व्यास वसिष्ठादि मुनियों से सेवित है। फिर (नानाशास्त्रगुरूपदेशसृतिभिः सन्दर्शिते स्वात्मनि) नाना शास्त्रों तथा गुरुजनों के उपदेशों ने उसका साक्षात्कार करा दिया है ।

भावार्थ--तत्त्वज्ञों को भी भगवद्दर्शन की इच्छा होती है इसमें वस्तुशक्ति ही कारण है । इस आशय से कहते हैं-

अद्वैतरूपी अमृत के सागर में निरन्तर मस्त (तल्लीन) मेरे मन को श्रीश्यामसुन्दर का मुखरूपीचन्द्र अथवा चन्द्रमा की तरह आह्लादक श्री कृष्णचन्द्र के मुख की मुस्कराहट इस प्रकार बलपूर्वक अपनी ओर खैंच लेती है जैसे अथाह सुन्दर निर्मल समुद्र में सदा मस्त रहने वाली मछली को बडिश (मछली पकड़ने का कांटा)

अपनी ओर खैंच लेता है। वह अद्वैतामृत सागर कल्याणमय है। देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित है। महान् व्यास वसिष्ठादि ऋषि मुनियों द्वारा सेवित है, तथा अनेक शास्त्रों और गुरुजनों के उपदेश ने जिसे अपने हृदय में साक्षात् रूप से दिखा दिया है। जैसे श्री मधुसूदन स्वामी ने कहा है–"अद्वैतरूपी वीथी के पथिकों द्वारा उपास्य, अपने आनन्दरूपी सिंहासन में दीक्षा प्राप्त किये हुये, गोपवधुओं के विट, किसी शठने हमें हठपूर्वक अपना दास बना लिया है"।

किम्बहूक्तेन तर्कस्य प्रतिष्ठा नास्ति श्रीवासुदेवविमुखवोधनादुपरता वयमस्माकं परं तत्त्वं तु श्रीकृष्ण एवेत्याशयेनाह गोपालादिति–

गोपालादतसीप्रसूनसदृशश्यामात् त्रिविक्रमात्प्रियात्,
कस्तूरीतिलकादनन्तसुषमाधाम्नो गले कौस्तुभात्।
वंशीभूषितशोणिताधरपुटात्, कौशेयपीताम्बरात्
स्मेरास्याद्वनमालिनो मुकुटिनस्तत्त्वं न जाने परम् ॥१०॥

गोपालात् श्रीकृष्णात्परं तत्त्वं अहं न जाने, श्रीगोपालमेव परं तत्त्वं जानामि न ततः पृथक् तत्त्वमस्ति। (मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय) इति भगवद् वचनात् (वंशी विभूषितकरान्नवनीरदाभात्, पीताम्वरादरुणविम्वफलाधरोष्ठात्। पूर्णेन्दु सुन्दरमुखादरविन्द नेत्रात्, कृष्णात्परंकिमपि तत्त्वमहं न जाने) इति मधुसूदनस्वामिवाक्याच्च। कथंभूतात् अतसीप्रसूनसदृशश्यामात्। त्रिवक्रात् वंशीवादनसमये ग्रीवा-कटि-जान्विति त्रिष्वङ्गेषु वक्रंकौटिल्यं यस्य स त्रिवक्रस्तस्मात्। प्रियात् परमप्रेमास्पदात्। कस्तूर्यास्तिलकं यस्य भाले स कस्तूरीतिलकस्तस्मात्। अनन्तसुषमायाः परमशोभायाः धाम्नो गृहात्। गले कौस्तुभमणिर्यस्य तस्मात्। वंश्या भूषितौ अलङ्कृतौ तावेव शोणितौ रक्तौ अधरपुटौ ओष्ठद्वन्द्वौ यस्य तस्मात्। कौशेयं पट्टं तन्निर्मितानि पीताम्बराणि पीतवस्त्राणि यस्य

तस्मात्। स्मेरं स्मितं तेन युक्तम् आस्यं मुखं यस्य तस्मात्। वनमाला विद्यते यस्य स वनमाली तस्मात्। मुकुटोऽस्त्यस्यासौ मुकुटी तस्मादिति ॥१०॥

पदार्थ--(गोपालात्) श्रीकृष्णचन्द्र से अतिरिक्त (परं तत्त्वं) परतत्त्व (अहं न जाने) मैं नहीं जानता, श्रीकृष्ण कैसे हैं–(अतसी प्रसूनसदृशश्यामात्) अतसी के पुष्प के समान श्याम वर्ण वाले (त्रिवक्रात्) तीन स्थानों, अङ्गों से वक्र (टेढे) हैं (प्रियात्) और जो प्रेम के समुद्र हैं। (कस्तूरीतिलकात्) जो कस्तूरी का तिलक लगाये हुये हैं। (अनन्तसुषमाधाम्नः) जो अनन्त सुषमा सुन्दरता के भण्डार हैं। (गले कौस्तुभात्) जिन्होंने गले में श्रीकौस्तुभ नामक पद्मराग मणि धारण कर रखी है। (वंशीभूषित शोणिताधर-पुटात्) जो लाल २ अधरपुट पर वंशी धारण किये हुये हैं। (कौशेयपीताम्बरात्) जिन्होंने रेशमी पीत वस्त्र धारण कर रखे हैं। (स्मेरास्यात्) जो मन्द २ मुस्करा रहे हैं। (वनमालिनः) जिन्होंने गले में वन माला पहन रखी है, (मुकुटिनः) तथा मस्तक पर मुकुट धारण किये हुये हैं।

भावार्थ--अधिक क्या कहें, तर्क की आवश्यकता नहीं है, श्री श्यामसुन्दर से विमुख ज्ञान से हम विरक्त हैं, हमारे पर-तत्त्व (सर्वस्व) तो श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं–इस आशय से कहते हैं–

मैं तो आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना परतत्त्व (सर्वस्व) मानता हूँ, अर्थात् उनसे परे कोई तत्व नहीं है ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। श्रीगीताजी में स्वयं भगवान् ने अपने मुखारविन्द से कहा है–"हे अर्जुन! मुझ से बढकर और कोई तत्त्व नहीं है"। श्रीमधु-सूदन स्वामी ने भी इसी प्रकार कहा है–"श्रीकृष्ण से परे मैं किसी भी तत्त्व को नहीं जानता" इत्यादि। वे श्यामसुन्दर अतसी के पुष्पों के समान श्यामवर्ण वाले हैं, तथा वंशी बजाते समय ग्रीवा कटि और जानु इन तीनों अङ्गों में भङ्गिमा (टेढापन) धारण कर

लेते हैं। वे यशोदानन्दन परम प्रेम के पुञ्ज हैं। उन्होंने अपने मस्तक में कस्तूरी का सुगन्धित तिलक लगा रखा है, गले में श्री कौस्तुभ नाम की पद्मराग मणि धारण कर रखी है। गोपीवल्लभ के लाल २ दोनों ओठ वंशी धारण करने से सुशोभित हैं, उन्होंने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे हैं, उनके मुख पर मन्द २ मुस्कराहट खेल रही है। श्रीराधारमणविहारी ने गले में वन-पुष्पों की माला पहन रखी है और मस्तक पर किरीट मुकुट धारण कर रखा है, ऐसे आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

इति शार्दूलविक्रीडित-रत्न-दशकम्।

अथ स्रग्धरा-रत्न-दशकम्

इतः पूर्वं परभक्तिमतामनन्यताप्रदर्शिता इदानीं भक्तिमार्ग-लाभोऽपि भगवत्कृपयैवेति प्रदर्शयन् भगवतो भक्तवात्सल्यम्, आदावित्यारभ्य त्रिषु दशकेषु प्रदर्शयति—

आदौनः प्रेममार्गः, परमकरुणया, यस्य कारुण्यमूर्त्ते—
र्दृष्टः कल्याणधाम्नः, सुसरलसुगमः, शुद्धनिष्कंटकस्तम् ।
कृष्णात्मानं च कृष्णाम्बुजदलनयनं, कृष्णकायं तु कार्ष्णि—
कोटीनां कोटिकान्ति, रघुकुलतिलकं, रामचन्द्रं नमामि ।१।

(एष ह्येव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषीत एष उ एवासाधुकर्म कारयति तं यमधो निनीषते) इति कौषीतके ब्राह्मणोपनिषद्वचनात् आदौ प्रथमं यस्य परमकरुणया नः अस्माभिः प्रेममार्गो दृष्टः । यदीयप्रतिनिधिदर्शनानुकरणावलोकनेन नः प्रेम-मार्गे प्रवृत्तिरिति तात्पर्यार्थः । तं रामचन्द्रं नमामि । कथंभूतस्य यस्य कारुण्यमूर्त्तेः करुणामयी मूर्त्तिर्यस्य । कल्याणधाम्नो मङ्गल-मन्दिरस्य, कथंभूतः प्रेममार्गः सुसरलश्च सुगमश्च सुसरलसुगमः, शुद्धः पापसम्पर्करहितश्चासौ निष्कण्टकः उपद्रवशून्यः । ननु त्वं तु कार्ष्णिः कथं रामचन्द्रं नमसीत्याकाङ्क्षायां रामकृष्णयोर्नैव भेद एक एव परमेश्वरो द्विधारूपो बभूव नाममात्र भेदो न तु वस्तुभेद इत्याशयेनाह-कथंभूतं रामचन्द्रं कृष्णात्मानं कृष्णात्मा स्वरूपं यस्य वा कृष्णस्यात्मा कृष्णात्मा तम् । कृष्णाम्बुजं नीलकमलं तस्य दलं पत्रं तद्वद्विशाले नेत्रे यस्य तं कृष्णाम्बुजदलनयनं च । कृष्णकायं श्याम शरीरम् । कार्ष्णिः कामदेवस्तस्य कोटीनां कोटिवत्कान्तिः छवि-र्यस्य तम् अभूतोपमालङ्कारोयम् । पुनः कथंभूतं रघुकुलतिलकं रघु-वंशस्य भूषणवच्छोभाकरम् ॥१॥

पदार्थ—(आदौ) प्रथम (यस्य) जिसकी (परमकरुणया)

परम करुणा से (नः) हमने (प्रेममार्गः) प्रेम का मार्ग (दृष्टः) देखा (तम्) उन (रामचन्द्रं) रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी को (नमामि) मैं नमस्कार करता हूँ। वे दशरथनन्दन श्रीराम (कारुण्य-मूर्त्तेः) करुणा की मूर्त्ति हैं। (कल्याणधाम्नः) कल्याण के मन्दिर हैं। उनका प्रेम मार्ग (सुसरलसुगमः) बहुत सरल और सुगम है तथा (शुद्धनिष्कण्टकः) पापरहित और उपद्रव से शून्य है। पुनः श्रीरामचन्द्रजी (कृष्णात्मानं) श्रीकृष्णस्वरूप हैं। (कृष्णाम्बुज-दलनयनं) नीलकमलपत्र के समान विशाल नेत्रों वाले हैं। (कृष्ण-कायं) जिनका श्याम शरीर है (कार्ष्णिकोटीनां कोटिकान्ति) करोड़ों कामदेवों की कान्ति के समान कान्ति वाले हैं। पुनः (रघुकुलतिलकं) रघुवंश में श्रेष्ठ हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को मैं वारम्बार नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ--इससे पूर्व परभक्ति मानने वालों की अनन्यता दिखलाई, अब भक्तिमार्ग की प्राप्ति भी भगवान् की कृपा से ही होती है, यह दिखलाते हुये भगवान् की भक्तवत्सलता दिखलाते हैं–

"भगवान् जिसको उन्नति-मार्ग पर ले जाना चाहते हैं, अर्थात् जिसे ऊँचा उठाना चाहते हैं उसे उत्तम शास्त्रीय कर्मों, शुभ कर्मों की प्रेरणा करते हैं तथा जो दुष्कर्मवश अधोगति में जाना चाहते हैं उन्हें निन्दित अशास्त्रीय कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं। अतः सन्मार्ग की ओर जाने के लिए पहले भगवत् कृपा की आवश्यकता है" इस कौषीतिकी ब्राह्मण उपनिषत् वचन से– सर्व प्रथम जिस प्रभु की परम अनुकम्पा से हमने प्रेम का मार्ग देखा, अथवा जिनके प्रतिनिधि के दर्शन, अनुकरण तथा अवलोकन से हमारी प्रेममार्ग में प्रवृत्ति हुई, उन रघुवंशमणि, दशरथनंदन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ। वे पतितपावन श्रीराम करुणा की साक्षात् मूर्त्ति हैं, तथा कल्याण के मंदिर हैं।

उन अखिल ब्रह्माण्डनायक प्रभु राम के प्रेम का मार्ग बहुत

सरल तथा सुगम है, पुनश्च वह मार्ग शुद्ध भी है, पाप-सम्पर्क से रहित है और निष्कण्टक अर्थात् उपद्रवों से शून्य है।

तुम तो कार्ष्णि, श्रीकृष्ण के अनुयायी, भक्त हो फिर श्रीरामचंद्रजी को क्यों नमस्कार करते हो? इस शंका के उत्तर में कहते हैं—– भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है, वे एक ही परमेश्वर हैं। उनके रूप केवल दो प्रकार के हैं। नाम-मात्र से भेद है वास्तव में वे एक ही हैं। वे श्रीरामचन्द्रजी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं। वे अयोध्यापति श्रीराम नीलकमल के विशाल पत्रों के समान नेत्रों वाले हैं, उनका साँवला सलौना शरीर है। करोड़ों कामदेवों की कांति के समान उनकी सुन्दर छवि है। वे रघुवंश के शिरोमणि हैं, रघुवंश की कीर्ति और शोभा को बढाने वाले हैं। ऐसे त्रिभुवनपति कौशल्यानंदन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रथमं रामावतारे भगवतो भक्त्यधीनतां दर्शयति लोकेशाद्युत्तमाङ्गैरित्यादिना–

लोकेशाद्युत्तमाङ्गैर्विलुठितचरणौ, यः स्वयं सार्वभौमः
कुट्यां कुट्यां तु गत्वा, पदसलिलरुहैर्विप्रसङ्घान्ननाम।
नित्यानन्दः शबर्या, गतरसबदरं, यश्च निष्किञ्चनाया–
भक्ताया भक्त्यधीनो, मधुरमिति वदन्, नित्यतृप्तश्चखाद।२।

यः श्रीरामचन्द्रः स्वयं सार्वभौमश्चक्रवर्तीसन् पदसलिलरुहैः चरणारविन्दैः कुट्यां कुट्यां तु गत्वा विप्रसङ्घान् ब्राह्मणसमूहान् ननाम नमस्कारं कृतवान्। कथंभूतो लोकेशादीनां ब्रह्मादीनां उत्तमाङ्गैर्मस्तकैः विलुठितौ चरणौ यस्य सः, यस्य चरणयोर्ब्रह्मादीनां शिरांसि लुठन्तीत्यर्थः।

ननु क्षत्रियस्य तस्य ब्राह्मणेषु नमनमुचितमेवात्र किमाश्चर्यमित्या-

शङ्क्य दीनहीनेष्वपि तस्य कारुण्यमाह—यः श्रीरामो नित्यः स्वरूपभूत आनन्दो यस्य स नित्यानन्दो नित्यतृप्तश्च भक्ताया निष्किञ्चनायाः शबर्या भक्त्यधीनः सन् गतरसानि च तानि बदराणि गतरसबदराणि गतरसबदरमिति जातावेकवचनं शुष्कबदरीफलानि मधुराणीति वदंश्चखाद तन्नमामीति पूर्वेणान्वयः ॥२॥

पदार्थ--(यः) जिन श्रीरामचन्द्रजी ने (स्वयं) आप (सार्वभौमः) चक्रवर्ती सम्राट् होते हुए भी (पदसलिलरुहैः) कमल सदृश चरणों से (कुटयां कुटयां तु गत्वा) कुटी कुटी में जाकर (विप्रसङ्घान्) ब्राह्मणों के समूहों, ऋषिमुनियों को (नमाम) नमस्कार किया। (लोकेशाद्युत्तमाङ्गैः) ब्रह्मादि देवों के मस्तक (विलुठितचरणः) जिनके चरणों में लोट रहे हैं, और (यः) जो श्रीराम (नित्यानन्दः) सदा आनन्दस्वरूप हैं, (नित्यतृप्तः) सदा तृप्त रहते हैं और जिन्होंने (भक्तायाः निष्किञ्चनायाः) परमभक्ता दरिद्रा (शबर्याः) शबरी की (भक्त्यधीनः) भक्ति के अधीन होकर (गतरसबदरं) रसरहित बेरों को (मधुरमिति वदन्) बहुत मीठे हैं ऐसा कहकर (चखाद) प्रेम से चखा।

भावार्थ--पहले रामावतार में भगवान् श्रीराम की भक्तों के प्रति अधीनता तथा करुणा दिखाते हैं—

स्वयं सारी पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् होते हुये भी श्रीराम ने कमल के समान कोमल चरणों द्वारा कुटी कुटी में जाकर ब्राह्मणों अर्थात् ऋषि मुनियों को नमस्कार किया। जिन अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीराम के चरणकमलों में ब्रह्मा से लेकर समस्त देवताओं के मस्तक झुकते रहते हैं।

क्षत्रियों का ब्राह्मणों को नमस्कार करना उचित ही है इसमें क्या आश्चर्य है ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं-- दीन, हीन तथा असहायों पर भी दयालु श्रीराम की बड़ी करुणा रहती है।

जो श्रीराम नित्य आनन्दस्वरूप हैं और सर्वदा तृप्त रहते हैं। जिन्होंने परम भक्ता दीन दरिद्रा शबरी की भक्ति तथा प्रेम के वश में होकर रसरहित शुष्क बेरों को "ये तो बहुत ही मीठे हैं" ऐसी बारम्बार प्रशंसा करके बड़े प्रेम से चखा, उन दयालु श्री रामको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

न केवलं ऐहिकसुखं ददाति किन्त्वामुष्मिकमपीत्याशयेनाह गच्छन्निति--

गच्छन्नन्ते स्वाधामाऽवधनगरजनानर्थितो दीनचित्तान्,
योऽनन्यान् स्वीयभक्तान्, विरहविमनसः, स्वाननेन्दौ चकोरान्
नानायागक्रियाभिर्व्रतजपनियमैस्तीर्थदानैर्दुराप-
मागोश्वाश्वान् विहङ्गान्, करुणरसमयः स्वीयलोकं निनाय।३।

यः श्रीरघुनन्दनः करुणारसमयः कृपामूर्त्तिः। अन्तेऽवतार प्रयोजनावसाने, स्वधाम स्वस्वरूपं वैकुण्ठं वा गच्छन् अर्थितः अयोध्यानिवासिभिः प्रार्थितः सन् अवधनगरजनान् अयोध्यापुरी-निवासिप्राणिनः स्वीयलोकं वैकुण्ठं निनाय नीतवान्। कथंभूतान् अनन्यान् स्वस्मादन्यविषयप्रीतिरहितान्। स्वीयभक्तान् स्वसेवकान्। विरहेण विमनसो व्याकुलचित्तान्। स्वाननेन्दौ स्वाननमेव इन्दुश्चन्द्र-स्तत्र चकोरान् चकोरवद्दत्तादृष्टीन्। कथंभूतं स्वीयलोकं व्रतजप-नियमैः तीर्थदानैस्तीर्थेषु गङ्गादिषु वा सुपात्रेषु दानैः, तीर्थैश्चदानैश्चेति वा दुरापं दुष्प्राप्यम्। न केवलं मनुष्यान्निनाय किन्तु पशुपक्षिणो-पीत्याह आगोश्वाश्वान् गोशुनकतुरङ्गपर्यन्तान् विहङ्गान् पक्षिणोपि स्वीयलोकं निनाय, तं शरणं को न प्राप्नुयादिति उत्तरेणान्वयः।३।

पदार्थ--(यः) जो श्रीरामचन्द्रजी (करुणरसमयः) करुणारस से परिपूर्ण हैं। (अन्ते) रामावतार के अंत में (स्वधाम गच्छन्) अपने धाम, वैकुण्ठ को जाते समय (अर्थितः) अयोध्या-निवासियों

की प्रार्थना पर (अवधनगरजनान्) अयोध्यावासियों को (स्वीय-लोकं) अपने लोक, बैकुण्ठ धाम को (निनाय) साथ ले गए। (अनन्यान्) वे अयोध्यावासी श्रीराम में अनन्य प्रीति रखते हैं। (स्वीयभक्तान्) वे श्रीराम के परम भक्त हैं। (विरहविमनसः) वे श्रीराम के वियोग में व्याकुल चित्त हैं। (स्वाननेन्दौ चकोरान्) वे श्रीराम के मुखरूपी चन्द्र के लिए चकोर के सदृश हैं। वह वैकुण्ठलोक (नानायागक्रियाभिः) अनेक यज्ञादि कर्मों से (व्रतजप-नियमैः) व्रत जप नियमों से (तीर्थदानैः) तीर्थ और दानों से (दुरापम्) दुष्प्राप्य है। वैकुण्ठ लोक में वे केवल मनुष्यों को ही नहीं ले गए अपितु (आगोश्वाश्वान्) गौ, घोड़े और कुत्तों तक को तथा (विहङ्गान्) पक्षियों को भी प्रभु राम अपने लोक में ले गए।

भावार्थ——वे करुणामय, दयालु दशरथनन्दन श्रीराम न केवल इस लोक के सुखों को ही देते हैं अपितु परलोक में सद्गति भी प्रदान करते हैं—

वे रघुवंशमणि कौशल्यानन्दन श्रीराम करुणा के समुद्र हैं, दया की साक्षात् मूर्ति हैं। वे इतने कृपालु हैं कि जब वे इस मर्त्यलोक को त्यागकर साकेत लोक (अपने वैकुण्ठधाम) को जाने लगे तब अयोध्यावासियों ने प्रभु से उनके साथ चलने की प्रार्थना की। दयासागर प्रभु ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करली, और सबको अपने साथ वैकुण्ठ धाम लेगये। क्योंकि उन अयोध्यावासियों की अपने स्वामी श्रीराम में अनन्य प्रीति थी, भगवान् श्रीराम के अति-रिक्त उनका प्रेम और किसी में नहीं था, वे प्रभु के अनन्य भक्त थे। अयोध्यावासियों का चित्त प्रभु के वियोग में व्याकुल था, वे अपने स्वामी के वियोग को सह नहीं सकते थे। वे रघुवंशशिरो-मणि श्रीराम के मुखरूपी चन्द्रकी ओर, चकोर सदृश दृष्टि लगाये हुये थे।

प्रभु का वह साकेत धाम अनेक प्रकार के यज्ञादि कर्मों से

अथवा व्रत जपादि नियमों से या तीर्थ दानादिकों से नहीं प्राप्त हो सकता। वे कौशलेश प्रभु राम इतने दयालु हैं कि वे अपने साथ केवल मनुष्यों को ही वैकुण्ठधाम में नहीं ले गए अपितु गौ, अश्व, कुत्तों, और पक्षियों तक को भी अपने लोक में ले गये। ऐसे परम दयालु प्रभु राम की शरण में जो नहीं जाता वह अभागा है।

ईदृशः कृपालु रवश्यमेव मुमुक्षुभिः सेव्य इत्याशयेनाह संसाराब्धाविति—

संसाराब्धौनिमज्जं, स्तमिह न शरणं, प्राप्नुयात्को मुमुक्षुः
श्रीरामं शान्तशीलं, निजजनहृदयं, धन्विनं दीनबन्धुम्।
पापघ्नाख्यं वदान्यं, विधुवदनमहो, पुण्यकीर्तिं दयालुं
सर्वेषामात्मभूतं, श्रुतिकथितगुणं, योगिनां ध्येयमूर्त्तिम् ॥४॥

संसाराब्धौ जन्ममरणरूपसंसारसमुद्रे निमज्जन् को मुमुक्षुर्मोक्षेच्छुः अहो विस्मयस्तं दयालुं श्रीरामम् इह लोके शरणं न प्राप्नुयात् किन्तु सर्वमुमुक्षुभिः स एवाश्रयणीयः। कथंभूतं शान्तं सात्त्विकं शीलं स्वभावो यस्य तं शान्तशीलम्। निजजनेषु हृदयं यस्य तं निजजनहृदयं भक्तचिन्तनपरम्। धन्विनं भक्तरक्षार्थं धनुर्धरम्। दीनानां स्वशरणगतानां बन्धुवद्धितकारिणम्। पापघ्ना पापविनाशिका आख्या नाम यस्य तम्। वदान्यम् उदारम्। विधुवदाह्लादकरं वदनं यस्यतम्। पुनः कथंभूतं पुण्या पवित्रकीर्तिर्यस्य तां न केवलमुपकारित्वेन सेव्यः किन्त्वात्मत्वादपि सेव्य इत्याह—सर्वेषां प्राणिनामात्मभूतम् आत्मनः सेवनं सर्वानुकूलमितिभावः। रामतापनीयादिश्रुतिभिः कथिता गुणा यस्य तम्। योगिनां ध्येया ध्यानविषया मूर्तिर्यस्य योगिभिरिति पाठे ध्यातुं योग्या मूर्त्तिर्यस्य तमिति ॥४॥

पदार्थ—(संसाराब्धौ) इस संसाररूपी समुद्र में (निमज्जन्) डूबता हुआ (कः मुमुक्षुः) कौन मुमुक्षु है जो (तं श्रीरामं) उन दयालु श्रीराम की (इह) इस लोक में (शरणं न प्राप्नुयात्) शरण

में जाना नहीं चाहता । वे श्रीराम (शान्तशीलं) शान्त स्वभाववाले हैं। (निजजनहृदयं) अपने भक्तों के हृदय हैं। (धन्विनं) भक्तों की रक्षार्थ धनुर्धारी हैं (दीनबन्धुम्) दीनों के बन्धु हैं। (पापघ्नाख्यं) पापविनाशकारी हैं। (वदान्यं) उदार हैं (विधुवदनं) चन्द्र समान मुख वाले हैं। (पुण्यकीर्त्तिम्) पवित्र कीर्त्ति से युक्त हैं। (दयालुं) दयावान् हैं। (सर्वेषामात्मभूतं) सब प्राणियों के आत्मभूत (श्रुतिकथितगुणं) श्रुति जिनके गुणों का गान करती है। (योगिनां ध्येयमूर्त्तिम्) योगिजन उनकी सुन्दर मूर्त्ति का ध्यान करते हैं।

भावार्थ--ऐसे परम कृपालु श्रीराम मोक्ष चाहने वाले जनों से अवश्य ही सेव्य हैं। इस आशय से कहते हैं--

इस संसाररूपी समुद्र में डूबता हुआ ऐसा कौन मुमुक्षुजन है जो उन परम दयालु श्री भगवान् राम की सेवा में नहीं जाना चाहता ? वे दशरथनन्दन श्रीराम शांत तथा गम्भीर स्वभाव वाले हैं, सदा अपने भक्तों के हृदयरूपी कमल में निवास करते हैं। सर्वदा उन्हें अपने प्यारे भक्तों की ही चिन्ता रहती है। वे अपने भक्तों की रक्षा के लिए धनुष धारण करते हैं। अपनी शरण में आये हुये जनों का बन्धु के समान हित करते हैं। पतितपावन तथा पापविनाशकारी उनका नाम है। वे बड़े उदार, दानी हैं, उनका मुख चन्द्रमा के समान आह्लाद (प्रसन्नता) का देने वाला है। वे पवित्र कीर्त्ति वाले सर्व प्राणियों के आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी हैं। श्रुतियां जिनके गुणों का निरन्तर गान करती हैं, तथा योगीजन जिनकी मूर्त्ति का सतत ध्यान करते हैं ऐसे दया की साक्षात् मूर्त्ति श्रीराम हैं।

न केवलं शबर्यादिषु जातितो हीनेषु कृपां कृतवान् किन्तु कर्मणा हीनेष्वपि कारुणिक इत्याह पाप इति--

पापे भोगैकतृष्णे, बलिमुखनिबहे, क्रोधकामादिदुष्टे
शक्तः सौमित्रियुक्तस्त्रिभुवनविजये, वर्णवेदादिहीने ।
भूयः कर्त्ता कृतज्ञः, स्वजनकृतमणुं, यश्च सख्यं चकार
कोवा नाराधयेत्तं, गुरुमुरुमतिमान्, फल्गुना मोक्षमिच्छन् ।५।

यः दाशरथिर्बलिमुखानां वानराणां निवहे समूहे सख्यं मैत्रीं चकार कृतवान् । कथंभूते पापे क्रूरे । भोगेष्वेकतृष्णा यस्य तस्मिन् भोगलम्पट इत्यर्थः । क्रोधकामादिभिर्दुष्टेदूषिते । वर्णा ब्राह्मणादयो वेदा ऋगादयस्तैर्हीने, जातितश्च बुद्धितोपि पशौ आदिशब्देन लज्जादीनां ग्रहणम् । ननु स्वसहायतार्थं तेषु सख्यं चकार नतु कृपये-त्याशङ्क्य न तस्य सहायापेक्षेत्याशयेनाह--त्रिभुवनविजये स्वयमेव शक्तः समर्थस्तत्रापि सौमित्रिणा शेषावतारवीरधुरीणलक्ष्मणेन युक्तः । ननु पापैः सह सख्यं न युक्तां किञ्चिदुपकारिण इति चेदुप-कारानुसारेण किञ्चिद्देयं न तु सख्यमित्याशङ्कायामाह--कथंभूतः स्वजनकृतमणुं लवमपि भक्तोपकारं भूयो भूरिकर्त्ता जानातीत्यर्थः । यतः कृतज्ञः । कः उरुमतिमान् महाबुद्धियुक्तो जनः फल्गुना अल्प प्रयासेन मोक्षमिच्छन् तं श्रीरामं गुरुं हितकारिणं (कृष्णं वंदे जगद्-गुरुम्) इति वचनाद् वा सर्वैः पूज्यं नाराधयेत् । भगवच्छरणागति-मात्रेण संसारोद्धारं जानन्तः सर्वे आराधयन्तीतिभावः ।।५।।

पदार्थ--(यः) जिन दाशरथि श्रीराम ने (बलिमुखनिवहे) वानरों के समूह से (सख्यं चकार) मित्रता की, वे वानर (पापे) जो पापी थे, (भोगैकतृष्णे) भोगों में ही जिनकी तृष्णा थी, (क्रोधकामादिदुष्टे) क्रोधकामादि से दूषित थे, (वर्णवेदादिहीने) जाति और वेदादि शास्त्रों से अनभिज्ञ थे । वैसे श्रीराम (त्रिभुवन विजये) तीनों लोकों को विजय करने में (शक्तः) स्वयमेव समर्थ थे और फिर (सौमित्रियुक्तः) सुमित्रानन्दन श्री लक्ष्मणजी से युक्त थे, किन्तु वे (स्वजनकृतां) अपने भक्तों से किये (अणुं) किञ्चि-

न्मात्र उपकार को भी (भूयः कर्ता) बहुत मानते थे। (कृतज्ञः) क्योंकि श्रीराम बड़े कृतज्ञ हैं, (क उरु मतिमान्) अतः कौन महा-बुद्धिमान् जन (फल्गुना) अल्प प्रयास से (मोक्षं इच्छन्) मोक्ष को चाहता हुआ (तं गुरुं) उन तीनों लोकों के स्वामी श्रीरामकी (नाराधयेत्) आराधना नहीं करेगा।

भावार्थ——परम दयालु श्रीराम ने जाति से हीन शवरी आदि पर ही अनुकम्पा नहीं की, अपितु कर्मों से हीनों पर भी दया की। कृपासागर प्रभु रामने वानर तथा रीछ जैसे निकृष्ट पशुओं के साथ मित्रता की। यद्यपि वे पापयुक्त और क्रूर स्वभाव के थे, भोग लम्पट थे, काम क्रोधादि दुर्व्यसनों से दूषित थे, जाति तथा वेद शास्त्रादि के ज्ञान से अनभिज्ञ थे, पशु योनि में थे, फिर भी दयालु श्रीराम ने उन्हें अपना मित्र बनाया।

तो फिर श्रीराम ने वानर रीछों को अपनी सहायता के लिए मित्र बनाया, कृपा तो नहीं की? इस शंका का उत्तर देते हैं—— अयोध्यापति रघुनन्दन को किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं थी, वे त्रिभुवनपति थे, अतः वे त्रिभुवन-विजय करने में स्वयमेव एकाकी ही समर्थ थे, और फिर शेषावतार वीरधुरीण श्रीलक्ष्मणजी उनके साथ थे।

तो फिर पापियों के साथ मित्रता उचित नहीं थी, उपकार के वदले में कुछ देदेना चाहिये था, मित्रता क्यों की? इस शंका के उत्तर में कहते हैं——वे कौशल्यानन्दन प्रभु राम बड़े दयालु हैं, अपने भक्तों द्वारा किये हुये किञ्चिन्मात्र उपकार को भी वे बहुत मानते हैं। वे बड़े कृतज्ञ हैं। कौन बुद्धिमान् पुरुष थोड़े से प्रयास से मोक्ष को चाहने वाला परम हितकारी उन कृपालु श्रीराम की आराधना नहीं करेगा? क्योंकि "जगद्गुरु श्री कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ" इस वाक्य से वे प्रभु सब के गुरु, पूज्य हैं।

भगवच्छरणागतिमात्र से ही संसार से उद्धार चाहने वाले सब बुद्धिमान् जन उन प्रभु श्रीराम की आराधना करते हैं ।

(चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ) इति भगवद्वचनात्सर्वभक्तानां चतुर्ष्वन्तर्भाव-स्तेषु संसाराब्धौ निमज्जन्नित्यादिना जिज्ञासूपास्यत्वेनोक्तः (सर्वेषा-मात्मभूतः) इति ज्ञानिध्येयत्वेन दर्शितः (वलिमुखनिवहे) इत्या-दिना सुग्रीवाद्यर्थार्थिभिः सेव्यत्वेनेरितः । इदानीमार्त्तध्येयत्वेन तमाह योऽहल्या मिति–

योऽहल्यां प्रस्तराङ्गीं, स्वकुपितपतिना, गौतमेनातिशप्तां
पत्पद्मस्पर्शमात्रान्मृदुतनुतरुणीं सुन्दराङ्गीं चकार ।
योऽयोध्यायां च पृथ्वीसुरमृततनयं, जीवयामास सद्यः,
कस्तं रामं कृपालुं, व्रजति न शरणं, दुःखतः क्षेममिच्छन् ।६।

यः श्रीराघवः अहल्यां गौतमपत्नीं प्रस्तराङ्गीं पाषाणदेहां स्वस्यां अहल्यायां कुपितश्चासौ पतिश्च स्वकुपितपतिस्तेन स्वकुपित-पतिना गौतमेनातिशप्तां पत्पद्मस्पर्शमात्रात् चरणकमलयोः स्पर्श-मात्रेण मृदुः कोमला तनुर्यस्याः सा मृदुतनुश्चासौ तरुणी तरुणावस्था-युक्ता सा मृदुतनुतरुणी तां सुन्दराङ्गीं चकार । यः श्रीरामः अयो-ध्यायां पृथ्वीसुरस्य ब्राह्मणस्य मृतश्चासौ तनयो मृततनयस्तं मृत-ब्राह्मणपुत्रं सद्यः सपदि जीवायामास । इयं कथा वाल्मीकीये प्रसिद्धा । को मनुष्यो दुःखितः आर्त्तः सन् क्षेमं मोक्षमिच्छन् तं कृपालुं रामं शरणं न व्रजति तच्छरणव्रजनं निखिलोचितमिति भावः ।।६।।

पदार्थ––(यः) जिन श्रीरघुवंशमणि श्रीरामने (अहल्यां)[1] गौतमपत्नी को, (स्वकुपितपतिना) जो अपने कुपित पति (गौतमेन) गौतम के (अतिशप्तां) शाप द्वारा (प्रस्तराङ्गीं) पाषाण हो गई थी । (पत्पद्मस्पर्शमात्रात्) उसे अपने चरण कमल

[1] अहल्या की कथा रामायण में देखिये ।

के स्पर्शमात्र से (मृदुतनुतरुणीं) कोमल शरीरवाली युवती (सुन्द-राङ्गीं) और सुन्दर अङ्गों वाली (चकार) बनादिया (च) और (यः) जिन दयालु श्रीराम ने (अयोध्यायां) अयोध्यामें (पृथ्वीसुर-मृततनयं) ब्राह्मण[१] के मृत पुत्र को (सद्यः) झट ही (जीवयामास) जीवित कर दिया। (कः) कौन (दुःखितः) ऐसा दुखी मनुष्य है (क्षेममिच्छन्) जो मोक्ष चाहता है (तं कृपालुं रामं) उन कृपालु श्रीराम की (शरणं) शरण में (न व्रजति) नहीं जाना चाहता ?

भावार्थ--श्रीमद्भगवद्गीता में चार प्रकार के भक्त बतलाये हैं-आर्त्त (दुखी) जिज्ञासु (प्रभु को जानने की इच्छा वाला) अर्थार्थी (सांसारिक कामनाओं को पूर्ण करने की इच्छा वाला) और ज्ञानी। इन चार प्रकार के भक्तों में पतित-पावन दयालु श्रीराम ने आर्त्त, दुखी अहल्या का उद्धार किया-यह वर्णन करते हैं--

करुणामय श्रीराम ने, अपने कुपित पति, गौतमऋषि के शाप से पत्थर की बनी हुई अहल्या को, अपने चरणकमलों के स्पर्शमात्र से कोमल शरीर तथा सुन्दर अङ्गों वाली युवती बना दिया और उन्हीं कृपासागर श्रीराम ने अयोध्यापुरी में ब्राह्मण के मृत पुत्र को शीघ्र ही जीवित कर दिया। फिर इस लोक में ऐसा कौन अभागा मनुष्य होगा जो दुःखों में फँसा निज कल्याण और मोक्ष की इच्छा करता हुआ ऐसे दीनबन्धु दयासागर श्री राम की शरण में नहीं जाना चाहता। ऐसे व्यक्ति को दीनानाथ भक्तवत्सल प्रभु की शरण में जाना ही उचित है।

(सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः) इति गीतार्थं प्रदर्शयन् भक्त्येकसाध्यं तत्त्व-ज्ञानं नान्यैरित्याह हित्वेति युग्मेन-

---

[१] ब्राह्मण मृत पुत्र की कथा गोपाल विलास ताल में देखिये।

हित्वा बोधोपलब्धौ, हरिपदजलजाराधनं मोक्षमार्गं
कुर्वन्यो योगचर्यां, यतिरतियतते, सर्वदा वेदवेत्ता।
स प्राप्नोतीह बोधं, न च भवचरमं, क्लेशमेवाभियाति
मन्येऽतोहं स्वनाथं, दशरथतनयं, सर्वधर्म्मान् विहाय ॥७॥

यो यतिर्यत्नशीलो वेदवेत्ता वेदज्ञः सन् मोक्षमार्गं हरिपदजलजाराधनं भगवच्चरणारविन्दसेवनं हित्वा बोधोपलब्धौ ज्ञानप्राप्त्यर्थं योगचर्यां हठयोगक्रियां कुर्वन् सर्वदाऽतियतते प्रयत्नं करोति। स यतिः इह लोके बोधं तत्त्वज्ञानं न प्राप्नोति, अतो भवानां जन्मनां चरमम् अन्तमपि न प्राप्नोति किंतु नानासाधनकृतक्लेशमेवाभियाति। तदुक्तं भागवते--(श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्यते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये। तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्) अतोहं सर्वधर्म्मान् भक्तीतराखिलान्वेदविहितान् विहाय तेष्वर्थबुद्धिं त्यक्त्वा दशरथतनयं श्रीराममेव स्वनाथं संसारोद्धारकं मन्ये जान इति।

पदार्थ--(यः यतिः) जो यत्नशील (वेदवेत्ता) वेदों का जानने वाला पुरुष (मोक्षमार्गं) मोक्ष के मार्ग तथा (हरिपदजलजाराधनं) भगवान् के चरणकमल की सेवा को (हित्वा) छोड़कर (बोधोपलब्धौ) ज्ञान प्राप्ति के लिए (योगचर्यां) हठयोग क्रिया को करता हुआ (सर्वदाऽतियतते) सदा बहुत प्रयत्न करता है। (सः) वह यति (इह) इस लोक में (बोधं) तत्त्वज्ञान को (न प्राप्नोति) प्राप्त नहीं कर सकता। (भवचरमम्) इस लिये जन्मों के अन्त को भी (न) नहीं प्राप्त होता। (क्लेशं एव अभियाति) किन्तु अनेक क्लेशों को ही पाता है। (अतः अहम्) इस लिए मैं तो (सर्वधर्म्मान्) भक्ति के अतिरिक्त सब कर्मों को (विहाय) त्याग कर (दशरथतनयं) दशरथ-पुत्र श्रीराम को ही (स्वनाथं) अपना स्वामी (मन्ये) मानता हूँ।

भावार्थ--श्रीगीताजी में भगवान् ने स्वयं कहा है-"हे अर्जुन ! सब धर्मों (कर्मों) को छोड़कर तू मेरी शरण में आजा। मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूँगा, तू सोच मत कर" अतः केवल भक्ति द्वारा ही तत्त्वज्ञान साध्य है अन्य प्रकार से नहीं-इस विषय में कहते हैं-

जो यत्नशील योगी वेदज्ञ होता हुआ भी मोक्ष के मार्गरूपी भगवान् के चरणकमल की सेवा को त्याग कर ज्ञानप्राप्ति के लिए हठयोग की क्रियाओं में ही सदा प्रयत्न करता रहता है वह योगी इस लोक में तत्त्वज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिए उसके बार-बार जन्मों का अन्त भी नहीं होता, अतः वह अनेक कठिन साधनों के करने से क्लेश को ही पाता है। जैसे श्रीमद्भागवत में कहा है कि-"जो मनुष्य कल्याण के मार्गरूपी भक्ति को छोड़ देता है, और केवल ज्ञानप्राप्ति के लिए क्लेश उठाता है, उसके पास केवल क्लेश ही शेष रह जाता है। जैसे-तुष (धान का डंठल) कूटने से केवल तुष ही प्राप्त होता है" इसलिए मैं भक्ति के अतिरिक्त सब वेद विहित कर्मों को त्याग कर अर्थात् उनमें कर्त्तव्य बुद्धि छोड़कर, दशरथनन्दन, श्रीराम को ही अपना उद्धारकर्त्ता मानता हूँ।

यस्तु सर्वधर्म्मत्यागपूर्वकं भगवन्तं न भजति स विज्ञोऽपि मूढ इत्याशयेनाह, यस्त्यक्त्वेति—

यस्त्यक्त्वा कोशलेशं, कलिकलुषहरं, प्रीतिमन्यत्र धत्ते
आम्रान् हित्वा फलार्थी, समधुरफलदान्, सेवतेऽर्कं कुबुद्धिः।
ज्ञानं योगश्च विद्यास्त्वनुजपसुतपो, नैव सिध्यन्ति सद्यः
कालाहिग्रस्तकाये, स्मरणमथविना, प्रेमपीयूषपानम् ॥८॥

कलियुगसम्बन्धीनि कलुषाणि पापानि हरतीति कलिकलुषहरस्तं कोशलेशं अयोध्यानाथं श्रीरामं यस्त्यक्त्वा अन्यत्र योगयागादिषु प्रीतिं धत्ते धरति तान्छ्रेयोबुद्धया सेवते स एवं विधो ज्ञेयो यथा यः

कश्चिचफलार्थी आम्रफलाभिलाषी मधुरफलदान् आम्रान् आम्र-वृक्षान् हित्वा अर्कं सेवते जलादिना तं पालयति स कुबुद्धिः कथ्यते। ननु ज्ञानयोगादयोऽपि शास्त्रविहिता कथं त्याज्या इति चेत्सत्यं ते तु दीर्घायुर्भिः सेव्या नेदानींतनाल्पायुषेत्याशयेनाह-कालाहिना काल-सर्पेण ग्रस्तश्चासौ कायो ग्रस्तकायस्तस्मिन्कालाहिग्रस्तकाये सति भगवतः स्मरणं विना अथ प्रेमैव पीयूषम् अमृतम् तस्य पानं विना ज्ञानयोगादयः सद्यः सपदि नैव सिध्यन्ति मनुर्देवता विषयो मन्त्रो-ऽन्यत्स्पष्टमिति ॥८॥

पदार्थ––(यः) जो पुरुष (कलिकलुषहरं) कलियुग के पापों को हरने वाले (कोशलेशं) अयोध्यापति श्रीराम को (त्यक्त्वा) छोड़कर (अन्यत्र) योगयागदिकों में (प्रीतिं) प्रीति (धत्ते) रखता है (सः) वह ऐसा है जैसे कोई (फलार्थी) आम के फल चाहने वाला (मधुरफलदान्) मधुर फल देने वाले (आम्रान्) आम के वृक्षों को (हित्वा) छोड़कर (अर्कं सेवते) आक के वृक्ष का सेवन करता है। (स कुबुद्धिः) उसे बुद्धिहीन ही कह सकते हैं। (कालाहिग्रस्त-काये) क्योंकि कालरूपी सर्प से शरीर ग्रसाजाने पर (स्मरणंविना) भगवत् स्मरण के विना (प्रेमपीयूषपानम्) प्रेमरूपी अमृतपान के विना ज्ञान, यज्ञ, मन्त्र, जप तपादि शीघ्र नहीं सिद्ध होते।

भावार्थ––जो सब धर्मों (कर्मों) को छोड़कर भगवान् को नहीं भजता, प्रभु की शरण में नहीं जाता, वह विज्ञ, सब कुछ जानने वाला होने पर भी मूढ है––

जो मनुष्य इस भयंकर कलियुग सम्बन्धी पापों को हरने वाले अयोध्यापति श्रीराम को छोड़कर अन्यत्र योगयागादि में प्रीति रखते हैं अर्थात् उन्हें कल्याण की बुद्धि से सेवन करते हैं, उन्हें ऐसा समझना चाहिए जैसे कोई आमके फल का अभिलाषी मीठे फल देने वाले आम के वृक्ष को छोड़कर आक के वृक्ष को जलादि से सींचता है: अतः उसे बुद्धिहीन ही समझना चाहिये।

ज्ञान योगादि का शास्त्रों में विधान है उन्हें कैसे छोड़ देना चाहिये—इस शंका का समाधान करते हैं—यह सत्य है पर ज्ञान-योगादि दीर्घायु होने पर ही सेवन किये जा सकते हैं, पर इस कलि-युग में तो बहुत ही अल्पायु होती है, अतः कहते हैं—कालरूपी सर्प इस शरीर को ग्रसे जा रहा है, इसलिए प्रभु-स्मरण के विना और उसके प्रेमरूपी अमृत-पान के विना ज्ञान, योग, यज्ञ, मन्त्र, जप तपादि शीघ्र सिद्ध नहीं हो सकते ।

भगवद्भक्ता एव कृत्यार्था अन्ये तु संसारसागरे निपतिता इत्याशयेनाह—धन्य इति—

धन्यः पूज्यः स साधुर्जगति च यतते, यो हरेर्दर्शनार्थं
रामो वा येन दृष्टः, स च सफलजनिः, संस्थितः संस्थितो न ।
अन्ये प्रेताः परेतास्त्रिभुवनपतयो, ह्यप्रमीताः प्रमीता—
वन्ध्या श्रेष्ठा अभक्तात्, सुषमतनयतो, दुःखदात्कुक्षिभारात् ।९।

जगति येन रामो दृष्टो वा यो हरेर्दर्शनार्थं यतते भजनध्यानादि-भिर्यत्नं कुरुते स जगति लोके धन्यः कृतकृत्यः सर्वश्रेष्ठो वा । स एव पूज्यः स एव साधुः । सफला जनिर्जन्म यस्यस सफलजनिरेव, संस्थितः स चेन्मृतोपि न संस्थितो न मृतः कीर्त्यात्रैव त्तिष्ठतीति भावः । अन्ये भगवद्भक्तिरहिता ये प्रेता मृतास्ते तु परेता मृता एव । परन्तु त्रिभुवनपतयस्त्रिलोकनाथाः सन्तः अप्रमीता जीविता अपि प्रमीता मृता जीवनलाभाभावादितिभावः । भक्तिशून्यो रूपादि-युक्तोपि मातुः पितुरकिञ्चित्कर इत्याह—अभक्तात् भगवद्भक्ति-रहितात् कुक्षिभारात् उदरे भाररूपेण धृतादतएव दुःखदात् दुःखदातुः सुषमतनयतः सुन्दरपुत्रात् वन्ध्याः श्रेष्ठाः पुत्राय भगवद्भक्त्युपदेशः पित्रोरेवोचित इति भावः ।।९।।

पदार्थ—(जगति) इस संसार में (येन रामः दृष्टः) जिसने श्रीराम का दर्शन कर लिया (वा) या (यः हरेः) जो श्रीराम के

(दर्शनार्थं) दर्शन के लिए (यतते) यत्न करता है (स) वह पुरुष (धन्यः पूज्यः साधुः) धन्य है, पूजनीय है, और साधु है। (स च सफलजनिः) और उसी का जन्म सफल है। (संस्थितः संस्थितो न) वह मरा हुआ भी नहीं मरा है। (अन्ये) और भगवद्भक्ति से रहित (प्रेताः परेताः) जो मर गये वे सर्वदा के लिये मर ही गये, परन्तु (त्रिभुवनपतयः) वे तीनों लोकों के स्वामी होते हुये (अप्रमीताः प्रमीताः) जीवित भी मरे हुओं के समान हैं। (अभक्तात्) भक्तिरहित, (कुक्षिभारात्) उदर में भाररूप से रखे हुये (दुःखदात्) दुःख देने वाले (सुषमतनयतः) उस सुन्दर पुत्र से माता का (वन्ध्याः श्रेष्ठाः) वन्ध्या रहना श्रेष्ठ है।

भावार्थ--भगवान् के भक्तों का जन्म सफल है, और तो इस संसार में व्यर्थ ही जन्म लेकर पड़े हैं, इस आशय से कहते हैं--

इस संसार में जिस मनुष्यने रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन कर लिया या जो पुरुष भजन ध्यानादि द्वारा उस दयालु प्रभु के दर्शन के लिए प्रयत्न करता है, वह इस जगत् में धन्य है, कृतकृत्य है, सर्वश्रेष्ठ है, पूज्य है और वही साधु है। उस महा-पुरुष का जन्म सफल हो गया, उसने जन्म प्राप्ति का फल पा लिया। यदि वह मर भी गया तो भी कीर्त्ति के द्वारा अमर है, क्योंकि कहा भी है--"संसार में जिसकी कीर्ति है वह सदा जीता है, अमर है, परन्तु भगवद्भक्ति से रहित जो पुरुष मर गये, वे सदा के लिए लुप्त हो गए, मिटगये, उनका कोई नाम भी नहीं लेता। प्रभु-भक्ति के बिना चाहे कोई त्रिलोकी का स्वामी हो, कितना ही ऐश्वर्य-शाली हो, वह जीवित रहता हुआ भी मृतक के समान है। उसको जीवन से कोई लाभ नहीं है। भगवद्भक्ति से रहित सुन्दर पुत्र भी माता के उदर में केवल भाररूप से ही रहा है, उसने माता को केवल दुःख ही दिया है। ऐसे सुन्दर पुत्र से तो माता का वन्ध्या रहना ही श्रेष्ठ है, अतः माता पिता को जन्म-काल से ही

अपनी सन्तान को भगवद् भक्ति का निरंतर उपदेश देते रहना चाहिये ।

ये तु जननी जनकादयः, पुत्रादि स्वबन्धून् भगवदभिमुखान्न-कुर्वन्ति ते सर्वथाहेया इत्याह मित्रमिति ।

मित्रं पुत्रः कलत्रं, स्वजनक जननी, भ्रातरो नेतृभूपा—
आचार्य्यः शिष्यवर्गौ, रघुवरचरणे, भक्ति शून्यास्समस्ताः ।
यद्यप्यात्मानुकूलास्सपदि च रिपुवत्, तेऽत्रहेयास्तथापि
सेव्यो रामाङ्घ्रिभक्तः, प्लवयवनजनिः, किं पुनः साधुः विप्रः १०

रघुवर चरणे श्रीरामचरणारविन्दे भक्ति शून्याश्चेन्मित्रादय स्तर्हि ते यद्यप्यात्मानुकूलाः स्व पालकाः स्नेहिन स्तथापि सपदि शीघ्र मेव रिपुवत् अत्र लोके सर्वे हेयास्त्याज्याः । रामाङ्घ्रिभक्तः श्रीरामचरण सेवकः प्लवयवनजनिरपि सेव्यः साधुविप्रो रामाङ्घ्रि-भक्तः सेव्य इति किं पुनर्वक्तव्यं सत्वतीव सेव्यः । प्लवाश्चाण्डाला यवना म्लेच्छा स्तेषु जनिर्जन्मास्यासौ प्लवयवनजनिः । कलत्रं पत्नी नेतास्वामी शिष्य वर्गः शिष्यसमूहोऽन्यत्सर्वं स्पष्टमिति ।१०।

पदार्थ––(रघुवरचरणे) श्रीराम के चरणों में जो (भक्ति-शून्यः) भक्ति से शून्य हैं (समस्ताः) वे सब (मित्रं पुत्रः कलत्रं) मित्र पुत्र और स्त्री (स्वजनक जननी) अपने पिता माता (भ्रातरः नेतृ भूपाः) भाई, नेता और राजा (आचार्य्यः शिष्यवर्गः) आचार्य्य तथा शिष्यों का समूह (यद्यपि आत्मानुकूलाः) यद्यपि वे स्वपालक और स्नेही भी हों (सपदि च रिपुवत्) तथापि उन्हें शीघ्र ही शत्रु की तरह (अत्रहेयाः) इस लोक में त्याग देना चाहिये । (च) और (रामाङ्घ्रिभक्तः) श्रीराम के चरणों का भक्त (प्लव यवन जनिः) चाहे चाण्डाल और म्लेच्छ ही क्यों न हो (सेव्यः) वे सब सेवा करने योग्य हैं (किं पुनः साधुविप्रः) साधु विप्र यदि राम भक्त हों तो फिर क्या कहना है ।

भावार्थ--जो माता पिता अपने पुत्रादिकों को भगवद्-भक्ति की प्रेरणा नहीं करते उन्हें सर्वथा त्याग देना चाहिये--इस विषय में कहते हैं--भगवान् राम के चरणारविन्द में जो जन भक्ति, प्रीति नहीं रखते, चाहे वे मित्र, पुत्र, पत्नी, माता, पिता, भाई, नेता, राजा, आचार्य्य अथवा शिष्यों का समूह भी क्यों न हो, यद्यपि ये सब अपने पालक और स्नेही भी हैं तथापि राम भक्ति के बिना इन सब को शत्रु की तरह तुरन्त त्याग देना चाहिये और यदि श्रीराम-चरणों के अनुरागी चाण्डाल और पतित म्लेच्छ भी क्यों न हों, उनकी सादर सेवा करनी चाहिये। पर यदि साधु तथा विप्र श्री राम भक्त हों तो फिर क्या कहना है, सोना और सुगन्ध है, वे तो सर्व प्रकार से सेव्य हैं।

इति स्रग्धरा-रत्न-दशकम्।

अथ शिखरिणी-रत्न-दशकम्

यतो भगवच्छरणागताः कृतार्थाः सेव्याश्चातोऽधुना शरण्य-स्वरूपं प्रदर्शयन् (यो ब्रह्माणं विदधाति[१] पूर्वंयो वै वेदांश्च प्रहिणोति[२] तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये) इति य० श्वेताश्वतर श्रुति प्रदर्शितां भगवच्छरणागति मङ्गीकुरुते शिखिग्रीवेति दशकेन ।।

शिखिग्रीवाश्यामं, धृतनवदुकूलं रघुवरं
प्रसन्नाम्भोजास्यं, कमलनयनं कार्मुकवरम् ।
निजाङ्गैर्भ्राजिष्णुं, कनकमुकुटं ह्यञ्जलिकृतः,
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ।।१।।

वयम् अञ्जलिकृतः संहतोभयकरा अतो लोकात् हि निश्चयेन श्रीरामं शरणं उपयामः, कथंभूतं शरण्यं शरणार्हम् । शिखी मयूर स्तस्य ग्रीवावत् श्यामम् । धृतं नवं दुकूलम् पट्टपीताम्बरं येन तम् ।

रघुवरं रघुकुलतिलकम् (रत्नम्) प्रसन्नाम्भोजास्यंप्रफुल्लार-विन्दम् आस्यं मुखं यस्य तम् । कमलनयनं कमलशब्देन तत्पत्रं गृह्यते कमलदलवदायत नेत्रम् । कार्मुकं धनुः करे यस्य तम् । निजाङ्गैः करचरणादिभिर्भ्राजिष्णुम् अतिशयेन शोभायमानम् । कनकमुकुटम् सुवर्णरचितं किरीटं यस्य तमिति ।।१।।

पदार्थ--(वयम्) हम (अञ्जलिकृतः) दोनों हाथ जोड़कर (हि) निश्चय से (श्रीरामं) श्रीराम की (शरणं) शरण में (उपयामः) जाते हैं । वे श्रीराम (शरण्यं) शरण के योग्य हैं । (शिखिग्रीवाश्यामं) मयूर की ग्रीवा के समान श्याम वर्ण के हैं । (धृत नवदुकूलं) नवीन वस्त्र धारण किये हुये हैं । (रघुवरम्) रघुवंश में रत्न के समान हैं । (प्रसन्नाम्भोजास्यं) खिले हुये

---

[१] विविध सामर्थ्य युक्तं दधाति उत्पादयति ससर्ज ।

[२] प्रकर्षेण समर्पयति प्रददौ ।

कमलके समानमनोहर मुखवाले हैं। (कमलनयनं) कमल की भांति सुन्दर नेत्रों वाले हैं। (कार्मुककरम्) उन्होंने हाथ में धनुष धारण कर रखा है। (निजाङ्गैः भ्राजिष्णुं) अपने सुन्दर अङ्गों से शोभायमान हैं। (कनक मुकुटम्) उन्होंने स्वर्ण का मुकुट धारण कर रखा है।

भावार्थ--जो भगवान् की शरण में आगये वे कृतार्थ होगये अतः वे भक्तजन सेव्य हैं। इसलिये अब शरण्यस्वरूप दिखलाते हुए "जिसने विविध सामर्थ्य युक्त ब्रह्मा को उत्पन्न किया और जिस परमात्माने उस ब्रह्मा को वेद प्रदान किए उस आत्म बुद्धि प्रकाशक प्रभु की मैं मुमुक्षु शरण में जाता हूँ" इस य० श्वेताश्वतर श्रुति द्वारा दिखलाई हुई भगवत् शरणागति को अङ्गीकार करते हुये कहते हैं--

हम हाथ जोड़ कर विनीत भाव से निश्चयपूर्वक उस दशरथ-नन्दन प्रभु श्रीराम की शरण में जाते हैं। वे दयालु श्रीराम ही शरण के योग्य हैं, उनका वर्ण मयूर की ग्रीवा के समान श्याम है। उन्होंने नवीन पीताम्बर धारण कर रखा है। वे रघुवंश में रत्न के समान हैं। प्रफुल्ल कमलकी भांति उनका मुख सदा खिला रहता है, तथा कमलदल की तरह उनके नेत्र विशाल हैं। उन्होंने हाथ में धनुष धारण कर रखा है तथा वे कर चरणादि अपने सब अङ्गों से अत्यन्त शोभायमान हैं। सुवर्णनिर्मित मुकुट उनके विशाल मस्तक पर विराजमान है। ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर पतित पावन प्रभु श्रीराम की हम शरण में जाते हैं।

ननु कथं मामाश्रयस्यहं त्वशक्तो यतः स्वकार्य्यार्थं सुग्रीवादीनाश्रितवानित्याशङ्क्य न भवानशक्त स्तएवाशक्ता इत्याशयेनाह-त्वयेति।

त्वयाऽशक्ताभक्ताः, कपिकलशकर्णानुजमुखा—
महत्त्वंते नीता, निजवदनगीता स्तुतिकथा।

कृपालुं त्वत्तोऽन्यं, कमपि न च जानामि जगतः
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ।।२।।

कपिः सुग्रीवः कलशकर्णः कुम्भकर्णस्तस्यानुजो विभीषणो मुखमिवमुख्यौ येषु ते, सुग्रीव विभीषण प्रभृतयो वालि रावणादि स्वशत्रुविजये अशक्ता असमर्था ये भक्तास्ते, त्वया महत्त्वं शत्रु-विजयोभयलोकसुगतिं नीताः प्राप्तास्तथाच तेषां स्तुतेः कथा स्तुति-कथा निजवदनगीता भरतादीनां सभायां स्वमुखेन कथिता । जगतो लोकस्य मध्ये त्वत्तोऽन्यं कमपि कृपालुं न जानामि, अतस्त्वामेव श्रीरामं शरणमुपयाम इति चतुर्थपादार्थस्तु पूर्ववत्सर्वत्र ज्ञेयः ।।२।।

पदार्थ--(कपिकलशकर्णानुजमुखाः) सुग्रीव विभीषणादि (अशक्ताः) असमर्थ, निर्बल (ये भक्ताः ते) जो भक्त वे (त्वया महत्त्वंनीताः) आपकी अनुकम्पा से महत्व को प्राप्त हो गए। (स्तुतिकथा) उनकी स्तुतिकथा आप ने अपने श्रीमुख से गाई। (जगतः) इसलिए मैं इस संसार के मध्य में (त्वत्तोऽन्यम्) आपसे अन्य, दूसरा (कमपि) किसी भी कृपालु को नहीं जानता (अतः वयम्) इसलिए हम (शरण्यं श्रीरामम्) शरण योग्य श्रीराम की ही (शरणं उपयामः) शरण में जाते हैं।

भावार्थ--तुम मेरा आश्रय क्यों लेते हो मैं तो स्वयं अशक्त, असमर्थ हूँ, क्योंकि अपने कार्य्य की सिद्धि के लिये मैंने सुग्रीवादि का आश्रय लिया ? इस शंका का उत्तर देते हैं--आपअशक्त नहीं हैं वे सुग्रीवादि ही अशक्त थे--

सुग्रीव तथा कुम्भकर्ण का अनुज विभीषण आदि जो आपके भक्त, वालि तथा रावणादि पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ थे, वे भक्त आपकी कृपा से शत्रुओं को जीत कर तथा दोनों लोकों में अच्छी गति पाकर महत्व को प्राप्त हो गए, अर्थात् आपकी दया से उन्हें दोनों लोकों में बड़ा मान प्राप्त हो गया, पुनः आपने ही

अपने मुखारविन्द से भरतजी की सभा में मुक्त कंठ से उनकी स्तुति, प्रशंसा की है। इसलिए इस संसार में आपसे उत्तम और किसी कृपालु को मैं नहीं जानता। अतः हे शरणागतरक्षक प्रभु राम हम आपकी शरण में आते हैं।

ननु (समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः) इति गीतोक्तेः शत्रुमित्रहीनं मां कथं भक्तपक्षपातिनं वदसीत्याकाङ्क्षायां तव वचनादेवेत्याशयेनाह–भजन्तमिति ॥

भजन्तं त्वां भक्तं, निजजन विरक्तं वदति मे,
मतिर्नो व्यामोहो, यममतिरिवात्मीय जनके।
श्रुतं पारोक्ष्यंते, स्वजनहितसम्पादनमितः
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ॥३॥

(ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्) इत्यादि तव वचनान्मया ज्ञातं त्वं भक्तं भजसेऽतो भक्तं सेवन्तं पालयन्तमिति यावत् त्वां निजजनेषु विरक्तो निजजनविरक्त स्तं त्यक्तभक्तपालनं मे मम मति र्यद् वदति तन्नः अस्माकं आत्मीयजनके स्वपितरि यममतिः कालबुद्धि रिव व्यामोहो भ्रमः। नन्वहं भक्तांश्चेद् भजेयं कथं न ते जानन्त्याङ्काक्षाया मगोचरत्वादित्याशयेनाह––ते तव स्वजनहित-सम्पादनं स्वभक्तहिताचरणं पारोक्ष्य मस्माभिः शास्त्रेषुश्रुतं, महा-भारते परोक्षेणार्जुनहिताचरणं बहुस्थलेषु प्रसिद्धं तथा चैतरेय श्रुतिः (परोक्षप्रिया इव हि देवाः) इति हेतोः। शरण्यमित्यादि पूर्ववत्।३।

पदार्थ––(भक्तं) आप सदा से अपने भक्तों के (भजन्तं) पालन करने वाले हैं। (त्वाम्) किन्तु अब आप (निजजनविरक्तं) अपने भक्तों की रक्षा करने में विरक्त, उदासीन हैं। (मे मतिः) ऐसी मेरी बुद्धि (वदति) कहने लगी हैं (नः) वह हमारे (आत्मीय जनके) पालन करने वाले पिता में (यममतिः इव) काल

बुद्धि की तरह (व्यामोहः) भ्रम है। (ते) आपका (स्वजनहित-सम्पादनं) अपने भक्तों की भलाई करना (पारोक्ष्यम्) परोक्ष रूप से है (श्रुतम्) ऐसा महाभारतादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है। इसलिए शरण योग्य भक्तवत्सल श्रीराम की शरण में हम जाते हैं।

भावार्थ––"मेरे लिए सब प्राणी समान हैं, न मेरा कोई शत्रु है और न कोई मित्र है" इस श्री गीताजी के वचन से मैं शत्रु मित्र से हीन हूँ, फिर मुझे भक्त पक्षपाती क्यों कहते हो ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं––आपने ही तो श्रीगीताजी में कहा है––"जो प्राणी जिस प्रकार मुझे भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार भजता हूँ" इत्यादि आपके वचन से ही मैंने जाना है कि आप अपने भक्तों को भजते हैं, इसलिए भक्तों को भजने वाले आपको "अब आप भक्तों से विरक्त, उदासीन हैं अर्थात् अब आपने अपने भक्तों की रक्षा करना छोड़ दिया है" इस प्रकार मेरी बुद्धि जो समझने लगी है, वह हमारे पालन-पोषण करने वाले पिता-सदृश आपमें काल-बुद्धि की तरह भ्रममात्र है।

"मैं भक्तों को भजता हूँ वे मुझे क्यों नहीं भजते" इस विषय में कहते हैं–आपका अपने भक्तों का हित करना पारोक्ष्य रूप से है, प्रत्यक्ष नहीं, ऐसा हमने महाभारतादि सद्-ग्रन्थों में सुना है। जैसे–आपने परोक्ष रूप से अर्जुन का हित किया, ऐसे और उदा-हरण भी अनेक स्थलों में प्रसिद्ध हैं। जैसे ऐतरेय की श्रुति कहती है–"देवता परोक्ष में हित करते हैं" इत्यादि। इस कारण शरण योग्य परोक्ष हित चिन्तक श्रीराम की हम शरण में जाते हैं।

न केवलं शास्त्र प्रामाण्येन त्वद् भक्त हिताचरण मवबुध्यते किन्त्वनुमानेनाप्यनुभूयत इत्याहनचेदिति ॥

न चेत्त्रातात्वंस्याः, किल कवलिता मादृशजना–
बलिष्ठैः स्युः संद्यः, खलुरिपुनिकायै र्युगविधैः।

यतोऽभीतायामः, प्रियवयमतोऽसि त्वमविता
शरण्यं श्रीरामं, शरण मुपयामो वयमतः ॥४॥

चेत् यदि त्वं भक्तानां त्राता न स्या न भवे स्तदा युगविधैः अन्तः कामादयो बहिस्तस्करादय इति द्विधा शत्रवस्तै द्विविधैः खलरिपुनिकायै दुर्जनशत्रुसमूहैः वलिष्ठै रतिवलवद्भिः, मादृशजनाः मत्सदृशानिर्बलाः सद्यः सपदि किल निश्चयेन कवलिता ग्रस्ताः स्यु र्भवेयुः। यतोहेतोः हे प्रिय वयम् अभीता अभया यामःसर्वतो गच्छामः। अतस्त्वमस्माकम् अविताआतासि। त्वमस्माकं रक्षको यतो वयं निर्बलाः सन्तोऽभया यो यो निर्बल सन्नभयः ससभगवता रक्षितो तथा सुग्रीवविभीषणादय इत्यनुमानम् ॥४॥

पदार्थ--(चेत्) यदि (त्वं) तुम (भक्तानांत्राता) भक्तों के रक्षक (नस्याः) नहीं होते तो (युगविधैः) दोनों प्रकार के (वलिष्ठैः) अति बलवान् (खलिरिपुनिकायैः) दुर्जन शत्रुसमूहों से (मादृश-जनाः) मेरे जैसे निर्वलपुरुष (सद्यः) जल्दी ही (किल) निश्चयसे (कवलिताः स्युः) ग्रास बन जाते। (यतः) इसी कारण से (प्रिय) हे प्यारे (वयम्) हम (अभीताः) भय रहित होकर (यामः) घूमते फिरते हैं। क्योंकि आप हमारे (अविता) रक्षक (असि) हैं। इसलिए शरण योग्य श्रीराम की शरण में हम जाते हैं।

भावार्थ--आप भक्तों पर असीम कृपा करते हैं, यह केवल शास्त्रों के प्रमाण से ही नहीं जाना जाता, अपितु अनुमान से भी हम अनुभव करते हैं--

हे दयालु श्रीराम, यदि आप भक्तों की रक्षा करने वाले नहीं होते तो अन्तः भीतरकेशत्रु कामक्रोध अहंकारादि, और बाहर के शत्रु तस्करादि, ये दोनों प्रकार के शत्रु तथा अति बलवान् दुर्जन-रूपी शत्रुसमूह, मेरे जैसे निर्बल जन को निश्चय से जल्दी ही अपना ग्रास बना लेते, मुझे खाजाते। इसी कारण हे प्राणप्यारे

श्रीराम ! हम निर्भयता से निर्द्वन्द्व चारों दिशाओं में घूमते फिरते हैं, क्योंकि आप हमारे रक्षक हैं, अतः हम निश्चिन्त हैं। इसी कारण हम निर्बल होकर भी निर्भय हैं, क्योंकि जो प्राणी निर्बल होकर भी निर्भय विचरता है, दीनानाथ प्रभु उसकी स्वयं रक्षा करते हैं। जैसे सुग्रीव विभीषणादि प्रबलशत्रुओं से भयभीत थे, पर प्रभु को अपना रक्षक समझ कर निर्भय निर्द्वन्द्व विचरते थे। ऐसे शरणागत रक्षक श्रीराम की शरण में हम जाते हैं।

ननु बालस्य जनकजननी प्रभृतय स्त्रातार स्तरुणस्य गुरुमित्रा-दयो वृद्धस्यपुत्रादयो भक्ताः प्रसिद्धाः कथमहं भक्तत्रातेत्याशङ्क्य तत्तद्रूपेण त्वमेव त्रातेत्याह-गत इति ॥

गतस्त्वं नः पातुं, जनकजननी मोहमयतां,
स्वभक्तेषु श्रद्धां, गुरुसखिषु कारुण्यमतिताम्।
अतोऽस्माकन्त्राता, विविधतनुभिस्त्वं व्यवसितः
शरण्यं श्रीरामं, शरण मुपयामो वयमतः ॥५॥

बाल्ये नः अस्मान् पातुं रक्षितुं जनकजननी मोहमयतां आवा-भ्यामयं शिशुः पाल्योऽस्मदाश्रित इति मातापित्रोर्यो मोहस्तन्मयतां तद्रूपतां त्वमेव गतः। पित्रोर्मोहशक्ति रस्मत्पालनार्थं त्वयैव निर्मिते-त्यर्थः। एवं वार्द्धके नः पातुं त्वमेव स्वभक्तेषु पुत्र शिष्यादि सेवकेषु श्रद्धां गत स्तेषु श्रद्धां उत्पाद्य त्वमेव नः पासि। तारुण्ये नः पातुं गुरुसखिषु कारुण्यमतितां त्वमेव गतस्तेषु कृपारूपेण भवानेव नः पासि। अतो विविधतनुभिः पित्रादिदेहै स्त्वमेवास्माकं त्रातेत्य-स्माभिर्व्यवसितो निश्चितः ॥५॥

पदार्थ--(नः) बाल्यकाल में हमें (पातुं) पालन करने के लिए (जनकजननी मोहमयतां) पिता माता के मोह रूप आप ही (गतः) होगए। फिर बुढ़ापे में हमारी रक्षा के लिए आप ही (स्वभक्तेषु) अपने भक्तों, सेवकों में, (श्रद्धांगत) श्रद्धा रूप में

हो गए। युवावस्था में हमारी रक्षा के लिए आप (गुरुसखिषु) गुरु तथा सखा आदि में (कारुण्य मतितां गतः) कृपा रूप में हो गए। (अतः) इसलिए (विविधंतनुभिः) अनेक प्रकार के शरीरों, तथा अवस्थाओं द्वारा (त्वमेव) आपही (अस्माकं त्राता) हमारे रक्षक (व्यवसितः) निश्चय रूप से हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थ--बालक के बचपन में माता पिता रक्षक होते हैं, युवावस्था में युवक के गुरु मित्रादि तथा वृद्धावस्था में वृद्धकी पुत्रादि सेवा करते हैं, यह प्रसिद्ध है, सर्व विदित है, फिर मैं भक्तों का रक्षक कैसे हूँ इस शंका का उत्तर देते हैं—

बचपन में हमारे पालन करने के लिए, "इस बालक का हमने पालन करना है, यह हमारे आश्रित है" इस प्रकार माता पिता के मोह रूप में आप ही तो हैं, हमारे पालने के लिए मातापिता की मोहशक्ति आपने ही तो बनाई है। इसीप्रकार वृद्धावस्था में हमारी रक्षा के लिए आप ही पुत्र शिष्यादि सेवकों में श्रद्धारूप से विराजमान हैं अर्थात् पुत्र शिष्यादि में श्रद्धा उत्पन्न करके हमारी रक्षा करते हैं। युवावस्था में गुरु तथा सखा आदि में करुणा रूप से आप ही तो रक्षा करते हैं। उनमें करुणा रूप से विराजमान हो कर आपही तो रक्षा करते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के शरीर तथा अवस्थाओं द्वारा आप ही हमारे त्राता हैं। यह हमने निश्चय कर लिया है इसलिए हे दीन रक्षक श्रीराम हम आपकी शरण में आते हैं।

न केवलमत्रैव त्राता किन्तु (सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः) इति भगवद् वचनात्परत्रापि स एव भक्तत्रातेत्याशयेनाह-कृत इति ॥

कृतो नो यैर्योगो, निजकुल सुधर्मोपि न मखः
परित्यक्ता मान्या, गुरुजनकमातृप्रभृतयः।

तथापित्वां प्राप्ता स्तव चरण भक्तान पतिताः
शरण्यं श्रीरामं, शरण मुपयामो वयमतः ॥६॥

यैः सुग्रीवादिभिर्न योगः कृतो यैर्विभीषणादिभिर्न यज्ञः कृतो निजकुलस्य सुष्ठुधर्मो ज्येष्ठभ्रातृ सेवादिकोपि न कृतः प्रत्युत यैर्वलिप्रह्लादभरतादिभिर्गुरुजनक मातृप्रभृतयो मान्याः पूज्याः परित्यक्तास्तथापि ते सर्वे तवचरणंभक्ता स्त्वामेव प्राप्ता योगयाग स्वधर्मादित्यागेन न पतिताः ।

(कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति) इति प्रतिज्ञा वाक्यादधोगतिं न गता इति ॥६॥

पदार्थ--(यैः) जिनसुग्रीवादि ने (न योगः कृतः) न योग साधन किया (न मखः) जिन विभीषणादि ने न कोई यज्ञ किया (निजकुल सुधर्मोऽपि न कृतः) अपने कुल के श्रेष्ठ धर्म का पालन भी नहीं किया। (गुरुजनकमातृप्रभृतयः) अपितु वलि प्रह्लाद भरतादि ने गुरु, माता पिता आदि (मान्याः परित्यक्ताः) पूज्यों को त्याग दिया। (तथापि) तो भी वे सब (तव चरण भक्ताः) आपके चरणों के भक्त (त्वामेव प्राप्ताः) आपको ही प्राप्त हुये। (न पतिताः) वे अधोगति को प्राप्त नहीं हुये।

भावार्थ--हे प्रभो श्रीराम, आप केवल इस लोक में ही रक्षक नहीं हैं अपितु "सब धर्मों को (कर्म्मों को) छोड़कर तू मेरी शरण में आजा मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूँगा, तू शोक मत कर" इस गीता के वचनानुसार आप परलोक में भी भक्तों के, शरणागतों के रक्षक हैं—

सुग्रीवादि ने न कोई योग साधन किया और न विभीषणादि ने कोई यज्ञ किया, अपितु अपने कुल के श्रेष्ठधर्म ज्येष्ठ भ्राता की सेवा भी नहीं की, भाइयों से विमुख हो गए, एवं राजा बली ने अपने गुरु की आज्ञा का पालन नहीं किया, प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा भङ्ग

की तथा भरत ने माता की अवहेलना की, उन्होंने अपने पूज्य जनों को भी त्याग दिया तो भी वे सब आपके अनन्य भक्त कहलाये अन्त में आपको प्राप्त किया, ये सब योग, याग स्वधर्म कर्मादि त्यागने पर भी पतित नहीं कहलाये और न ही अधोगति को प्राप्त हुये। आपने श्रीगीताजी में अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है– "हे अर्जुन, तू निश्चय जान, मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता" इसलिए शरणागतवत्सल, पतितपावन श्री भगवान् राम की हम शरण में जाते हैं।

ननु कियत्प्रमाण भजनेन भक्तो भगवन्तं यातीत्याकाङ्क्षायां शरणागति मात्रेणैवेत्याह तवास्मीति।

तवास्मीत्थंब्रूते, सकृदपि च यस्ते रघुपते
ह्यभीतिं तस्मै त्वं, व्रतमिति ददासि श्रुतिगतम्।
स्वभक्तानो त्यक्ता, द्रवित मतिना क्वापि भवता
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ॥७॥

हे रघुपतेऽहं तवास्मि त्वां शरणं गतोऽस्मि इत्थं अमुनाप्रकारेण सकृत् एकवारमपि यो ब्रूते वदति तस्मै त्वम् उभयलोकयोः अभीतिम् अभयं ददासि इति ते तव व्रतं नियमो ऽस्माकं श्रुतिगतं, श्रोत्रेन्द्रिये प्राप्तम् पुराणेषुश्रुतमित्यर्थः। विभीषणमुद्दिश्य श्रीरामेणोक्तम् (सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामीति व्रतं मम)। अतो द्रवितमतिना द्रवीभूत चित्तेन भवता त्वया स्वभक्ताः क्वापि कस्मिंश्चिद्देशकालेपि न त्यक्ताः किन्तु स्वीकृता-एव ॥७॥

पदार्थ—(रघुपते) हे रघुवंशमणि, श्रीराम (तवास्मि) मैं तुम्हारी शरण हूँ (इत्थम्) इस प्रकार से (सकृत् अपि) एक बार भी (यः ब्रूते) जो बोलता है, (तस्मैत्वं) उसे आप (अभीतिम्) अभयदान (ददासि) दे देते हो (इति ते व्रतम्) यह आपका नियम

(श्रुतिगतं) हमने सुना है। (द्रवित मतिना) इसलिए द्रवीभूत चित्त से (भवता स्वभक्ताः) आपने अपने भक्त (क्वापि) कहीं भी (न त्यक्ताः) नहीं छोड़े। इसलिए हे दीन रक्षक श्रीराम, हम आपकी शरण में आते हैं।

भावार्थ--कितना भजन करने पर भक्त भगवान् को प्राप्त कर लेता है इस आङ्काक्षा में कहते हैं--भक्त, हे प्रभो मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, इतना सच्चे मन से कहने मात्र से ही प्रभुको पा लेता है, इस विषय में कहते हैं--

हे रघुवंशमणि श्रीराम, मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, इस प्रकार सच्चे हृदय से जो एक बार भी कह देता है, उसे, हे दीन बन्धो, आप दोनों लोकों में अभयदान दे देते हो, ऐसा आपका व्रत प्रतिज्ञा, है, यह हमने पुराणादि शास्त्रों में सुना है। जैसे विभीषण को लक्ष्य करके आपने कहा था, "मैं तेरा हूँ, इस प्रकार एक बार भी मेरी शरण में आकर जो माँगता है, मैं उसे सब प्राणियों से अभय दान दे देता हूँ, यह मेरा व्रत, नियम है"। इसलिए द्रवीभूत मनसे आपने अपनी शरण में आये भक्तों को किसी देश और काल में भी नहीं त्यागा, किन्तु सब प्रकार से उनकी रक्षा की। ऐसे दीन पालक परम दयालु श्रीराम की शरण में हम आते हैं।

सर्वस्मादधिक भक्तप्रियत्वमन्यदपि तस्य व्रतमाह-तथा न श्रीरिति।

तथा न श्रीः शेषो, ममविधिशिवात्मा प्रियतमा,
यथा स्निग्धा भक्ता, विषय विरता ध्यान निरताः।
इतीत्थं तेऽमोघ, व्रत उत पुराणेषु विदितः
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ॥८॥

श्रीः पत्नी, शेषो भ्राता, विधिः पुत्रः, शिवोमित्रम्, आत्मा श्यामसुन्दरदेहः, एते सर्वे न तथा मम प्रियतमा, यथा स्निग्धाः

स्नेहयुक्ता भक्ताः विषयविरताः शब्दादिविषयेषु विरक्ता ध्याननिरताः सदैव ममध्यानपरा ममप्रियतमाः श्रीशेषादयोबन्धुभावेन न तथा प्रिया भक्तिभावेन तु तत्सदृशा एवेति भावः। इति शब्दो वाक्यसमाप्तौ। इत्थम् एवंविधस्ते तव अमोघव्रतः सार्थकनियमः पुराणेषु विदितः। तदुक्तं भा० स्कं० ११ उद्धवं प्रति भगवता (न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्न शङ्करः। न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्) इति ॥८॥

पदार्थ--(श्रीः) लक्ष्मी, स्वपत्नी (शेषः) भ्राता लक्ष्मण या बलराम, शेषावतार (विधिः) पुत्र, ब्रह्मा (शिवः) मित्र, महादेव (आत्मा) अपना शरीर (न तथा प्रियतमाः) ये सब मुझे उतने प्यारे नहीं हैं (यथा स्निग्धाः) जितने मेरे स्नेही (भक्ताः) भक्त मुझे प्यारे हैं। (विषयविरताः) जो विषयों से विरक्त हैं। (ध्यान निरताः) तथा सदा मेरे ध्यान में लगे रहते हैं। (इत्थं) इस प्रकार का (ते अमोघव्रतः) आपका सार्थक नियम (पुराणेषु-विदितः) पुराणों में प्रसिद्ध है।

भावार्थ--सब से अधिक मुझे भक्त प्यारे हैं, यह मेरा दूसरा व्रत, नियम है, इस विषय में कहते हैं--निज पत्नी लक्ष्मी, शेषावतार बलराम या श्रीलक्ष्मण, ब्रह्मा मेरा पुत्र, शिव मित्र और अपनी यह देह ये सब मुझे उतने प्यारे नहीं हैं जितने सर्वस्व त्यागी मेरे प्यारे भक्त मुझे प्यारे हैं। जो मेरे प्यारे भक्त विषयों से विरक्त हैं, जिन्होंने सांसारिक विषय वासना को त्याग दिया है तथा अहर्निश, सर्वदा मेरे ध्यान में मग्न रहते हैं। श्री, शेषादि बन्धुभाव से मुझे उतने प्रिय नहीं हैं, पर भक्तिभाव के कारण उन भक्तों के समान हैं। इस प्रकार आपका यह अटलव्रत पुराणों में प्रसिद्ध है। जैसे श्रीमद्भागवत में उद्धव के प्रति भगवान ने स्वयं कहा है--"मुझे उतना प्रिय न ब्रह्मा है, न शङ्कर है, न सङ्कर्षण, बलराम है, न लक्ष्मी है और न ही मेरी अपनी देह

है, जितने प्यारे, हे उद्धव, तुम हो" इसलिए भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम की शरण में हम आते हैं।

इदानीं सिंहावलोकन न्यायेन योगयागादि हीनानामपि भगवद् भक्त्या भगवत्प्राप्ति दर्शयति-न योग इति।

न योगो नो यागो, न च मयि विरागो न च कृतिः,
सुखी स्यां संसारे, किल कथमगारेऽत्रविपदाम्।
विचिन्त्यैवं ज्ञातः, सकलसुखदाता हरिरितः,
शरण्यं श्रीरामं, शरण मुपयामो वयमतः ॥९॥

न च मयि अष्टाङ्ग योगोऽस्ति न च यागो मीमांसोक्त यज्ञो न च सर्वविषय विरागो न च कृतिर्धर्मशास्त्रोक्त कर्म अस्ति। अतो विपदाम् अगारे भवने अत्र संसारे किल निश्चयेन कथमहं सुखी स्यां भवेयम्। एवं विचिन्त्य हृदि विचार्य्य सकलसुखदाता हरिरेव मया ज्ञातः। इतो हेतो स्तमेव श्रीरामं शरण मुपयाम इति पूर्ववत् ॥९॥

पदार्थ--(न योगः) न मैंने योग साधन किया है (न च यागः) और न कोई यज्ञ ही किया है। (न विरागः) न मेरा सर्व विषयों से विराग है। (न च कृतिः) और न मैंने धर्म-शास्त्रोक्त कोई उत्तम कर्म्म ही किया है, इसलिए (विपदां अगारे) विपत्तियों के स्थान (अत्र संसारे) इस संसार में (किल) निश्चय रूप से (कथं अहं) मैं कैसे (सुखी स्याम्) सुखी हो सकता हूँ। (एवं विचिन्त्य) इस प्रकार विचार कर (सकल सुखदाता हरिः) सारे सुखों के देने वाले भगवान् ही हैं (ज्ञातः) ऐसा मैंने समझ लिया है। अतः हम उन सर्व विपत्तियों से बचाने वाले प्रभु श्रीराम की शरण में जाते हैं।

भावार्थ--अब सिंहावलोकन न्याय से योगयागादि से रहितों को भी भगवद्भक्ति से ही भगवान् की प्राप्ति होती है यह दिख-लाते हैं--

हे प्रभो, मैंने न तो अष्टाङ्ग योग का साधन किया है और न मैंने मीमांसा शास्त्रोक्त यज्ञ ही किये हैं, न मुझे सारे सांसारिक विषयों से वैराग्य ही हुआ है और न ही धर्म शास्त्रोक्त उत्तम २ कर्म मैंने किये हैं। इसलिए विपत्तियों की खान इस संसार में निश्चय रूप से मैं कैसे सुखी हो सकता हूँ। इस प्रकार हृदय में अच्छी तरह विचारकर, सारे सुखों के देने वाले प्रभु श्रीराम ही हैं, ऐसा मैंने निश्चयरूप से जान लिया है, इस कारण उन शरणागत-वत्सल दयालु श्रीराम की ही शरण में हम जाते हैं।

नन्वहमेव सकल सुख दाता नान्य इति कथमवसीयत इत्याङ्काक्षायां वेद मूलक युक्त्या इत्याशयेनाह-कृपालुमिति ।।

कृपालुं त्वां वेदो, वदति भवखेदोज्झित गतिं
स्वयं यस्त्वानन्दो, जनपरमानन्दयति सः।
इति त्यक्त्वा सर्वान्, भवशिखिनि गर्वान्निपतितः
शरण्यं श्रीरामं, शरणमुपयामो वयमतः ।।१०।।

भवखेदोज्झितगतिं संसारदुःखरहिता गतिः प्राप्तिर्यस्य तं त्वां कृपालुं वेदो वदति अतस्त्वमेवानन्दस्वरूपोऽपरं सर्वं दुःखमयं। तदुक्तं छान्दोग्ये—(यो वै भूमातत्सुखं नाल्पेसुखमस्ति) नन्वेवमपि कथमहं सुखदाता तत्राह—यः स्वयं आनन्दः आनन्द स्वरूपः स अपरमपि जन-मानन्दयति सुखिनं करोति यथा धन्येवापरं धनिनं कुरुते न तु निर्धनः। इति एवं विचार्य्य भवशिखिनि संसारदावानले गर्वात् देहाभिमानात् निपतितो निपतितान् सर्वान् त्यक्त्वा श्रीराममेव शरण मुपयामः ।।

पदार्थ—(भवखेदोज्झित गतिं) संसार के दुःखों से छुड़ानेवाले (त्वां कृपालुं) दयालु तुम्हें ही (वेदः वदति) वेद वर्णन करते हैं। (यस्तु स्वयं आनन्दः) जो स्वयं आनन्द स्वरूप है। (स अपरं जनं) वह दूसरे मनुष्य को (आनन्दयति) आनन्द दे सकता है, (इति)

इस प्रकार विचार कर (भवशिखिनि) इस संसाररूपी दावानल में (गर्वात्) देहाभिमान में (निपततः) पड़े हुये (सर्वान् त्यक्त्वा) सब को छोड़कर हम दीनदयालु श्रीराम की शरण में आते हैं।

भावार्थ---"मैं ही सकल सुखदाता हूँ और कोई नहीं, यह तुमने कैसे जाना" इस आकाङ्क्षा में वेद मूलक प्रमाण द्वारा कहते हैं--

संसार के दुःखों को हरने वाला वेद भगवान् आपको ही बतलाते हैं, क्योंकि आप आनन्द स्वरूप हैं और इस संसार में सब कुछ दुःखमय है। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है--"जो ब्रह्म है वही निश्चय से सुख रूप है, अल्प में सुख नहीं है"। "जो स्वयं आनन्द स्वरूप है, वही दूसरों को आनन्द दे सकता है, सुखी कर सकता है। जैसे धनी व्यक्ति ही दूसरे को धनवान् बना सकता है न कि निर्धन" इस प्रकार अच्छी तरह विचार कर इस संसाररूपी दावानल में पड़े हुए हम सब को छोड़ कर शरणागत रक्षक श्रीराम की ही शरण में जाते हैं।

इति शिखरिणी-रत्न-दशकम्।

अथ चञ्चरीक-रत्न-दशकम्

यत्तु पूर्वं परोक्षभक्त हिताचरणमीरितं तद्ये तर्ककर्कशहृदया नैव मन्यन्ते तेषां विश्रम्भार्थं पुराणस्थातिमानुषकर्मानेकोदाहरणै स्तदानींतन जनावलोकितं भगवतो भक्तवात्सल्यं प्रपञ्चयति कृपामिति ॥

कृपांवक्तुं शक्तः, को मुकुन्दस्य लोके
रथे स्थित्वा जिष्णोः, संयुगे भूपतीनाम् ।
सखा दुःखी मास्या-न्मय्युपस्थे मदीयो-
य एवं वै कृत्वा, निश्चयं मानसे स्वे ॥१॥

रिपूणां बाणौघान्, स्वीय देहे दधार
मुनीन्द्राणांध्येये, कोटि कन्दर्प कान्ते ।
अयं भीष्मो द्रोणो, योपदेशैस्तदेत्थं
बलं शत्रूणां श्री, तेज आयुर्जहार ॥२॥

लोके मुकुन्दस्य श्रीकृष्णस्य कृपां भक्तेष्वनुग्रहं वक्तु साकल्येन कथयितुं कः शक्तः समर्थो न कोपीत्यर्थः । अथवा को ब्रह्मा शक्त इति काकूक्तिः किन्तु नैव कुतो मादृशो मनुष्यः (जन्मकर्म च मे-दिव्यम्) इति दिव्यजन्म कर्म विषयत्वादिति भावः । तावदर्जुने परमानुकम्पामाह यः श्रीकृष्णो भूपतीनां संयुगे युद्धे, जिष्णोः अर्जुनस्य रथे स्थित्वा, मयि उपस्थे समीपस्थिते सति मदीयः सखा दुःखी शत्रुवाणैर्व्यथितो मास्यात् मा भवेत् स्वेमानसे निजे मनसि वै दाढर्येन एवं निश्चयं कृत्वा रिपूणां भीष्मकर्णादीनां बाणौघान् बाण समूहान् अग्रे स्थितः स्वीय देहे स्वोरसि दधार धृतवानिति द्वयोरन्वयः ।

ननु मित्रदेहं सुकुमारं स्वकायं कर्कश मवलोक्य किं बाणान् स्वदेहे दधारेति चेन्मावदेत्थमित्याशयेनाह-कथंभूते स्वीयदेहे मुनीन्द्राणां ध्येये ध्यानविषये तै र्ध्येयत्वेन सेविते तथाच कोटि कन्दर्प कान्ते

कोटिकामवन्मनोज्ञे। तत्र परोक्षहितमप्याह तदा सङ्ग्रामाभिमुखे अयं भीष्मोऽयं द्रोण इत्थं नाम संकीर्तनापदेशै र्व्याजैः शत्रूणां भीष्मादीनां देहगतं बलं श्रीः शोभा तेजः प्रभावः आयुश्च तानि जहार हृतवानिति ॥१-२॥

पदार्थ--(लोके) संसार में (मुकुन्दस्य) श्रीकृष्ण की (कृपां) कृपा (वक्तुं) कहने को (कः समर्थः) कौन समर्थ है। (यः) जिन श्री कृष्णने (भूपतीनां संयुगे) कौरवादि राजाओं के साथ युद्ध में (जिष्णोः) अर्जुन के (रथे स्थित्वा) रथ में बैठकर (मयि उपस्थे) मेरे समीप होने पर (मदीयः सखा) मेरा प्यारा मित्र (दुःखी मास्यात्) दुखी न हो (स्वे मनसे) अपने मन में (वै एवं कृत्वा) दृढता से इस प्रकार निश्चय करके (रिपूणां बाणौघान्) शत्रुओं के बाण समूहों को आगे बढ़कर (स्वीय देहे) अपने शरीर पर (दधार) धारण किया, जो शरीर (मुनीन्द्राणांध्येये) मुनीन्द्रों के ध्यान करने योग्य है और (कोटि कन्दर्प कान्ते) करोड़ों कामदेवों से अधिक सुन्दर है। (तदा) तब युद्ध में (अयं भीष्मो द्रोणः) यह भीष्म है, यह द्रोण है (इत्थं) इस प्रकार नाम ले लेकर (अपदेशैः) बहाने से (शत्रूणां बलं श्रीः तेजः आयुः) शत्रुओं के बल, शोभा, तेज और आयु को (यः जहार) जिन श्रीकृष्ण ने हर लिया।

भावार्थ--जो पहले भगवान् का परोक्षहिताचरण कहा था उसे तर्क कर्कश हृदय वाले नहीं मानते अतः उनके विश्वास के लिए पुराणस्थ अति मानुष कर्मों को अनेक उदाहरणों द्वारा उस समय के मनुष्यों द्वारा देखे गए भगवान् के भक्तवात्सल्य को दिखाते हैं--

इस संसार में षोडश कलावतार पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की निज भक्तों पर असीम कृपा का वर्णन करने में पूर्णरूप से कौन समर्थ हो सकता है, फिर मेरे समान साधारणजन तो क्या वर्णन करेगा ?

अर्जुन पर भगवान् श्रीकृष्ण ने जो कृपा की थी अब उसका वर्णन करते हैं––श्रीकृष्णचन्द्र ने कौरवादि राजाओं के साथ युद्ध में अर्जुन के रथ में बैठकर, सारथी बन कर, "मेरे पास रहते हुये मेरा भक्त, सखा अर्जुन शत्रुओं के बाणों से व्यथित न हो" इस प्रकार अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके भीष्म द्रोणादि शत्रुओं के बाण समूहों को आगे बढ़ कर अपने शरीर पर सहन किया।

तो क्या अपने मित्र के शरीर को सुकुमार और अपने शरीर को कठोर समझ कर बाणों को अपने शरीर पर सहन किया? इस शंका के उत्तर में कहते हैं––बहुत बड़े २ मुनीन्द्र जिनका ध्यान करते हैं और करोड़ों कामदेवों के समान जिनकी शोभा है, ऐसे सुन्दर और कोमल शरीर पर बाणों को सहन किया, और फिर उस संग्राम में यह भीष्म है, यह द्रोण है, इस प्रकार नाम ले लेकर बहाने से भीष्मादिके देहगत बल, शोभा तेज, आयु आदि को भक्त अर्जुन के हितार्थ श्रीकृष्ण ने हर लिया।

इदानीं वीर धुरीणैरपि कर्तुमशक्य मन्यद्धितमाह स्वसख्युरिति ॥

स्वसख्युः सङ्ग्रामे, मोहशोकाकुलस्य
सदाजीवाभिन्न, ब्रह्मबोधाग्निनायः।
दयालुर्निर्भेद्यान्, संशयाद्रीन्ददाह
सखास्वीयेधर्मे, स्थापितो येन सद्यः ॥३॥

सङ्ग्रामे समारम्भे कौरवेषु परिजनभावेन यो मोहस्तेन यः शोक स्तेन आकुलस्य विह्वलस्य स्वसख्युः स्वः श्रीकृष्णः सखायस्य स स्वसखा तस्यार्जुनस्य निर्भेद्यान् नानातर्क-र्दृढान् संशयाद्रीन् सन्देहपर्वतान् यो दयालुः श्रीकृष्णः सदा जीवाभिन्नं च तच्च ब्रह्म सदाजीवाभिन्नब्रह्म तस्य बोधरूपाग्निना ददाह। तदनन्तरं येन भगवता सखा स्वीये धर्मे (असङ्गोऽयं पुरुषः) (नायंहन्ति नहन्यते)

इत्यादि श्रुतिस्मृति प्रदर्शितेऽकर्त्तृत्वे वा युद्धरूपे क्षत्रिय धर्मे सद्यः सपदि स्थापितः स्थिरः कृत स्तस्य कृपां वक्तुं कः शक्त इति पूर्वेण सम्बन्ध एवमग्रेष्वपि ज्ञेय इति ।।३।।

पदार्थ--(सङ्ग्रामे) युद्ध आरम्भ होने के समय (मोह शोकाकुलस्य) मोह और शोक से व्याकुल (स्वसख्युः) अपने सखा अर्जुन के (निर्भेद्यान्) नानातर्कों से दृढ (संशयाद्रीन्) सन्देहरूपी पर्वतों को (यः दयालुः) जिन दयालु श्रीकृष्ण ने (सदाजीवाभिन्नब्रह्म बोधाग्निना) सदा जीव से अभिन्न ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि से (ददाह) जला दिया । तत्पश्चात् (येन) जिन भगवान् श्रीकृष्ण ने (सखा) अपने मित्र अर्जुन को (स्वीये धर्मे) अपने युद्ध रूप क्षत्रिय धर्म में (सद्यः) शीघ्र ही (स्थापितः) दृढ कर दिया ।

भावार्थ--जिन कर्मों को बड़े बड़े वीर भी नहीं कर सकते, आपने अपने सखा अर्जुन के हितार्थ वे काम किए--अब यह बतलाते हैं--

कौरवों के साथ युद्ध होने के समय कौरवों में परिजन (कुटुम्बी) भाव मानकर अर्जुन को मोह हो गया, उस मोह से उसे शोक उत्पन्न हुआ, तब अपने प्रिय सखा अर्जुन को मोह शोक से व्याकुल देखकर, स्वकर्त्तव्य पालन से विमुख जान कर, दयालु भगवान् श्रीकृष्ण ने, "यह जीव सदा ब्रह्म से अभिन्न है" इस ज्ञानरूपी अग्निद्वारा अनेक कुतर्कों से दृढ अर्जुन के उस सन्देहरूपी पर्वत को जलादिया । तत्पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने सखा को अपने धर्म (कर्तव्य) पर, "यह आत्मा असङ्ग है" "यह आत्मा न मरती है न मारी जाती है" इत्यादि श्रुति स्मृति द्वारा प्रतिपादित अकर्त्तृत्व भाव में, अथवा युद्धरूप क्षत्रिय धर्म में शीघ्र ही तत्पर कर दिया । ऐसे परम कृपालु भगवान् मुकुन्द की कृपा का वर्णन कौन कर सकता है ।

(पर्य्येणं[१] म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः परियेऽप्रियाभ्रातृव्याः) इति तैत्तिरीय श्रुत्यर्थं प्रदर्शयंस्तेन स्वधर्मस्थापनेनैव तस्मै भक्ति-मुक्ती ददावित्याह-स्वमित्रा मित्रौघानिति ।।

स्वमित्राऽमित्रौघान्, युद्धसिन्धौ निधाय
ददौ कौन्तेयेभ्यो—राज्यकीर्तिं च मुक्तिम् ।
हतं भ्रूणं द्रौणि, ब्रह्मशस्त्रेण कृष्णो
गदी गर्भंगत्वा, त्वौत्तरेयं ररक्ष ।।४।।

स्वमित्राणि पाण्डवा स्तेषाम् अमित्राणि शत्रवः कौरवास्तेषाम् औघाः समूहास्तान् स्वमित्राऽमित्रौघान् युद्धसिन्धौ युद्धरूपसमुद्रे निधाय निक्षिप्य तत्र घातयित्वा इत्यर्थः । कौन्तयेभ्यः कुन्तीपुत्रेभ्यो य इत्यनुवर्तनीयो यः श्रीकृष्णो राज्येन सह कीर्त्तिः राज्यकीर्त्ति स्तां राज्यकीर्त्ति मुक्तिञ्च ददौ । गदी गदा सहितो यः श्रीकृष्णो गर्भम् उत्तारायाः कुक्षि स्वालौकिकातर्कित शक्त्या गत्वा द्रौणे र्ब्रह्म शस्त्रं द्रौणिब्रह्मशस्त्रं तेन अश्वत्थाम्नो ब्रह्मास्त्रेण हतं भ्रूणं गर्भस्थम् औत्तारेयं उत्तारापुत्रं परीक्षितं ररक्ष रक्षितवान् । तस्य मुकुन्दस्य कृपां वक्तुं कः शक्त इति ।।४।।

पदार्थ—(स्वमित्राऽमित्रौघान्) अपने मित्र पाण्डवों के अमित्र कौरवों को (युद्धसिन्धौ) युद्धरूपी समुद्रमें (निधाय) डालकर, मरवा कर (कौन्तयेभ्योः) कुन्तिपुत्र पाण्डवों को (यः) जिन श्री कृष्ण ने (राज्यकीर्तिं) राज्य और कीर्ति (च मुक्तिं ददौ) और मुक्ति दी । (गदी गर्भंगत्वा) गदा सहित श्रीकृष्ण ने उत्तारा की कुक्षि में जाकर (द्रौणि-ब्रह्मशस्त्रेण) अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र से (हतं भ्रूणं) मारे हुये गर्भस्थ (औत्तारेयं) उत्तारा पुत्र परीक्षित की

---

[१] एनं उपासकं प्रति परि द्विषन्तो द्वेषं कुर्वन्तः सपत्नाः शत्रवो म्रियन्ते ये भ्रातृव्या भ्रातृपुत्रा अपिपर्य्यप्रियाः परितोऽप्रियं कुर्वन्ति तेपि म्रियन्ते ।

(ररक्ष) रक्षा की, उन परम कृपालु मुकुन्द की कृपा का कौन वर्णन कर सकता है ॥

भावार्थ--"इस उपासक के प्रति जो द्वेष करते हैं वे शत्रु मर जाते हैं तथा भ्रातृ-पुत्र भी यदि अप्रिय करते हैं वे भी मर जाते हैं" इस तैत्तिरीय श्रुति के अर्थ को दिखाते हुये उस धर्म स्थापन के द्वारा प्रभु श्रीकृष्ण ने अपने भक्तों को भुक्ति और मुक्ति दी । इस विषय में कहते हैं--

अपने मित्र पाण्डवों के शत्रु कौरवों को युद्धरूपी समुद्र में फेंक कर अर्थात् उन्हें मरवाकर जिन श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवोंको राज्य कीर्त्ति और मुक्ति प्रदान की । फिर गदा सहित श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गर्भ में अपनी अलौकिक तथा अतर्कित शक्ति द्वारा जाकर द्रौण-पुत्र अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र द्वारा मारे हुये गर्भस्थ उत्तारा के पुत्र परीक्षित् की रक्षा की, ऐसे परमदयालु करुणासागर श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा का कौन वर्णन कर सकता है ।

अथ तस्य व्रजगोपेषु कारुण्यमाह व्रज इति--

व्रजे कुण्डल्यास्ये, कन्दराबुद्धिमुग्धान्
शिशून्नष्टप्राणा, ञ्जीवयामास शौरिः ।
सुनासीरासारा, द्विह्वलं गोपवृन्दं
गिरिं हस्तेधृत्वा, सप्तघस्रान् ररक्ष ॥५॥

व्रजे वृन्दावने कुण्डल्यास्ये कुण्डली सर्पस्तस्य आस्ये अघासुर सर्पानने कन्दरा पर्वतगुहा तद्‌बुद्ध्या मुग्धान् मूढान् सर्पमुखं कंदरां मत्वा तत्र प्राप्तानित्यर्थः। नष्ट प्राणान् तस्य जठराग्निना विषेण वा मृतान् गोपबालान् यः शौरिः श्रीकृष्णो जीवयामास, सर्पोदरंगत्वा तस्य कुक्षिं विदार्य्य तान्निष्काषितवानित्यर्थः। सुनासीरेण देवराजेन कृतो य आसारो निरन्तरजलधारासम्पात स्तस्मात् सुनासीरासाराद्

विह्वलं व्याकुलं गोपवृन्दं आभीरसमूहं गिरिं गोवर्द्धनं हस्तेधृत्वा सप्त घस्रान् दिवसान् ररक्ष सप्तदिवसपर्यन्तं गिरिं करे धृत्वा रक्षितवानित्यर्थः ॥५॥

पदार्थ--(व्रजे) वृन्दावनमें (कुण्डल्यास्ये) सर्प के मुख में (कन्दराबुद्धि मुग्धान्) पर्वत की गुफा जान कर मोहित हुये (नष्ट प्राणान्) विष द्वारा मरे हुये (शिशून्) गोप बालकों को (यः शौरिः) जिन श्रीकृष्ण ने (जीवयामास) जीवनदान दिया। (सुनासीरा-सारात्) इन्द्र द्वारा निरन्तर वर्षा करने से (विह्वले) व्याकुल (गोपवृन्दम्) गोप समूह को (गिरिं हस्ते धृत्वा) गोवर्द्धन पर्वत को हाथपर उठाकर (सप्तघस्रान्) सात दिन पर्यन्त (ररक्ष) रक्षा की।

भावार्थ--अब आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र ने व्रज के गोपों पर जो करुणा की यह दिखाते हैं--

श्री वृन्दावन में गौ चराते समय एक दिन अघासुर सर्प के मुख में, उसे पर्वत की गुफा जानकर उस में प्रविष्ट हुये और उसके विष से मरे हुए, गोप बालकों और गायों को जिन कृपालु श्रीकृष्ण ने निज कृपा से जीवन प्रदान किया अर्थात् उस सर्व अघासुर के उदर में जाकर उसकी कुक्षि को फाड़ कर उन ग्वाल-वालों तथा गौओं को बाहर निकाला, पुनः देवराज इन्द्र द्वारा निरन्तर सात दिन तक वर्षा करने से व्याकुल हुए गोप समूह तथा गौओं की, गोवर्द्धन पर्वत को अपने हाथ पर उठाकर सात दिन तक रक्षा की ऐसे परम कृपालु मुकुन्द की कृपा को कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है।

अधुना गुरुदासहिताचरण माह मृतमिति ॥

मृतं कंसक्रोधै, र्देवकीपुत्रषट्कं
गुरोः पुत्रं नष्टं, त्वानयत्कालधाम्नः।

कुलं दग्धं सर्वं, विप्रशापेन येन
प्रियो भक्तस्तस्मादुद्धवो रक्षितश्च ॥६॥

कंसक्रोधैः कोपोपेतकंसेनेत्यर्थः मृतं देवकीपुत्रषट्कं देवक्याः षट् पुत्रानिति बलेर्भवनात्, तु तथैव गुरोः सान्दीपिनेः पुत्रं नष्टं मृतं कालधाम्नो यमगृहात् यः श्रीदेवकीनन्दनः आनयत् । विप्रशापेन दुर्वासः प्रभृति ब्राह्मणानां शापेन शापनिमित्तेन परस्परविग्रहेण सर्वं यदुकुलं दग्धं मृतं, प्रियो भक्त उद्धवो येन श्रीयदुनन्दनेन तस्माच्छापात् रक्षितश्चेति ॥

पदार्थ--(कंसक्रोधैः) कंस के क्रोध से (मृतं) मरे हुए (देवकीपुत्रषट्कं) देवकी के ६ पुत्रों को बलिभवन से तथा (गुरोः नष्टं पुत्रं) गुरु के मरे पुत्र को (कालधाम्नः) यमराज के धाम से (आनयत्) श्रीकृष्ण ले आए। (विप्रशापेन) ब्राह्मणों के शाप से (सर्वं कुलं दग्धं) जब सारा यदुकुल नष्ट होगया तब (प्रियो भक्तः उद्धवः) प्यारे भक्त उद्धव[1] को (येन) श्रीकृष्णचन्द्र ने (तस्मात् ररक्ष) उस शाप से बचा लिया।

भावार्थ--अब श्रीश्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने गुरुजनों तथा दासों पर जो कृपा की उसे कहते हैं--

कंस के क्रोध से मारे हुए देवकी के ६ पुत्रों को पाताल में जाकर राजा बलि के भवन से स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ले आए और सांदीपनि गुरु के मरे पुत्र को गुरुपत्नी की आज्ञा से यमराज के भवन से स्वयं लाकर गुरु दक्षिणा भेंट दी। दुर्वासादि ब्राह्मणों के शाप से तथा यादवों के परस्पर युद्ध से जब सारा यदुवंश नष्ट हो गया तब भक्तवत्सल यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने अपने प्यारे भक्त उद्धव की उस शाप से रक्षा की, ऐसे परम कृपालु मुकुन्द भगवान् की कृपा का कौन वर्णन कर सकता है।

---

[1] देखिये श्रीगोपालविलास ताल २०।

इदानीं परमभक्ताया: करुणरसरत्नान्वितायाा द्रौपद्या दैन्य-हरणं कारुण्यमाह-कुरुणामिति ।

कुरूणामास्थान्यां, द्रौपदी दीनवक्त्रा,
पतीनां पार्श्वस्था, शत्रुणाकर्षिताङ्गी ।
रुरोदोच्चैः कष्टं, प्राप्य सस्मार कृष्णं
घृणी शीघ्रं तस्याश्चीरचक्रं चकार ।।७।।

कुरूणां दुर्योधनादिकौरवाणाम् आस्थान्यां सभायां द्रौपदी शत्रुणा दु:शासनेन आकर्षितम् अङ्गं यस्या: सा अतएव दीनवक्त्रा दीनमुखी सती पतीनां युधिष्ठिरादीनां पार्श्वे स्थिता पार्श्वस्थापि तैररक्षमाणा कष्टं प्राप्य उच्चैर्यथा स्यात्तथा रुरोद । हे प्राणनाथ ! हे दामोदर ! हे माधव ! हे मुकुन्द ! हे अर्जुनसखा ! हे शरणागतवत्सल ! हे यदुनन्दन ! हे दीनवन्धो ! हे करुणार्णव ! हे श्यामसुन्दर ! मामनाथां पाहीत्यादिना वहुधा सम्वोधयन्ती श्रीकृष्णं सस्मार च, तदा तस्या रोदनमाक्रन्दनं च शृण्वन् घृणी परमकृपालुर्भक्तदु:खासहिष्णू रमानाथ: स्वाङ्कस्थां रमारूपिणीं रुक्मिणीं हित्वा शीघ्रमेव तत्रा-गत्य वा तत्रैव स्थित: सङ्कल्पमात्रेण तस्या द्रौपद्या: चीरचक्रं वस्त्र समूहं चकार कृतवान् । तस्य कृपां वक्तुं क: शक्त इति ।।७।।

पदार्थ--(कुरूणां) कौरवों की (आस्थान्यां) सभा में (द्रौपदी) द्रौपदी (शत्रुणाकर्षिताङ्गी) शत्रु द्वारा अङ्ग (बाल) खेंचने पर (दीनवक्त्रा) दीनमुखी होकर (पतीनां पार्श्वस्था) पतियों के पास होने पर भी (कष्टं प्राप्य) बड़ा कष्ट पाकर (उच्चै: रुरोद) उच्चस्वर से रोने लगी (कृष्णं सस्मार) और दीनबन्धु श्यामसुन्दर को स्मरण किया । (घृणी शीघ्रं) दयालु श्रीकृष्णने शीघ्र ही (तस्या:) उस द्रौपदी के (चीरचक्रं चकार) चीर को वढ़ा दिया ।

भावार्थ--अव परम भक्ता करुणारस रूपी रत्न से युक्त, द्रौपदी

ने जब सभा में दुःशासन उसके चीर को खेंचने लगा तब संकट के समय श्यामसुन्दर को याद किया, उस कारुण्य कथा को कहते हैं--

दुर्योधनादि कौरवों की सभा में दुष्ट शत्रु दुःशासन जब द्रौपदी के बालों को पकड़ कर घसीटलाया और उसका चीर खेंचने लगा तब दीनमुखी वह द्रुपदपुत्री, युधिष्ठिर भीमादि अपने पांचों स्वामियों के पास बैठे रहने पर भी रक्षा का कोई उपाय न देखकर बड़ी विपत्ति में पड़ी हुई, उच्च स्वर से रोकर दीनबन्धु दीनानाथ प्रभु को पुकारने लगी–"हे प्राणनाथ! हे दामोदर! हे माधव! हे मुकुंद! हे अर्जुन के सखा! हे शरणागतवत्सल! हे यदुनन्दन! हे करुणा-सागर! हे श्यामसुन्दर! हे अनाथों के नाथ! मुझ अनाथिनी की रक्षा करो मैं तुम्हारी शरण हूँ" इस प्रकार विलाप करती हुई वह श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण को स्मरण करने लगी, तब उसके आर्तनाद, दुखी पुकार को सुनकर परमकृपालु, भक्तों के दुःख को न सह सकने वाले लक्ष्मीपति अपने अङ्क में स्थित लक्ष्मी रूपिणी श्री-रुक्मिणीजी को छोड़कर शीघ्र ही वहाँ पहुँचे और सङ्कल्प-मात्र से द्रौपदी के चीर को बढ़ा दिया। ऐसे भक्तवत्सल शरणागतरक्षक, परम दयालु प्रभु श्रीकृष्ण की असीम कृपा का कौन वर्णन कर सकता है।

न केवलं भ्रातृभार्य्यां त्रैलोक्यरमणीमणिं सर्वानुकम्पापवित्र-पात्रीमनुगृहीतवान् किन्त्वन्यसर्वसम्बन्धविधुरं जरठं भीषणाकारं विभीषणं भक्तवात्सल्येनैव रक्षितवानित्याह-दशास्येति ॥

दशास्येनाविद्धां, कुम्भकर्णानुजाय
ह्यमोघां तां शक्तिं, राघवः स्वीयदेहे।
दधाराग्रे स्थित्वा, भक्तदुःखासहिष्णु–
रभीतिर्दत्तास्मै, संस्मरन्पूर्ववाक्यम् ॥८॥

कुम्भकर्णस्यानुजः कुम्भकर्णानुजस्तस्मै विभीषणाय दशास्येन दशवदनेन रावणेन आविद्धां क्षिप्ताम् अमोघाम् अप्रतिक्रियां सार्थिकीं तां शक्तिं आयुधविशेषं भक्तदुःखासहिष्णुः स्वशरणागतदुःखासहनशीलो राघवो रघुवंशोद्भवः श्रीरामो विभीषणस्याग्रे स्थित्वा स्वीयदेहे दधार धृतवान्। किङ्कुर्वन्, ननु स्वात्मा सर्वस्मादधिकः सर्वप्रियः कथमपरार्थं स्वदेहे शक्तिं दधारेति चेद्धर्मधुरीणानां देहाद्वाक्यपालनमधिकप्रिय मित्याशयेनाह-अस्मै विभीषणाय मयाऽभीतिः अभयता दत्तेति पूर्ववाक्यं संस्मरन् (सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामीति व्रतं मम) इति रामायणे तद्वाक्यमिति ॥८॥

पदार्थ--(कुम्भकर्णानुजाय) विभीषण के लिए (दशास्येनाविद्धां) रावण द्वारा फैंकी हुई (अमोघां) निष्फल न जाने वाली, सार्थक (तां शक्ति) उस शक्ति को (भक्तदुःखासहिष्णुः) भक्तों के दुःखों को न सह सकने वाले (राघवः) श्रीरामने (अग्रे स्थित्वा) विभीषण के आगे होकर (स्वीयदेहे) अपने शरीर पर (दधार) धारण किया। (अस्मै) इस विभीषण के लिए (अभीतिः दत्ता) मैंने अभयदान दे दिया है (पूर्वं वाक्यम्) इस प्रकार अपने पहले वाक्य को (संस्मरन्) याद करके।

भावार्थ--आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र ने न केवल अपने भाई की पत्नी द्रौपदी पर, जो तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दरी थी, और सबकी अनुकम्पा की पात्री थी, कृपाकी, अपितु सारे सम्बन्धों से रहित, दीन, भीषण आकार वाले विभीषण की भी दीनबन्धु श्रीराम ने भक्तवत्सलता के कारण रक्षा की। इस विषय में कहते हैं—

कुम्भकर्ण के छोटे भाई विभीषण पर रावण द्वारा फैंकी हुई उस अमोघ शक्ति को अपने शरणागत भक्तों के दुःखों को न सह सकने

वाले रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण के आगे होकर अपने शरीर पर सहन किया।

अपना शरीर तो सब से अधिक प्यारा होता है फिर कैसे श्रीराम ने दूसरे के लिए अपने शरीर पर शक्ति को धारण किया ? इस शंका का उत्तर देते हैं--

धर्मधुरीण महापुरुषों को अपनी देह से अधिक प्यारे अपने वचन होते हैं--

"इस विभीषण को मैं अभयदान दे चुका हूँ" इन अपने पूर्व वाक्यों को स्मरण करके मैंने उस शक्ति को अपने शरीर पर सहन किया। क्योंकि "मैं तेरी शरण में आगया हूँ" इस प्रकार जो एक वार भी सच्चे मन से कह देता है, मैं उसे सब प्राणियों से अभय-दान दे देता हूँ, यह मेरा व्रत, प्रतिज्ञा है" ऐसे दयासागर श्रीराम की कृपा का कौन वर्णन कर सकता है।

ननु स्वप्रणपालनायापरं पातुं स्वदेहे शक्तिधारणेन किमित्याकाङ्क्षायामाह-सकृदिति--

सकृत्कारुण्यात्मा, यस्य गृह्णाति हस्तं
प्रभुस्तं गोपालः, पाति सर्वप्रकारैः।
वयं त्विच्छामोऽतः, सर्वदा सर्वभावैः
स्व सम्बन्धं तेन, प्राणनाथाच्युतेन ॥९॥

कारुण्यात्मा करुणामूर्तिः प्रभुः भक्तत्राता गोपालः श्रीकृष्णः सकृत् एकवारमपि यस्य हस्तं गृह्णाति तं सर्वप्रकारैः स्वदेह-पीडनाद्यनेकभेदैः पाति रक्षति।

यतः सर्वप्रकारैः पाति अत एव वयं तेन भक्तवत्सलेन प्राण-नाथाच्युतेन स्थिरस्वरूपेण श्रीकृष्णेन सर्वदा सर्वकालेषु सख्यदास्यादिभिः सर्वभावैः स्वसम्बन्धमिच्छाम इति ॥९॥

पदार्थ--(कारुण्यात्मा) करुणामूर्त्ति (प्रभुः गोपालः) भक्त त्राता श्रीकृष्ण (सकृत्) एक बार भी (यस्य हस्तं गृह्णाति) जिसके हाथ को पकड़ लेते हैं (तं सर्वप्रकारैः) उसकी सब प्रकार से (पाति) रक्षा करते हैं, (अतः वयं) इसलिए हम (तेन प्राणनाथाच्युतेन) उन भक्तवत्सल प्राणनाथ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण से (सर्वदा) सदा (सर्वभावैः) सब भावों से (स्वसम्बन्धं) अपना सम्बन्ध (इच्छामः) चाहते हैं।

भावार्थ--अपना प्रण पालन करने के लिए दूसरे की रक्षा करना तो उचित है पर अपनी देह पर शक्ति सहन करना यह कहाँ तक उचित है इस विषय में कहते हैं--

दया के अवतार भक्तों की निरन्तर रक्षा करने वाले प्रभु श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र एक बार भी जिसका हाथ पकड़ लेते हैं अर्थात् अपनी शरण में ले लेते हैं। उसकी सर्वप्रकार से, अपने शरीर पर कष्ट सह कर भी रक्षा करते हैं, इसीलिए हम उन भक्तवत्सल प्राणनाथ श्यामसुन्दर श्री कृष्ण के साथ सदैव सख्य दासादि समस्त भावों से अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं।

ननु सख्यदास्यादिषु भावेषु क उत्तम आश्रयणीय इत्याङ्क्षायां सर्वे उत्तमा इत्याशयेनाह-भवे धन्या इति--

भवे धन्यास्ते ये, भावमन्यत्र हित्वा
प्रभोः श्रीपत्पोतं, केन भावेन याताः।
भवाम्भोधेः पारं, यान्त्यनायासतस्ते,
शतोपायैरन्यैर्नैव मुक्तिं न भुक्तिम् ।।१०।।

भवे जगति ते जना धन्या ये भगवतोऽन्यत्र भावं प्रीतिं हित्वा त्यक्त्वा प्रभोः स्वामिनः श्रीकृष्णस्य श्रीपत्पोतं शोभनचरणनावं सख्यादिषु केन केनाप्येकेन भावेन याताः प्राप्तास्ते हि भवाम्भोधेः संसारसमुद्रस्य पारं परमात्मानं अनायासतः अपरिश्रमेण यान्ति

प्राप्नुवन्ति । भगवद्भक्तितोऽन्यैः शतोपायैस्तीर्थव्रतयोगयागाद्यनेकसाधनैर्नैव मुक्तिं न च भुक्तिं भोगं यान्ति प्राप्नुवन्ति । अतो विरक्तैः सरक्तैः सर्वैर्भगवद्भक्तिरेवाश्रयणीयेति भावः ॥१०॥

पदार्थ--(भवे) इस जगत् में (ते धन्याः) वे लोग धन्य हैं (ये अन्यत्र) जो भगवान् से अन्यत्र (भावं हित्वा) प्रीति को छोड़ कर (प्रभोः) स्वामी के (श्रीपत्पोतं) सुंदर चरण रूपी नौका को (केन भावेन) किसी एक भाव से (याताः) प्राप्त कर लेते हैं। (ते) वे जन (भवाम्भोधेः पारं) संसार रूपी समुद्र के पार (अनायासतः) विना परिश्रम के (यांति) पहुँच जाते हैं। (अन्यैः) भगवद्-भक्ति से रहित लोग (शतोपायैः) सैकड़ों उपायों से (नैव मुक्तिं न च भुक्तिं) न तो मुक्ति को प्राप्त कर पाते हैं और न भोगों को ही पा सकते हैं।

भावार्थ—सख्य दास्यादि भावों में कौन सा उत्तम है जिसका आश्रय लेना चाहिए, इस आकाङ्क्षा में, सारे ही भाव उत्तम हैं, इस आशय से कहते हैं--

इस संसार में वे मनुष्य धन्य हैं, उनका जन्म सफल है जो उस दयालु प्रभु से अन्यत्र प्रीति को छोड़ कर परम दयालु श्यामसुंदर श्रीकृष्ण के सुंदर चरण रूपी नौका को सख्य दास्यादि किसी न किसी एक भाव द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। वे ही लोग इस संसार रूपी समुद्र के पार को, परमात्मा को, बिना परिश्रम के ही प्राप्त कर लेते हैं। अतः भगवद्भक्ति से अन्य तीर्थ, व्रत, योग यागादि सैकड़ों साधनों से साधकजन न मुक्ति को और न ही भोगों को पा सकते हैं। इसलिए विरक्त हो या गृहस्थ सबको प्रभु-भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

इति चञ्चरीक-रत्न-दशकम् ।

अथोपजाति-रत्न-दशकम्

स एवं विधः कृपालुर्भगवान् (पुरुषः स परः पार्थः भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया) इति वचनाद्भक्तचा प्राप्यते सा, ध्येये चित्त-वृत्त्येकतानता भक्तिर्विषयवासनावासितचञ्चलचित्ते नानाजन-संसर्गदूषिते विविक्तवासविषयवैतृष्ण्यपरवैराग्यमन्तरेण नैवो-त्पद्यते एतदभिप्रायेण (यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्) य० क० उ० (मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः) इत्यादि श्रुतिस्मृतिषु निश्चलमनो मोक्षकारणमीरितमत इदानीं तदर्थं मनोमुग्धबालमिव प्रबोधयति मदीयशिक्षामिति दशकेन—

मदीयशिक्षां शृणु मोक्ष मूलां,
हित्वा सखे ग्रामपुरी निवासम्।
कामावहं रागविरोधहेतुं
संसर्गदं मानुषकामिनीनाम् ॥१॥

भागीरथीतीरवने निवासं
विधाय भव्यं जनताघनाशम्।
श्रीकृष्णकृष्णेति जपाङ्ग नित्यं
प्रेम्णा प्रफुल्लाननहृत्सरोजः ॥२॥

भो सखे! मोक्षमूलां मोक्षकारणभूतां मदीयशिक्षां शृणु। कामावहं विषयेच्छोत्पादकं रागविरोधहेतुं, जनेष्वासक्तिवैरकारणं, मानुषकामिनीनां विषयिपुरुषकामासक्तस्त्रीणां, संसर्गदं सम्बन्ध-दायिनं, ग्रामेषु पुरीषु नगरेषु च निवासो ग्रामपुरोनिवासस्तं ग्रामपुरी निवासं हित्वा त्यक्त्वा। भागीरथीतीरवने श्रीजाह्नवी गङ्गातटे यद्वनं तत्र निवासं विधाय कृत्वा हे अङ्ग! प्रेम्णा प्रफुल्लानन हृत्सरोजो विकसित मुखकमलहृदयारविंदः सन्, भव्यं कल्याणकरं, जनताघनाशं

जनता जनसमूहस्तस्या अघानां पापानां नाशकं, श्रीकृष्णकृष्णेति भगवन्नाम नित्यं जपेति द्वयोरन्वय : । भव्यं जनताघनाशमिति पदद्वयं निवास विशेषणं वा ॥१-२॥

पदार्थ––(सखे) हे मित्र ! (मोक्ष मूलां) मोक्ष की कारणभूत (मदीय शिक्षां) मेरी शिक्षा को (शृणु) सुनो । (कामावहं) कामेच्छा उत्पादक (राग विरागहेतुं) राग और द्वेष का कारण (मानुषकामिनीनां) कामी पुरुष और कामासक्त स्त्रियों के (संसर्गदं) सम्बन्ध देने वाले (ग्रामपुरीनिवासं) ग्राम और नगर के निवास को (हित्वा) त्याग कर (भागीरथीतीरवने) श्रीगङ्गाजी के तट पर वन में (निवासं) निवास (विधाय) करके (अङ्ग) हे अङ्ग ! (प्रेम्णा) प्रेम से (प्रफुल्लाननहृत्सरोजः) प्रफुल्ल मुख और प्रसन्न हृदय रूपी कमल से (भव्यं) कल्याणकर (जनताघनाशं) जनता के पाप को नाश करने वाले (श्रीकृष्णकृष्णेति जप) श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण इस प्रकार भगन्नाम को तू नित्य जप ॥

भावार्थ––वे ऐसे कृपालु पतितपावन भगवान् श्रीकृष्ण हैं । "हे अर्जुन ! मैं अनन्य भक्ति से प्राप्त होता हूँ" इस गीता के वचनों से वे दयालु प्रभु भक्ति से प्राप्त होते हैं । उस ध्येय में, प्रभु में चित्तवृत्ति को एकाग्र कर के लगाना ही भक्ति है । वह भक्ति अनेक प्रकार के जनों से दूषित, विषय वासनाओं से लिप्त चित्त में, एकान्तवास, विषय तथा तृष्णा से रहित वैराग्य के बिना नहीं उत्पन्न होती । इस अभिप्राय से "जब मन के साथ २ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी वश में हो जाती हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, बस उसे ही परमगति कहते हैं" "मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है" इत्यादि श्रुतिस्मृति वाक्यों में निश्चल मन ही मोक्ष का कारण बताया है । इसलिए अब उस मन को मुग्ध बालक की तरह समझाते हैं––

अरे भोले मन ! मोक्ष प्रदान करने वाली मेरी सुन्दर शिक्षा को

तू ध्यान से सुन ! विषय वासना को उत्पन्न करने वाले, राग और द्वेष के कारण, अर्थात् लोगों में आसक्ति और वैर के कारण, विषयी पुरुष और कामासक्त स्त्रियों के संसर्ग देने वाले, ग्रामों और नगरों के वास को छोड़ कर पतित-पावनी श्रीभागीरथी के पवित्र तट पर किसी वन में, कुटी बनाकर निवास कर। हे प्यारे मन ! कमल समान मुख और प्रसन्न हृदयरूपी अरविन्द को विकसित करके, कल्याण के देने वाले पतित जनों के पापों को नाश करने वाले "श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! !" इस प्रकार भगवान् श्यामसुन्दर के नाम का प्रेम से रातदिन तू जप कर।

ननु तत्राहारमन्तरेण कथं निवसामीत्याकाङ्क्षायामाह गाङ्गमिति ॥

गाङ्गं कबन्धं पिब पावनं भो !
भुक्त्वा फलान्नं यदुदेवदत्तम् ।
त्वदीय एवं जनिमृत्युबन्धो,
नङ्क्ष्यत्यनायासतया प्ररूढः ॥३॥

यदुदेवेन भगवता दत्तं यदुदेवदत्तं फलान्नं फलरूपमन्नं वा फलानि चान्नं च फलान्नं भुक्त्वा भक्षयित्वा भो प्रिय ! पावनं पवित्रं गाङ्गं कबन्धं गङ्गाजलं पिब। एवम् उक्त प्रकारेण रूढो दृढः त्वदीयस्तावको जनिमृत्युबन्धो जन्ममरणबन्धनम् अनायासतया अप्रयत्नेनैव नङ्क्ष्यतीति ॥३॥

पदार्थ—(यदुदेवेन दत्ताम्) भगवान् के दिये हुये (फलान्नं) फल और अन्न को (भुक्त्वा) खाकर (भो प्रिय) हे प्यारे मन ! (पावनं) पवित्र (गाङ्गं कबन्धं) श्री गङ्गाजी के जल को (पिब) पी। (एवं) इस प्रकार से (प्ररूढः) दृढ (त्वदीयः) तुम्हारा (जनिमृत्युबन्धः) जन्म मरण का बन्धन (अनायासतया) बिना प्रयत्न के ही (नङ्क्ष्यति) नष्ट हो जायेगा।

भावार्थ--वहाँ श्रीगङ्गाजी के तट पर एकान्तवन में बिना आहार के मैं कैसे जीवन को रख सकूँगा इस आकाङ्क्षा में कहते हैं--

हे प्यारे मन ! भगवान् के दिये हुये फल रूप अन्न को या फल और अन्न को खाकर पतित-पावनी श्री गङ्गाजी के अमृत समान पवित्र जल को तू पी। इस प्रकार से तुम्हारा जीवनमरण का दृढ बन्धन बिना प्रयत्न के, सुगमता से स्वतः ही नष्ट हो जायेगा।

ननु (प्रसङ्गमजरंपाशमात्मनः कवयो विदुः। स एव साधुपु कृतो मोक्षद्वारमपावृत्तम्) इत्यादिना सत्सङ्गमहिमा निरूपित स्तत्र तदभावात्कथं बन्धहानिरिति चेत्तत्राह दुःसंगेति--

दुस्सङ्गसत्सङ्गमपि त्यजाशु
हैमायसौ द्वौ निगडौ समानौ।
अन्धो भवास्माद्बधिरो भवास्मा-
दनिङ्ग मौनी जडमूक तुल्यः ॥४॥

दुःसंगश्च सत्संगश्च दुःसंगसत्संगस्तं दुर्जनसंगं च साधुसंगमपि आशु शीघ्रं त्यज। ननु सत्संगः कथं हेय इति चेद्बन्धहेतुत्वादि-त्याह-यथा हैमायसौ सुवर्णलोहरचितौ निगडौ शृङ्खलौ द्वौ बन्धने समानौ एवं सत्संग दुःसंगावपि। अयं भावो यावच्छ्रवणं सत्संगः सेव्यः तदनन्तरं मननंनिदिध्यासनार्थं सोपि त्याज्यस्तत्र तयोः सिद्ध्यभावादेतदभिप्रायेणावधूतेन प्रोक्तम्--(वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्त्ताद्वियो रपि। एक एव चरेत्तास्मात्कुमार्या इव कङ्कणः) भा० स्कं० ११। अतः अस्मात् लोकदर्शनात्, अन्धो भव पश्यन्नपि न पश्य तथा च अस्माज्जनवार्त्ताश्रवणाद् बधिरो भव शृण्वन्नपि न शृणु। अनिङ्गमौनी कराद्यचेष्ट मौनी भव तदेवाह जडमूकतुल्यो भवेति।४।

पदार्थ--(दुस्संगसत्संगमपि) बुरी संगति और अच्छी संगति

को भी (आशु) शीघ्र (त्यज) तू छोड़। (हैमायसौ) सोने और लोहे की बनी हुई (निगडौ) शृङ्खला, जञ्जीर (द्वौ समानौ) दोनों ही बाँधने में समान हैं। इसलिए (अस्मात्) इस लोक दर्शन से (अन्धो भव) अन्धा हो जा, किसी को न देख, (अस्मात्) और लोगों की वार्ता श्रवण से (बधिरो भव) बहरा हो जा, किसी की न सुन। (अनिङ्ग मौनी) करादि की चेष्टा से रहित, मौनी हो जा (जड़मूकतुल्यः) जड़ और मूक के समान हो जा।

भावार्थ--हे प्यारे मन! तू दुर्जनों का संग और सज्जनों का संग दोनों को ही शीघ्र छोड़।

क्या सत्संग भी छोड़ देना चाहिये? हाँ, वह भी बन्धन का कारण है। जैसे-शृङ्खला, जंजीर चाहे सुवर्ण की हो चाहे लोहे की, बाँधने में दोनों ही समान हैं, इसी प्रकार सत्संग और दुःसंग दोनों ही बन्धन के कारण हैं। भाव यह है कि जब तक सुनना हो, सत्संग सेवन करे, इसके पश्चात् मनन और निदिध्यासन के लिए उसे भी त्याग दे, क्योंकि उन दोनों से भी सिद्धि नहीं होती, इसी अभिप्राय से श्री अवधूतजी ने श्रीमद्भागवत में कहा है--"बहुतों के साथ रहने से कलह होता है, दो के साथ रहने से वार्ता होती है, अतः साधक को एकाकी ही विचरण करना चाहिये। जैसे-कुमारी के हाथ में कङ्कण एक बार ही बँधता है"। भा० स्कं० ११। इसलिए हे मन! तू इस लोकदर्शन से अन्धा हो जा अर्थात् संसार की वस्तुओं को तू देखता हुआ भी न देख, और लोगों की वार्ता सुनने से बहरा हो जा, अर्थात् लोगों की वार्त्ता सुनता हुआ भी तू न सुन, तथा कर आदि अंगों की चेष्टा से रहित, मौनी हो जा, जड मूक तुल्य हो जा। तू सांसारिक वासनाओं से पराङ्मुख होकर भगवान् के सम्मुख जा, प्रभु श्यामसुन्दर की शरण में जा, वे प्रभु तेरा कल्याण करेंगे।

नन्वीदृशीवृत्तिर्द्वित्रिदिनानि भवतु नतु यावज्जीवनमिति चेत्तत्राह कियद्दिनमिति--

कियद्दिनं ते भुवि जीवनं स्या-
दुन्मील्य किं पश्यसि न स्वनेत्रे ।
तातालसो मा भव मुक्तिकाले
गोविन्ददत्तं विषयेषु देहम् ।।५।।

मा दुर्लभं योजय मानवेन्द्रं
विद्ध्यङ्ग रोगान् भवभोगपूगान् ।
बिभेषि किं त्वं भजनान्मुरारेः
कथं सखे ध्यायसि नो मुकुन्दम् ।।६।।

भो तात ! भुवि ते जीवनं कियद्दिनं स्यात् अद्य वा श्वो वा मरणं न ज्ञायते । स्वनेत्रे उन्मील्य प्रसार्य्य कनिष्ठान् वयस्यान् ज्येष्ठांश्च मृतान् किन्न पश्यसि । मुक्तिकाले अस्मिन् समये अलसो मा भव, किन्तूद्यमं कुरु, गोविन्ददत्तं दुर्लभं मानवेन्द्रं मनुष्येषूत्तमं द्विजातिदेहं विषयेषु मा योजयेति द्वयोरन्वयः ।।

भो अंग ! भवभोगपूगान् संसारसुखसमूहान् रोगान् विद्धि रोगवद्दुःखदायिनो जानीहि । भो सखे ! मुरारेः श्रीकृष्णस्य भजनात् किं त्वं बिभेषि ? नन्वहं न बिभेमीतिचेद् यदि न बिभेषि तर्हि मुकुन्दं श्रीकृष्णं कथं न ध्यायसीति ।।५-६।।

पदार्थ--(भोतात) हे भाई मन ! (भुवि) इस संसार में (ते जीवनं) तेरा जीवन (कियद्दिनं स्यात्) कितने दिन का है । (स्वनेत्रे) अपनी आँखों को खोल कर (किं न पश्यसि) क्यों नहीं देखता । (मुक्तिकाले) इस मुक्ति के समय में (अलसो मा भव) तू आलसी मत बन । (गोविन्ददत्तं) भगवान् से दिये हुये (दुर्लभं मानवेन्द्रं) इस दुर्लभ मानव शरीर को (विषयेषु मा योजय) विषयों

में तू मत लगा। (भो अंग) हे प्यारे, (भवभोगपूगान्) सांसारिक सुखों को (रोगान् विद्धि) तू रोग सदृश जान। (भो सखे) हे मित्र! (मुरारेः भजनात्) श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के भजन से (किं त्वं विभेषि) क्या तू डरता है? (मुकुन्दं) श्रीकृष्ण का (कथं न ध्यायसि) तू ध्यान क्यों नहीं करता?

भावार्थ--ऐसी वृत्ति तो दो चार दिन ही रह सकती है, जीवन पर्य्यन्त नहीं, इस विषय में कहते हैं--

हे प्यारे मन! इस असार संसार में तेरा जीवन कितने दिन का है? आज या कल मृत्यु अवश्य होगी, यह सब कुछ क्या तू नहीं जानता, या जान कर भी तू नहीं देखता, तू अपने नेत्रों को खोल कर देख। क्या तू अपनी आँखों के सामने छोटों और बड़ों को, राजा और रङ्कों को मरता हुआ नहीं देखता? इसलिए इस मुक्ति प्राप्त करने के समय में तू आलस्य मत कर, किन्तु मुक्ति-प्राप्ति के लिए निरन्तर उद्यम करता जा। उस परम कृपालु गोविन्द से दयापूर्वक दिये हुये इस परम दुर्लभ मनुष्यों में उत्तम द्विजाति देह को विषयों में तू मत लगा।

हे अंग! संसार के सुखों को तू रोगों के समान दुःख देने वाले जान। हे सखे! क्या तू परम दयालु श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्र के भजन करने से डरता है? यदि नहीं डरता तो फिर आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचंद्र का ध्यान, भजन क्यों नहीं करता?

ननु क्वचित् क्वचिद् ध्यायामीति चेत्क्वचित्क्वचिद् ध्यानेन किं निरंतरं ध्यायेत्याशयेनाह-मुधामन इति--

मुधा मनः किं नयसीह घस्रान्,
पाण्डित्यता मानमदा महत्त्वम्।
अन्ते सहाया न भवन्ति साधो
चातुर्यतां मुञ्च तथात्ममौढ्यम् ॥७॥

भो मनः इह लौकिक व्यवहारे किं मुधा घस्रान् दिवसान् नयसि प्रापयसि नाशयसीत्यर्थः। भो साधो यत्र संलग्नस्त्वं न ध्यायसि ते पण्डित्यता विद्याप्रगल्भता मानो राजादिसत्कारोद्भवाचित्तसमुन्नतिः मदो द्रव्यादिप्राप्तिनिमित्तो गर्वः, महत्वं वर्णायुरादिभिर्वृहत्त्वम्, एते अन्ते मरणकाले सहाया रक्षका न भवन्ति। अतश्चातुर्यतां लौकिक-व्यवहारे निपुणतां तथा च आत्ममौढ्यम् आत्मनोऽज्ञतां मुञ्च त्यजेति ॥७॥

पदार्थ--(भो मनः) हे मन ! (इह) इस लौकिक व्यवहार में (किं मुधा) क्यों व्यर्थ (घस्रान् नयसि) दिनों को नष्ट करता है। (भो साधो) हे साधु ! (पाण्डित्यता मानमदामहत्त्वम्) तेरी पण्डिताई, मान, मद और महत्व ये सब (अन्ते) मरण समय में (सहाया न भवन्ति) सहायक नहीं होंगे इसलिये (चातुर्यतां) चतुराई को (आत्ममौढ्यम्) और अपनी अज्ञता को तू (मुञ्च) छोड़।

भावार्थ--मन कहता है-- मैं कभी-कभी प्रभु का ध्यान करलेता हूँ ! इसके उत्तर में कहते हैं-- कभी-कभी ध्यान करने से क्या वनता है, तू उस प्रभु का निरन्तर ध्यान कर, इस विषय में विशेष कहते हैं--

रे मन ! इस लौकिक व्यवहार में फँसकर व्यर्थ दिनों को क्यों नष्ट कर रहा है, क्यों अपनी अमूल्य आयु को व्यर्थ खो रहा है ? हे साधु मन ! सांसारिक कार्यों में मस्त हुआ तू प्रभु का ध्यान, भजन क्यों नहीं करता ? विद्या में तेरी प्रगल्भता राजसभादि में सत्कार द्वारा उन्नति, द्रव्यादि-प्राप्ति से घमण्ड, वर्ण आयु आदि का वडप्पन ये सब मरण काल में तेरे सहायक नहीं होंगे, इसलिए सांसारिक व्यवहार की निपुणता तथा अपने अज्ञान जनित अहङ्कार को छोड़ कर तू प्रभु श्यामसुन्दर का निरन्तर भजन कर। इसीसे तेरा कल्याण होगा।

एवं दानसामभ्यां बहुधा बोधनेनाप्यश्रुतप्रायं स्तब्धं प्रति भर्त्संयन् बोधयति मित्रेति--

मित्र प्रमत्तः कथमत्र शेषे,
गोपालपादे न करोषि भक्तिम् ।
विच्मुच्यते तात यया भवाग्ने-
गृह्णासि शिक्षां न च शिक्षितोद्य ।।८।।

भो मित्र ! प्रमत्तः सन् अत्र भक्तिमार्गे कथं शेषे, यतो गोपालपादे भक्ति सेवां न करोषि । हे तात ! यया भक्त्या भवाग्नेः जन्ममरण-रूपवह्नेर्जनो मुच्यते । शिक्षितो बोधितोपि अद्य इदानीं चेत् शिक्षां न गृह्णासि तर्हि विग्रहान्ते रोदिष्यसीत्युत्तरेणान्वयः ।।८।।

पदार्थ--(भो मित्र) हे मित्र ! (प्रमत्तः) मतवाला होकर (अत्र) इस भक्ति-मार्ग में (कथं शेषे) तुम कैसे सो रहे हो । (गोपालपादे) श्री नंदनंदन गोपाल के चरण कमल की (भक्तिं न करोषि) भक्ति क्यों नहीं करते । (भो तात) हे भाई (यया) जिस भक्ति से (भवाग्नेः) संसाररूपी अग्नि से (विमुच्यते) प्राणी छूट जाता है । (शिक्षितोपि) समझाने पर भी (अद्य) आज यदि (शिक्षां न गृह्णासि) तू शिक्षा को ग्रहण नहीं करता तो अंतकाल में पछतायेगा ।

भावार्थ--इस प्रकार दाम-साम द्वारा अनेक बार समझाने पर भी यह ढीठ मन जब नहीं समझता तो अब उसे झिड़कते हुये समझाते हैं--

हे मित्र मन ! इस भक्ति-मार्ग से प्रमत्त (लापर्वाह) होकर तू कैसे सो रहा है, और आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के कमल-कोमल चरणों की भक्ति क्यों नहीं करता ? हे तात ! इस भक्ति के द्वारा प्राणी जन्ममरण रूप संसार की अग्नि से छूट जाता है ।

इस प्रकार बराबर समझाने पर भी आज यदि तू हमारी शिक्षा को ग्रहण नहीं करता तो तू अंतकाल में पछतायेगा और रोयेगा।

भर्त्सनेनाप्यसम्बुद्धसमुन्नद्धमदं धृष्टं दण्डभेदाभ्यां प्रबोधयति भो वत्सेति युग्मेन--

भो वत्स रोदिष्यसि विग्रहान्ते,
प्रियान् भवे पश्यसि यान् स्वकीयान्।
ते शत्रवः स्वार्थरतास्त्वदीया-
स्तेषां सुहृत्त्वं ननु नाममात्रम् ॥९॥

मृतेतु नो पृच्छति कोपि वार्त्तां
विश्रम्भितः कुत्र चरस्यभीतः।
अन्यं ह्युपायं भववार्द्धिमोक्षे
जाने न गोविन्दरतिं विनाहम् ॥१०॥

भो वत्स विग्रहान्ते काले रोदिष्यसि कथं न मया भगवानाराधितः, कथं न पथ्यं गुरूणां वचनं श्रुतं किमहं साधुनाकरवं किमहं पापमकरवमित्यादि पश्चात्तापं करिष्यसि, भवे लोके यान् स्वकीयान् पुत्रादीन् प्रियान् प्रेमास्पदान् पश्यसि ते पुत्रादयः स्वार्थरताः स्वप्रयोजनपराः अतस्त्वदीयाः शत्रवः। ननु ते तु सुहृदः कीर्तिताः कथं शत्रव इति चेत्तत्राह-तेषां पुत्रादीनां सुहृत्वं सख्यं ननु निश्चयेन नाममात्रं सुहृद इति नाममात्रेणोच्यन्ते नतु तेषु सुहृत्वमित्यर्थः ॥ यतो जीवितस्य सर्वे अतो मृते तु कोपि कश्चिदपि पुत्रादि प्रियो बन्धुरपि वार्त्तां कुशलप्रश्नं नो पृच्छत्यन्यस्यतु का कथा। कुत्र कस्मिन्पुत्रादौ विश्रम्भितो वार्द्धके सेवां मृते श्राद्धं करिष्यन्तीति विश्वासं प्राप्तः, अभीतो निर्भयः सन् लोके चरसि गच्छसि। ननु कथं ममोद्धारो भवेदिति जिज्ञासायामाह-गोविंदरतिं भगवत्यनुरागं विना भववार्द्धिमोक्षे संसारसमुद्रान्मुक्तौ हि निश्चितं अन्यं उपायं अहं

नैव जाने संसारोद्धारार्थमपरान्पुत्रादीन् हित्वा भगवच्छरणं याही-त्यर्थः ॥९-१०॥

पदार्थ--(भो वत्स) हे वत्स ! (विग्रहान्ते) शरीरान्त समय में (रोदिष्यसि) तू रोयेगा। (भवे) संसार में (यान् स्वकीयान्) जिन अपने (प्रियान्) प्यारों को (पश्यसि) तू देखता है, (ते स्वार्थ रताः) वे सब स्वार्थी हैं, (त्वदीयाः शत्रवः) वे तेरे शत्रु हैं। (तेषां) उन पुत्र मित्रादिकों का (सुहृत्वं) प्रेम (ननु नाममात्रम्) निश्चितरूप से नाम मात्र है। (मृते तु) क्योंकि मरने पर (कोऽपि वार्त्तां) पुत्र मित्र कोई भी बात (न पृच्छति) नहीं पूछता। (कुत्र विश्रम्भितः) फिर कहाँ पुत्र मित्रादि में विश्वास करके (अभीतः चरसि) तू निर्भय फिरता है। (गोविंदरतिं विना) गोविंद में अनुराग के विना (भववार्द्धिमोक्षे) संसार रूपी समुद्र में (हि अन्यं उपायं) निश्चय रूप से अन्य उपाय (अहं न जाने) मैं नहीं जानता।

भावार्थ--अनेक प्रकार से समझाने और झिड़कने पर भी जब यह मन नहीं मानता तो इस मदोन्मत्त मनको दण्ड और भेद द्वारा समझाते हैं—

हे वत्स मन ! तू अंत समय में, मृत्युकाल में पछतायेगा और रोयेगा "मैंने इस दुर्लभ नर शरीर को पाकर प्रभु श्यामसुंदर का आराधन क्यों नहीं किया ? गुरुजनों के हितकारी वचनामृत मैंने ध्यान से क्यों नहीं सुने ? इस जीवन में नरतन पाकर मैंने क्या २ अच्छे काम किये और क्या २ पाप किये ?" इस प्रकार याद कर कर के तू पश्चाताप करेगा। फिर इस लोक में जिन पुत्रकलत्रादि को तू बहुत प्रेमास्पद समझता है ये सब अपने स्वार्थ-सिद्धि में लगे हुये हैं। इसलिए ये सब स्वार्थी तेरे शत्रु हैं। इन पुत्र मित्रादि का सौहार्द (सख्यभाव) निश्चयरूप से नाममात्र है, वस्तुतस्तु ये सब

सुहृद नहीं हैं। क्योंकि जीवित के तो सारे मित्र हैं, मरने पर कोई भी पुत्रमित्रादि प्रियजन बात नहीं पूछता। क्या किसी पुत्रादि में, "बुढापे में यह मेरी सेवा करेगा या मरने पर मेरे श्राद्धादि कर्म करेगा" तूने विश्वास कर लिया है? जो तू निर्भय होकर संसार में घूम फिर रहा है?

"तो फिर मेरा उद्धार कैसे होगा?" इस जिज्ञासा में कहते हैं– श्यामसुंदर श्रीकृष्णचंद्र के पाद-पद्म में अनुराग के विना, प्रभु की शरण में जाये विना, इस संसाररूपी अगाध समुद्र से मुक्त होने का निश्चय रूप से, मैं तो और कोई दूसरा उपाय नहीं जानता, इसलिए इस संसार से उद्धार के लिए पुत्रादि का मोह छोड़कर तू दयालु प्रभु की शरण में आजा, तभी तेरा कल्याण होगा।

इत्युपजाति-रत्न-दशकम्।

अथ वसन्ततिलका-रत्न-दशकम्

इदानीं (चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्) इत्यर्जुनवचनान्मन उन्मत्त-मतङ्गजं जेतुमशक्तः स्वयं कुवलयापीडप्राणापहरं नृसिंहावतारं श्रीहरिं प्रार्थयितुं तावत्तस्य दुष्टतां निवेदयति-दुष्टमिति सार्द्ध-पञ्चभिः ॥

दुष्टं हरे मम मनो विषयानुरक्तं
नो ध्यायतीशचरणं च भवं प्रयाति।
गोविन्द मूढमिदमिच्छति भूपभोगा-
न्मां कृष्ण कर्त्तुमनुगामिनमेव पापम् ॥१॥

हे हरे! मम मनो दुष्टं यतो विषयानुरक्तं विषयासक्तम् अत ईशचरणं परमेश्वरस्य तव पादपद्मं नो ध्यायति प्रत्युत भवं नाना-दृश्यानात्मजालं याति। हे गोविन्द च पुनर्मूढं स्वहितानुसन्धानापेतं इदं मनो भूपभोगान् नृपाणां कौशेयाम्बरादिप्राप्तिसुखानीच्छति। हे कृष्ण! पापं इदं मनश्च माम् भवद्दासं अनुगामिनं स्वानुचरं निजानुसारिणमिति यावत् कर्त्तुमिच्छत्येवेति ॥१॥

पदार्थ–(हे हरे) हे पापों के हरने वाले प्रभो! (मम मनो दुष्टं) मेरा यह मन बड़ा दुष्ट है, यह (विषयानुरक्तं) विषयों में आसक्त है। इसलिए (ईश्वरचरणं) परमेश्वर के पाद-पद्म का ध्यान नहीं करता। (भवं प्रयाति) प्रत्युत संसार की ओर भागता है। (गोविंद) हे गोविद! (मूढम् इदम्) यह मेरा मूर्ख मन (भूपभोगान् इच्छति) राजाओं के समान भोग चाहता है। (कृष्ण) हे भगवान् कृष्ण! (पापं) यह पापीमन (माम् अनुगामिनम्) मुझे अपना अनु-चर बनाना चाहता है।

भावार्थ—"हे कृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथनशील, बल-

वान और दृढ है, इसको वश में करना वायु की तरह वड़ा कठिन है" इस अर्जुन के वचन से यह मन उन्मत्त गजराज के समान बलशाली है। मैं स्वयं इसके जीतने में असमर्थ हूँ। इसलिए कुवलयापीड हाथी के प्राणों को हरने वाले, तथा नृसिंह अवतार धारण करने वाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण से प्रार्थना के लिए पहले इस मन की दुष्टता का वर्णन करते हैं--

हे दीनरक्षक भगवन् ! "मेरा यह मन वड़ा दुष्ट है" हर समय विषयों में आसक्त रहता है और आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के पाद-पद्मों का ध्यान नहीं करता, अपितु संसार के नाना दृश्यरूप जाल की ओर भागता है, फिर यह ऐसा मूढ है कि राजाओं के समान भोग-विलास, हाथी घोड़े आदि को पाने की इच्छा करता है। हे प्राण-प्रिय श्यामसुन्दर ! मेरा यह पापी मन, मुझे अपना अनुगामी, सेवक वनाना चाहता है।

ननु तस्यानुसरणे तव का क्षतिर्महादुःखमित्याह-एकान्त वास-मिति--

एकान्तवासमथ ते स्मरणं विहाय
वस्तुं प्रभो भवन ऋच्छति चञ्चलेनः।
कर्माणि जन्ममृतिदुःखफलानि भूमन्
कायेन कारयति तत्कुरुते स्वयं च ।।२।।

हे प्रभो, चञ्चलेनः चञ्चलानाम् इनः स्वामी चपलनायक-स्तन्मनः पर्णकुटी गुहादा एकान्तवासम् अथ च तेतव स्मरणं विहाय-त्यक्त्वा भवने वस्तुम् ऋच्छति गच्छति। भो भूमन्। जन्ममरण-दुःखान्येव फलानि येषां तानि जन्ममृतिदुःखफलानि कर्माणि कायेन प्रयोज्यकर्त्रा कारयति स्वयमपि कुरुते चेति ।।२।।

पदार्थ--(हे प्रभो) हे भगवन् (चञ्चलेनः) चञ्चलों का स्वामी यह मन (एकान्तवासम्) एकान्तवास को (अथतेस्मरणं)

ग्रौर ग्रापके स्मरण को (विहाय) छोड़कर (भवने) भवन में, घर में (वस्तुम्) वस्तुग्रों की ग्रोर (ऋच्छति) जाता है। (भो भूमन्) हे प्रभो (जन्ममृतिदुःखफलानि कर्म्माणि) जन्म ग्रौर मरण के दुःखरूपी फल रूप कर्मों को (कायेन) इस शरीर से (कारयति) करवाता है (च स्वयं कुरुते) ग्रौर ग्राप भी करता है।

भावार्थ--यदि मन तुम्हें ग्रपना ग्रनुचर बनाना चाहता है तो इसमें तुम्हारी क्या हानि है? कौनसा बड़ा दुःख है? इस विषय में कहते हैं-हे पतितपावन प्रभो! यह मेरा मन चञ्चलों का नेता, सरदार है, यह पतितपावनी श्री भागीरथी के तट को, पर्णकुटी तथा गिरिगुहा ग्रादि एकान्तवास स्थानों को ग्रौर ग्रापके पाद-पद्मों के स्मरण को त्याग कर बड़े २ महल ग्रौर वहां की ग्राकर्षक वस्तुग्रों की ग्रोर उन्मत्त की तरह भागता है। हे भूमन्! यह मन जन्ममरण के दुःखरूपी फल रूप कर्मों को इस शरीर से करवाता है ग्रौर स्वयं भी करता है। यह मन ग्रहर्निश बहिर्मुखता की ग्रोर तो जाता है, ग्रन्तर्मुखता की ग्रोर नहीं जाता।

ननु कथन्न तच्छिक्षसे तत्राह-शिक्षां शृणोतिति--

शिक्षां शृणोति न मनो बहुशिक्षितं मे
तत्प्रत्युतोज्भितभयं प्रकरोति धार्ष्ट्यम्।
स्वच्छन्दतार्थमनिशं बहुधा स्वमायां
धूर्त्तं विभो सृजति मे परिमोहनाय ॥३॥

हे विभो! मे मया बहुशिक्षितमपि मनः शिक्षां न शृणोति प्रत्युत उज्भितं त्यक्तं भयं येन तदुज्भितभयं सन् तद्धूर्त्तं मनो धार्ष्ट्यं हितोपतेशंश्रुत्वापि तद्विपरीतं यः कुरुते स धृष्टस्तस्य कर्म धार्ष्ट्यं प्रकर्षेण करोति। तदेवाह-स्वच्छन्दतार्थं निजस्वातन्त्र्यार्थं मे मम परिमोहनाय च त्वत्तो विमुखी करणाय ग्रनिशं निरन्तरं बहुधा बहुप्रकारेण वा बहुप्रकारां स्वमायां सृजति रचयतीति ॥३॥

पदार्थ--(हे विभो) हे सर्वव्यापक भगवन्! (मे बहुशिक्षितं) मेरे द्वारा बहुत शिक्षा देने पर भी यह मन (शिक्षां न शृणोति) मेरी शिक्षा को नहीं सुनता, (प्रत्युत उज्झितभयं) अपितु भय त्यागकर (धार्ष्ट्यं करोति) धृष्टता करता है। (स्वच्छन्दतार्थं) अपनी स्वतन्त्रता के लिए (मे परिमोहनाय) और मुझे मोह में डालने के लिए (अनिशं) रातदिन (बहुधा स्वमायां) बहुत प्रकार से अपनी माया को रचता है।

भावार्थ—यदि तुम्हारा मन इतना उच्छृङ्खल है तो तुम उसे शिक्षा क्यों नहीं देते? इस विषय में कहते हैं--

हे प्रभो श्यामसुन्दर! मेरा यह दुष्ट मन मेरे बहुत समझाने पर भी मेरी शिक्षा को नहीं सुनता, बल्कि निर्भय और निश्शङ्क होकर यह धूर्त मन ढीठता करता है अर्थात् हित के उपदेश को सुनकर भी उसके विपरीत आचरण करता है, यह बड़ा ढीठ है। इसका काम ही ढिठाई करना है। यह मन अपनी स्वतन्त्रता के लिए और मुझे आपके पाद-पद्मों से विमुख करने के लिए निरन्तर, रात-दिन अनेक प्रकार के छल प्रपञ्च द्वारा अपनी माया रचता रहता है।

इदानीं दुष्टदेहानुरागेण तस्य दुष्टतामाह-द्राक्षाफलमिति युग्मेन--

द्राक्षाफलं घृतसितादधिपायसानि,
भुक्त्वापि दुष्टतनुरब्दशतं मुकुन्द।
भुङ्क्ते न चैकदिवसं यदि रोगयुक्ता
नोत्तिष्ठति त्यजति ते भजनं स्वधर्मम् ॥४॥

अस्मिन्कृतन्ताकवले कुणपे कृतघ्ने
संवर्द्धितारतिरनेन खलेन देव।

तन्वाः सुखं निजसुखं परिवेत्ति चित्तं
क्षेमाय धावति सदा दशदिक्षु तस्याः ॥५॥

हे मुकुन्द ! द्राक्षामधुरसा ग्राम्रादिफलं च द्राक्षाफलं सिता शर्करा ग्रन्यत्स्पष्टम्। दुष्टा चासौ तनुर्दुष्टतनुः ग्रब्दशतं वर्षशतं भुक्त्वापि यदि रोगयुक्ता एक दिवसं न भुङ्क्ते नादति (नात्ति) तदा नोत्तिष्ठति, स्वधर्मं ते तव भजनं च त्यजति। हे देव ! कृतान्तकवले कालग्रासे कुणपे शवे शवतुल्ये, कृतघ्ने ग्रस्मिञ्छरीरे, खलेन दुष्टेन ग्रनेन मनसा रतिः प्रीतिः संवर्द्धिता, ग्रतएवेदं चित्तं तन्वा देहस्य सुखं निजसुखं परिवेत्ति, देहसुखेनैवात्मसुखं जानातीत्यर्थः। ग्रतस्तस्यास्तन्वाः क्षेमाय कुशलाय दशदिक्षु दशदिशासु सदा धावतीति ॥४-५॥

पदार्थ--(हे मुकुन्द) हे मोक्षदाता ! (द्राक्षाफलं) अंगूर (घृतसितादधिपायसानि) घी, खाँड दही ग्रौर खीर ग्रादि वस्तुग्रों को (दुष्टतनुः) यह दुष्ट शरीर (ग्रब्दशतं) सौ वर्ष तक (भुक्त्वापि) खाकर भी (यदि रोगयुक्ता) यदि कभी रोगी होकर (एकदिवसं न भुङ्क्ते) एक दिन भी नहीं खाता तो (न उत्तिष्ठति) नहीं उठता (च स्वधर्मं ते भजनं त्यजति) ग्रौर ग्रपना धर्म, ग्रापके भजन ध्यान को छोड़ देता है। (हे देव) हे प्रकाशस्वरूप स्वामी (कृतान्तकवले) यमराज के ग्रास रूप (कुणपे, कृतघ्ने ग्रस्मिन्) इस शव तुल्य कृतघ्न शरीर में (खलेन ग्रनेन) इस दुष्ट मन ने (रतिः सम्वर्द्धिता) प्रीति बढाली है, इसलिए (इदं चित्तं) यह चित्त (तन्वाः सुखम्) शरीर के सुख को (निजसुखं) ग्रपना सुख (परिवेत्ति) जानता है। ग्रतः (तस्याः क्षेमाय) उस शरीर के कल्याण के लिए (दशदिक्षु) दशों दिशाग्रों में (सदा धावति) सदा दौड़ता रहता है।

भावार्थ--इस नश्वर शरीर में ग्रत्यधिक ग्रनुराग के कारण ग्रब इस मन की दुष्टता का वर्णन करते हैं--

हे मोक्ष प्रदान करने वाले स्वामिन् ! मधुर रस वाले अंगूर आदि स्वादिष्ट फलों को, घी, शक्कर दही तथा खीर आदि २ उत्तम पदार्थों को यह दुष्ट शरीर सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर खाकर भी यदि कभी किसी रोग के कारण एक दिन भी नहीं खाता है तो यह कृतघ्न न तो शैया से उठता है और न अपना धर्म-कर्म रूप आप का भजन ही करता है अपितु धर्म-कर्मरूप आपके भजन को यह दुष्ट मन छोड़ देता है। हे दयालु देव ! काल के ग्रास, शव (मुर्दे) के समान, कृतघ्न ऐसे इस शरीर में इस दुष्ट, नीच मन ने प्रीति बढाली है। इस कारण यह चित्त शरीर के सुख को अपना सुख, आत्मसुख समझता है, इसीलिए इस शरीर की कुशलता के लिए यह मन दसों दिशाओं में निरन्तर मारा मारा फिरता है।

ननु भोगसाधनत्वात्तेन तत्र रतिः संवर्द्धिताऽतो भोगान्भुक्त्वा तां त्यक्त्वा त्वद्वश्यं भविष्यतीतिचेत्, कल्पकोटिभिरपि न तदा-शेत्याशयेनाह-भुक्ता इति--

भुक्ता अनेकतनुषु प्रचुराश्च भोगा-
स्तृप्तं मनो न तृषितं हि ततोपि भूयः।
मत्वा पराजयमतो मधुसूदनाद्य
त्वां तु प्रभुं स्वसुहृदं शरणं गतोहम् ॥६॥

हे मधुसूदन ! अनेकतनुषु देवादि देहेषु प्रचुरा बहवो भोगा भुक्तास्तथापि मनो न तृप्तं प्रत्युत ततो देवादिभोगप्राप्तेरपि हि निश्चयेन भूयो बहुलं, तृषितं पिपासितम् अधिकाधिकभोगानिच्छ-तीत्यर्थः। अतः कारणात् वा मनसः अहं पराजयं रणभङ्गं मत्वा, अद्य इदानीं तु निश्चयेन प्रभुं मनो मद्वशे नेतुं समर्थं स्वसुहृदं विश्वासास्पदं त्वां शरणं गतोस्मीति शेषः ॥६॥

पदार्थ–(हेमधुसूदन) हे मधु नामक राक्षस के मारने वाले (अनेक

तनुषु) मैंने ग्रनेक शरीरों में (प्रचुराः भोगाः) बहुत भोग (भुक्ताः) भोगे तोभी (मनो न तृप्तम्) मेरा मन तृप्त नहीं हुग्रा, (ततोऽपि भूयः) प्रत्युत निश्चयरूप से उन भोगों से बहुत (तृषितम्) ग्रधिक तृष्णा बढी, (ग्रतः) इस कारण (ग्रद्य तु) ग्राज निश्चय से (स्व-सुहृदं त्वां प्रभुं) ग्रपने सुहृद रूप ग्राप प्रभु की (शरणं गतः) मैं शरण में ग्राया हूँ।

भावार्थ--भोगों के साधन प्राप्त होने से इस मन ने उन भोगों में प्रीति बढाली, इसलिए ग्रब इन भोगों को भोग कर फिर इन्हें छोड़कर मन ग्रापके वश में हो जायेगा, यदि ऐसा विचार करें तो करोड़ों कल्पों तक ऐसी ग्राशा नहीं करनी चाहिये, इस ग्राशय से कहते हैं--

हे मधु नामक दैत्य के दर्प दलन करने वाले श्यामसुन्दर ! ग्रनेक देवादि शरीरों में जन्म लेकर मैंने बहुतसे भोगों का रसा-स्वादन किया तो भी मेरा यह दुष्टमन तृप्त नहीं हुग्रा, ग्रपितु उन भोगों के रसास्वादन से इसकी तृष्णा, प्यास ग्रौर भी ग्रधिक बढती गई, यह मन ग्रौर ग्रधिकाधिक भोग चाहने लगा, जैसे-ग्रग्नि घृत डालने से ग्रधिक प्रज्वलित होती है यही दशा इस मन की हो रही है। इस कारण हे दीन बन्धो ! दयालु भगवन् ! मैं इस मन से ग्रपनी पराजय मानकर ग्रब निश्चयरूप से इसे ग्रपने वश में करने के लिए शरणागतवत्सल ग्राप प्रभु की शरण में ग्राया हूँ।

ननु कथं मयि विश्वासं प्राप्य मां शरणं गच्छसि शास्त्रवाक्या-दित्याह-ब्रूत इति--

ब्रूते श्रुतिः स्वशरणागतवत्सलं त्वां
वश्यं भविष्यति तदैव मनो मदीयम्।

श्रीवत्सलाञ्छन यदा करुणा त्वदीया

शक्तो हरे त्वमसि कृष्ण मनोनियन्तुम् ।।७।।

हे श्रीवत्सलाञ्छन ! स्वशरणम् आगतेषु प्राप्तेषु यो वत्सलः स्नेही तं स्वशरणागतवत्सलं त्वाम् (विष्णोः[१] कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा) इत्यादि ऋङ्मन्त्रो ब्रूते बदति । हे हरे ! यदा त्वदीया करुणा भविष्यति तदैव मदीयं मनो वश्यं भविष्यति । हे कृष्ण ! यतो मनो नियन्तुं वश्यं कर्तुं त्वं शक्तोसीति ।।७।।

पदार्थ--(श्रीवत्सलाञ्छन) हे श्रीवत्सचिह्नधारण करने वाले श्यामसुन्दर ! (स्वशरणागतवत्सलं) अपनी शरण में आने वालों पर प्रेम करने वाला (श्रुतिः त्वां ब्रूते) वेद आपको वतलाता है । (हरे) हे हरि ! (यदा त्वदीया) जब आपकी (करुणा भविष्यति) दया होगी, (तदैव मदीयं मनः) तभी यह मेरा मन (वश्यं भविष्यति) वश में होगा । (कृष्ण) हेकृष्ण ! (यतो मनो नियन्तुं) क्योंकि इस मन को वश में करने के लिए (त्वं शक्तः असि) आप ही समर्थ हैं ।

भावार्थ--तुम कैसे मुझ में विश्वास करके मेरी शरण में आये हो ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं--

---

[१] यो विष्णु- इन्द्रस्य शक्रस्य युज्यो योग्योऽनुकूलो वा सखा तस्य विष्णोः कर्म्माणि शरणागतरक्षणादीनि भो विज्ञाः पश्यत यतो यैर्विष्णोः कर्म्मभिः सर्वोपि भगवद्भक्तो व्रतानि स्वभोगमोक्षसम्बन्धिनियमान् पस्पशे स्पृष्टवान् प्राप्तवानित्यर्थः दैत्यैर्हृतसर्वस्वः सुरेन्द्रो यदा यदा भगवन्तं शरणं जगाम तदा त्रिविक्रमाद्यवतारैस्तदीय सर्वस्वसमर्पणेन भगवान् शक्रसख्यं चकार, वा इन्द्रस्य स्वभक्तेभ्य ऐश्वर्यप्रदातुः परमेश्वरस्य श्रीकृष्णस्य युज्यः एकस्मिन्‌रथे स्थितः सखा अर्जुनो यतः श्रीकृष्णो न व्रतानि मृतद्विजात्मजानयनकर्ण-वधादीन् स्वनियमान् पस्पशे अन्यत्पूर्ववत् ।

हे श्रीवत्सलाञ्छन, यशोदानन्दन ! वेद के मन्त्र कहते हैं कि आप अपनी शरण में आये हुये भक्तों से प्रेम करते हैं। जैसे–"जो विष्णु भगवान् इन्द्र के योग्य सखा हैं। हे विज्ञ पुरुषो ! उन भगवान् विष्णु के शरणागत रक्षणादि कर्मों को देखो। श्रीविष्णु भगवान् के कर्मों से, कृपा से सब भगवद्भक्तों ने स्वभोग मोक्ष संबंधी नियमों को प्राप्त किया। दैत्यों द्वारा इन्द्र का सर्वस्व हरलेने पर जब २ इन्द्र भगवान् विष्णु की शरण में गया तब २ त्रिविक्रमादि अवतारों द्वारा इन्द्र का सर्वस्व वापिस दिलाकर विष्णु भगवान् ने इन्द्र के साथ सखा का वर्ताव किया। अथवा अपने भक्तों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले परमेश्वर श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन के सारथि बने तथा ब्राह्मण के मृत पुत्र को लाये और कर्णादि के वधद्वारा अपना व्रत पालन किया।"

हे पापों के नाश करने वाले भगवन् ! जब मुझ दीन हीन पर आपकी असीम करुणा होगी तभी मेरा यह ढीठ मन मेरे वश में होगा, इस मन को वश में करने में आप ही समर्थ हैं अन्य कोई दृष्टि में नहीं आता।

ननु त्वद्वश्यं सन्मनः किं करोत्वित्याकाङ्क्षायां तत्कृत्यमाह–प्रीतिमिति––

प्रीतिं करोतु पदयोस्तव तद्यथैव
मायां मुकुन्द परिहृत्य तथा विधेहि।
लीनं भवेत्त्वयि पुनर्न भवं स्मरेच्च
स्नेहं त्रिधातुकतनौ परितस्त्यजेच्च ॥८॥

हे मुकुन्द ! तन्मनो यथा येन प्रकारेण मायां छलं धूर्त्ततां परिहृत्य त्यक्त्वा तव पदयोरेव प्रीतिं करोतु। यथा च त्वयि लीनं तव ध्याने स्थिरं भवेच्च पुनर्भवं जन्मादिसंसारं न स्मरेच्च यथा त्रिधातुकतनौ

वातपित्तकफेति त्रिधातुमये शरीरे स्नेहं परितः सर्वतस्त्यजेत्तथा विधेहि कुर्विति ॥८॥

पदार्थ--(मुकुन्द) हे मुकुन्द! (तत्) वह मन (यथा मायां) जैसे माया को (परिहृत्य) त्यागकर (तव पादयोरेव) आपके चरणों में ही (प्रीतिं करोतु) प्रीति करे (यथा च त्वयि लीनं भवेत्) और जैसे आपके ध्यान में मग्न हो जाय (पुनर्भवं च न स्मरेत्) और पुनर्जन्म को स्मरण न करे (यथा च त्रिधातुकतनौ) और जैसे वात, पित्त और कफ से बने इस शरीर में (स्नेहं परितः त्यजेत्) स्नेह को सब ओर से छोड़ दे (तथा विधेहि) हे प्रभो! ऐसा उपाय करिये।

भावार्थ--यदि यह मन तेरे वश में हो जायेगा तो तू क्या करेगा? इस आकाङ्क्षा में उसका कार्य बतलाते हैं--

हे मुकुन्द भगवन्! जिस प्रकार से यह मेरा मन छल, कपट और धूर्त्तता को छोड़ कर आपके चरणों में प्रेम करने लग जाय और जैसे आपके भजन ध्यान में तन्मय हो जाय तथा पुनर्जन्मादि संसार को याद न करे और जैसे वात, पित्त और कफ से बने हुये इस शरीर में सब ओर से स्नेह को त्याग दे, हे प्रभो! ऐसा उपाय आप करें, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

ननु वैराग्याभ्यासौ तन्नियमनोपायौ शास्त्रेषु दर्शितौ ताभ्यामेव तन्निरोधयेति चेत्त्वदुपेक्षयाऽकिञ्चित्करौ तावतस्त्वामेव प्रार्थया-मीत्याशयेनाह–विश्रम्भितमिति युग्मेन--

विश्रम्भितं भगवतश्चरणारविन्दे
मां साधनानि सकलानि विहाय कृष्ण।
अन्यानि पाहि भगवंस्त्वमनन्यनाथं
चित्तेन्द्रियारिनिवहादतिवीर्ययुक्तात् ॥९॥

हे कृष्ण ! चित्तं चेन्द्रियाणि च चित्तेन्द्रियाणि तान्येव अरयस्तेषां निवहः समूहस्तस्माच्चित्तेन्द्रियारिनिवहान्मां त्वं पाहि रक्ष । कथंभूतात् अतिवीर्ययुक्तात् अत्यन्तबलवतः । कथंभूतं माम् अन्यानि वैराग्याभ्यासादीनि सकलानि साधनानि विहाय त्यक्त्वा हे भगवन् ! भगवतस्तव चरणारन्दि विश्रम्भितं विश्वासं प्राप्तं पुनः कथंभूतं न भगवतोऽन्यो नाथो यस्य तमनन्यनाथमिति ।।६।।

पदार्थ--(कृष्ण) हे श्रीकृष्णचन्द्र ! (अतिवीर्ययुक्तात्) अत्यन्त बलवान् (चित्तेन्द्रियारिनिवहात्) चित्त और इन्द्रियरूपी शत्रु-समूह से (अन्यानि) वैराग्यअभ्यासादि (सकलानि साधनानि) सारे साधनों को (विहाय) छोड़कर (भगवन्) हे प्रभो ! (भगवतः चरणारविन्दे) आपके चरण कमल में (विश्रम्भितं) विश्वास प्राप्त (अनन्यनाथं) आपके बिना जिसका कोई नाथ नहीं, ऐसे (मां) मेरी (त्वम्) आप (पाहि) रक्षा कीजिये ।

भावार्थ--शास्त्रों में मनको वश में करने के उपाय वैराग्य और निरन्तर अभ्यास बतलाये हैं, अतः इनके द्वारा मन को तुम वश में करो, इस के उत्तर में कहते हैं--"हे प्रभो ! आपके उपेक्षा कर देने पर, आपकी दया न होने पर ये वैराग्य और अभ्यास कुछ नहीं कर सकते, इसलिए मैं आप से ही प्रार्थना करता हूँ" इस आशय से कहते हैं--

हे श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र ! इन अत्यन्त बलशाली चित्त और इन्द्रियरूपी शत्रुओं के समूह से आप मेरी रक्षा करिये । वैराग्य अभ्यासादि अन्य सकल साधनों को छोड़कर, हे भगवन् ! आपके चरण कमल में मैंने विश्वास प्राप्त किया है, क्योंकि बिना आपकी कृपा के वैराग्य और अभ्यासादि सब व्यर्थ हैं । अतः आपके अतिरिक्त इस संसार में मेरा कोई स्वामी नहीं है ।

इदानींस्वदीनतां प्रदर्श्य पुनः मनसो विजयं प्रार्थयति । शौर इति--

शौरे जितः सकरणेन भवे भवेऽहं,
पाथोजनाभ मनसा त्वदुपेक्षितो हि ।
गोविन्द देहि विजयं श्रमिताय मह्यं,
दीनाय भिक्षुकतमाय च दीनबन्धो ॥१०॥

हे शौरे पाथोजनाभ हे कमलनाभ त्वदुपेक्षितः त्वयाऽरक्षितोऽहं करणैः इन्द्रियैः सहितं सकरणं तेन सकरणेन मनसा भवे २ जन्मनि जन्मनि, हि निश्चयेन जितः । हे दीनबन्धो इदानीमुपेक्षां मा कुरु । हे गोविन्द ! श्रमिताय परिश्रमं प्राप्ताय, दीनाय च भिक्षुकतमाय अति याचकाय मह्यं मनसो विजयं देहि स्वबलेन मनो मम वश्यं कुर्वित्यर्थः ॥१०॥

पदार्थ--(शौरे) हे शूरसेनवंशोद्भव ! (पाथोजनाभ) हे कमलनाभ ! (त्वदुपेक्षितः) आपसे उपेक्षा किया हुआ (अहं) मैं (सकरणेन मनसा) इन्द्रियों के सहित मन से (भवे-भवे) जन्म-जन्म में (हि जितः) निश्चयरूप से जीता गया हूँ । (दीनबन्धो) हे दीनों के बन्धु भगवन् ! अब मेरी उपेक्षा न कीजिये (हे गोविन्द) हे गोविन्द ! (श्रमिताय दीनाय) परिश्रमको प्राप्त दीन (भिक्षुकतमाय च मह्यं) अति भिक्षुकरूप मुझे (विजयं देहि) मनको विजय करने की शक्ति दीजिये ।

भावार्थ--हे शूरसेन वंश में अवतार लेने वाले हे कमलनाभ प्रभु श्यामसुन्दर ! आपसे रक्षा न किया हुआ और आपकी कृपा न होने के कारण मैं इन्द्रियों के सहित इस मन द्वारा अनेक जन्मों में जीता गया हूँ । हे दीनबन्धु भगवन् ! अब आप मेरी उपेक्षा न करें । हे गोविन्द ! मैं परिश्रम करता करता थक गया हूँ, मैं दीन हूँ, और आपका भिक्षुक हूँ । अब आप इस भिक्षुक को अपने मन पर विजय प्राप्त करने की, इसको वश में करने की शक्ति प्रदान कीजिये ।

इति वसन्ततिलका-रत्न-दशकम् ।

अथेन्द्रवज्रा-रत्न-दशकम्

इदानींमज्ञज्ञानप्रदानेनोपकारकत्वात् स्वात्मत्वेन परमप्रेमास्पदत्वान्मनोज्ञत्वेनातिप्रियत्वात् सपर्यार्हस्य पूर्णकामस्य श्रीपतेः परमेश्वरस्यापचितिमपरवस्तुभिरपश्यन् (एष मे सर्वधर्म्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः। यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ।।) इति वाक्यमनुसृत्य भगवच्छतनामसङ्कीर्तनस्तवेन (दह्यन्ते रिपवस्तस्य) इति मनः प्रभृति शत्रुविनाशकेन प्रेम्णा तं समर्चयंस्तत्सख्यं प्रार्थयति-गोविन्देति दशकेन--

गोविन्द गोपाल मुकुन्द कृष्ण
श्रीवासुदेवाच्युत चक्रपाणे।
वैकुण्ठ जिष्णो जगदीश शौरे
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ।।१।।

गोभिर्वेदांतवाक्यैर्विन्दत इति गोविन्दस्तस्य सम्बोधनं गोविंद ! ।१। एवमग्रेपि सर्वनामसु सम्बोधनं ज्ञेयम्। गाः पालयतीति गोपालः ।२। मुक्ति ददातीति मुकुन्दः ।३। भक्तानां चित्तं कर्षतीति कृष्णः (कृषिर्भूवाचकः[१] शब्दो णश्चनिर्वृति[२] वाचकः) इति वचनात् सदानन्दोवा[३] ।४। वासयति सर्वानाच्छादयतीति वासुः स एव दीव्यतीति देवः, श्रिया सहितो वासुदेवः श्रीवासुदेवः ।५। स्वरूपान्न च्यवत इत्यच्युतः षड्विकाररहितः, न च्यवन्ते यद्भक्ता इति वाऽच्युतः ।६। चक्रं सुदर्शनं पाणौ यस्य स चक्रपाणिः ।७। विगता कुण्ठा कुण्ठता प्रतिघातः सर्वकार्येष्वस्येति वैकुण्ठः ।८। जेतुं शीलमस्येति जिष्णुः ।९। जगतः ईशो नियन्ता जगदीशः ।१०। शूर सेनवंशोद्भवः शौरिः ।११। स्वजनाय स्वशरणागताय मह्यं स्वकीयं नैजं सख्यं स्वस्मिन्विश्वासं सह वासं सह निवासं स्वहितायासं सहविलासं देहि। अयमेव चतुर्थपादः सर्वत्र ज्ञेयः ।।१।।

---

[१] सत्ता [२] आनन्दः [३] सत्यं चानन्दश्च सदानन्दः।

पदार्थ--(गोविंद) हे सर्वज्ञ अथवा वेदांत वाक्यों से जानने योग्य ! (गोपाल) हे गौओं के पालन करने वाले! (मुकुंद) हे मुक्ति प्रदान करने वाले ! (कृष्ण) हे भक्तों के चित्त को आकृष्ट करने वाले ! (श्रीवासुदेव) हे लक्ष्मी के सहित श्रीकृष्ण ! अथवा हे वसुदेव-पुत्र ! (अच्युत) हे अपने स्वरूप से न गिरने वाले, षड् विकार रहित ! (चक्रपाणे) हे हाथ में चक्रसुदर्शन धारण करने वाले ! (वैकुण्ठ) हे सब कार्यों में तीव्रबुद्धि रखने वाले ! (जिष्णो) हे जयन-शील, सब को जीतने वाले ! (जगदीश) हे जगत् के स्वामी या जगत् के नियंता ! (शौरे) हे शूरसेन-वंश में उत्पन्न होने वाले ! (स्वजनाय) आपकी शरण में आये हुये मुझे (स्वकीयं सख्यं) आप में विश्वास या अपने साथ निवास (देहि) दीजिये । मेरे हित के लिये मुझे अपनी शरण में रखिये ।

मायापते वामन दानवारे,
विश्वम्भरानन्त हरे मुरारे ।
भूमन् हृषीकेश विधो बकारे,
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ॥२॥

माया विद्याऽविद्या वा तस्याः पतिर्मायापतिः ।१२। बलेर्गर्वभङ्गार्थं ह्रस्वकायो धृतो येन स वामनः, भक्तानां दुःखं वामयति नाशयति इति वा वामनः, ।१३। दानवानामरिर्दानवारिः ।१४। विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरः ।१५। देशतः कालतोऽन्तो नास्त्यस्येत्यनन्तः ।१६। प्रलये विश्वं हरतीति हरिः ।१७। मुरदैत्यस्यारिः मुरारिः ।१८। अतिशयेन बहुरसौ भूमा प्रभूतस्वरूपः ।१९। हृषीकाणि इन्द्रियाणि तेषामीशो हृषीकेशः ।२०। विशेषेण भक्तानामज्ञानं धुनोति नाशयतीति विधुः ।२१। बकासुरस्यारिर्बकारिः ।२२। सख्यमित्यादि पूर्ववत् ॥२॥

पदार्थ--(मायापते) हे विद्या और अविद्या के स्वामी !

(वामन) हे बलि के गर्व को भङ्ग करने के लिये छोटा शरीर धारण करने वाले, या भक्तों के दुःखों का नाश करने वाले ! (दानवारे) हे दानवों, राक्षसों के शत्रु ! (विश्वम्भर) हे संसार का भरण-पोषण करने वाले ! अनन्त) हे देश और काल से अन्त न होने वाले ! (हरे) हे प्रलय के समय संसार का संहार करने वाले या पापों के हरने वाले ! (मुरारे) हे मुर नामक दैत्य के शत्रु, या उसका नाश करने वाले ! (भूमन्) हे प्रभूत-स्वरूप ! (हृषीकेश) हे इन्द्रियों के स्वामी ! (विधो) हे विशेष करके भक्तों के अज्ञान को नाश करने वाले ! (बकारे) हे बक नामक दैत्य के शत्रु या नाश करने वाले श्यामसुन्दर ! आपकी शरण में आये हुये मुझे अपने समीप निवास दीजिए ।

शार्ङ्गिन् विभो केशव विश्वमूर्त्ते
रामानुजाऽजाऽव्यय पुण्यकीर्त्ते ।
ब्रह्मन् गुरो ब्रह्मकृदुग्रशक्ते
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ॥३॥

शार्ङ्गं धनुर्विद्यतेऽस्येति शार्ङ्गी ।२३। ब्रह्मादि रूपेणविविधं भवतीति विभुः ।२४। को ब्रह्मा ईशः शिवस्तौ वशे वर्त्ततेऽस्येति केशवः ।२५। विश्वं मूर्तिरस्यासौ विश्वमूर्त्तिः ।२६। रामस्य बलदेस्यानुजो रामानुजः ।२७। नजायते इत्यजः ।२८। नास्य व्ययो नाशो विकारो वा विद्यत इत्यव्ययः ।२९। पुण्या पवित्रा कीर्ति-रस्येति पुण्यकीर्तिः ।३०। वृहत्त्वाद् वृंहणत्वाच्च ब्रह्म ।३१। गुह्णाति उपदिशति विद्यामिति गुरुः ।३२। ब्रह्म बेदं करोतीति ब्रह्मकृत् ।३३। उग्रा लयकारणभूता शक्तिरस्येत्युग्रशक्तिः ।३४।——॥३॥

पदार्थ——(शार्ङ्गिन्) हे शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले ! (विभो) हे ब्रह्मादिरूप से अनेक रूप धारण करने वाले अथवा सर्वव्यापक ! (केशव) हे ब्रह्मा और शिव दोनों को बश में

रखने वाले या जल में शयन करने वाले! (विश्वमूर्त्ते) हे विश्व-मूर्त्ति भगवन्! (रामानुज) हे बलरामजी के लघु भ्राता! (अज) हे अजन्मा! (अव्यय) हे अविनाशी या अविकारी! (पुण्यकीर्त्ते) हे पवित्र कीर्ति वाले! (ब्रह्मन्) हे ब्रह्मस्वरूप! (गुरो) हे सर्व-विद्याओं का उपदेश करने वाले! (ब्रह्मकृत्) हे वेदों के रचियता! (उग्रशक्ते) हे उग्र शक्ति वाले भगवन्! आपकी शरण में आये हुये मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए।

पीताम्बर श्यामल धर्मवर्मन्
श्रीद प्रभो श्रीधर शाश्वतात्मन्।
नाथाऽखिलात्मञ्छिव सर्वसाक्षिन्
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि॥४॥

पीतम् अम्बरं दुकूलमस्येति पीताम्बरः।३५। अतसी पुष्प संकाशश्यामवर्णत्वात् श्यामलः।३६। वर्मकवचं तद्वद्धर्मं रक्षतीति धर्मवर्मा।३७। भक्तेभ्यः श्रियं ददातीति श्रीदः।३८। प्रकर्षेण दिव्यरूपेण प्रादुर्भवतीति प्रभुः। सामर्थ्यादतिशयाद्वा प्रभुः।३९। श्रियं लक्ष्मीं धत्ते इति श्रीधरः।४०। शाश्वतो नित्य आत्मास्येति शाश्वतात्मा।४१। नाथयन्ति याचन्ते भक्ता यं स नाथो, भक्तेभ्यो योगक्षेमं नाथयति आशंसयति ददातीत्यर्थः सनाथः।४२। अखिला-नां सर्वप्राणीनामात्मा अखिलात्मा वा अखिलेष्वात्माऽस्येत्यखिलात्मा।४३। शाम्यन्ति गुणा रागद्वेषादयोऽस्मिन्निति शिवः शुद्धत्वाद्वा शिवः।४४। साक्षादव्यवधानेन सर्वान्पश्यतीति सर्वसाक्षी।४५।–॥४॥

पदार्थ––(पीताम्बर) हे पीतवस्त्र धारण करने वाले! (श्यामल) हे अतसी पुष्प के समान श्यामवर्ण वाले! (धर्म्म वर्म्मन्) हे कवच की तरह धर्म की रक्षा करने वाले! (श्रीद) हे भक्तों को लक्ष्मी प्रदान करने वाले! (प्रभो) हे दिव्य रूप से प्रकट होने वाले या अतिशय सामर्थ्य वाले! (श्रीधर) हे लक्ष्मी को धारण करने वाले!

(शाश्वतात्मन्) हे सनातन ! (नाथ) हे भक्तों को योगक्षेम देनेवाले ! (अखिलात्मन्) हे सर्व प्राणियों की आत्मा अथवा सर्व प्राणियों में आत्मरूप से निवास करने वाले ! (शिव) हे राग द्वेषादि को शांत करने वाले ! हे कल्याण स्वरूप ! (सर्वसाक्षिन्) हे साक्षात् रूप से सब को देखने वाले श्यामसुन्दर ! मैं आपकी शरण में आया हूँ मेरी रक्षा कीजिये ।

श्रीवास दाशार्ह सुपर्णकेतो
दामोदराऽधोक्षज कंसशत्रो ।
भक्तिप्रियोपेन्द्र वदान्य विष्णो
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ॥५॥

श्रियो लक्ष्म्या वासो निवासस्थानं श्रीवासः ।४६। दाशो दानं तदर्हतीति दाशार्हो दाशार्हा यादवास्तद्वंशोद्भवत्वाद्वा दाशार्हः ।४७। सुपर्णेन गरुडेनाङ्कितः केतुर्ध्वजोऽस्येति सुपर्णकेतुः ।४८। दाम बन्धन-रज्जुरुदरे यस्य स दामोदरः ।४६। अधः प्रकाशनासमर्थमक्षजं ज्ञानं यस्मिन्नित्यधोक्षजः ।५०। कंसस्य शत्रुः कंसशत्रुः ।५१। भक्तिः प्रिया यस्य स भक्तिप्रियः ।५२। अनुजत्वेनेन्द्रमुपगत उपेन्द्रः ।५३। मां याचस्वेत्थं वदतीति वदान्योऽस्युदारः ।५४। वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः ।५५।—॥५॥

पदार्थ--(श्रीवास) हे लक्ष्मी के निवास स्थान ! (दाशार्ह) हे दानशील या यादववंश में उत्पन्न होने वाले ! (सुपर्णकेतो) हे गरुड की ध्वजा वाले ! (दामोदर) हे माता यशोदा द्वारा रज्जु से बाँधे जाने वाले ! (अधोक्षज) हे अनन्त ज्ञान के भण्डार ! (कंसशत्रो) हे कंस के शत्रु अर्थात् मारने वाले ! (भक्तिप्रिय) हे भक्ति करने वालों से प्रेम करने वाले ! (उपेन्द्र) हे इन्द्र के अनुज, छोटे भ्राता ! (वदान्य) मुझ से निरन्तर माँगते रहो इस प्रकार कहने वाले, हे

अति उदार ! (विष्णो) हे सर्वत्र विराजमान, व्यापक भगवन् ! शरण में आये हुये मुझे अपने समीप निवास दीजिए ।

नारायणाऽचिन्त्यगते नृसिंह
पद्माक्ष पद्मानन पद्मनाभ ।
राधापते यादव पद्मपाद
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ॥६॥

नरः परमेश्वरस्ततो जातान्याकाशादीनि नाराणि तान्ययते कारणतया व्याप्नोतीति नारायणः ।५६। अचिन्त्या गतिर्ज्ञानमस्यासौ अचिन्त्यगतिः ।५७। नरस्यावयवाः सिंहस्य चावयवा यस्मिन् स नृसिंहो वा नॄन् दुष्टजनान् हिनस्तीति नृसिंहः ।५८। पद्मवदक्षिणी नेत्रे अस्येति पद्माक्षः ।५६। पद्ममिवाननमस्येति पद्माननः ।६०। जगत्कारणं पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभः वा पद्ममिव सुवर्त्तुला नाभिरस्येति पद्मनाभः ।६१। राधायाः पतिर्नायिकः प्रभुः पूज्यो वा राधापतिः ।६२। यदुवंशोद्भवत्वाद्यादवः ।६३। पद्मवत्कोमलौ पादौ यस्य स पद्मपादः ।६४।——॥६॥

पदार्थ——(नारायण) हे आकाशादि में व्यापक या जल में निवास करने वाले ! (अचिन्त्यगते) हे अचिन्त्य गति वाले ! (नृसिंह) हे नर और सिंह के शरीर को धारण करने वाले या दुष्ट जनों का नाश करने वाले ! (पद्माक्ष) हे कमल के समान नेत्रों वाले ! (पद्मानन) हे कमल के सदृश मुख वाले ! (पद्मनाभ) जगत् का कारण कमल जिनकी नाभि में है ऐसे हे पद्मनाभ ! (राधापते) हे राधा के स्वामी या पूज्य ! (यादव) हे यदुवंशी ! (पद्मपाद) हे कमल के समान कोमल चरण वाले भगवन् ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे अपनी शरण में रखिये ।

पद्मापते माधव पद्मपाणे
क्षेत्रज्ञ सर्वेश्वर विश्वयोने ।

कारुण्यसिन्धोऽमितरूपराशे
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ।।७।।

पद्मायाया लक्ष्म्याः पतिः पद्मापतिः ।६५। मा लक्ष्मीस्तस्या धवः पतिर्माधवः । मधुर्यदुकुलं तत्राविर्भूतो माधवो वा ।६६। पद्मवत्कोमलौ पाणी करौ यस्य वा पद्मं पाणौ यस्य स पद्मपाणिः ।६७। क्षेत्रं शरीरं जानातीति क्षेत्रज्ञः ।६८। सर्वस्य विश्वस्येश्वरः प्रभुः सर्वेश्वरः ।६९। विश्वस्य सर्वजगतो योनिः कारणं विश्वयोनिः ।७०। कारुण्यस्य कृपायाः सिन्धुः कारुण्यसिंधुः ।७१। अमितरूपस्य अनंतसौंदर्यताया राशिः समूहः अमितरूपराशिः ।७२।—।।७।।

पदार्थ—(पद्मापते) हे कमलापति! (माधव) हे लक्ष्मी के पति या यदुकुल में प्रकट होने वाले श्रीकृष्ण! (पद्मपाणे) हे कमल के समान कोमल हाथ वाले या हाथ में कमल रखने वाले! (क्षेत्रज्ञ) हे क्षेत्र, शरीर को जानने वाले! या चराचर जगत् को जानने वाले! (सर्वेश्वर) हे अखिल ब्रह्माण्ड, सबके स्वामी! (विश्वयोने) हे जगत् के आदि कारण! (कारुण्यसिन्धो) हे करुणा के समुद्र! (अमितरूपराशे) हे अनंत सौंदर्य से युक्त भगवन्! शरण में आये हुए मुझे अपना सामीप्य दीजिए ।

श्रीमन् गुडाकेशसखानवद्य
सर्वज्ञ लोकेश जगन्निवास ।
देवाऽप्रमेय प्रिय गोकुलेश
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ।।८।।

श्रीर्लक्ष्मीर्यस्य वक्षसि स श्रीमान् ।७३। गुडाका निद्रा तस्या ईशो वशीकृतनिद्रोऽर्जुनस्तस्य सखा गुडाकेशसखः ।७४। अवद्योऽधमो नावद्योऽनवद्यः सर्वोत्तमः ।७५। सर्वं जानातीति सर्वज्ञः ।७६। लोकानां चतुर्दशभुवानानामीशो लोकेशः । ७७ । जगतां निवासः

स्थिति: स्थानम् आधारो जगन्निवास: ।७८। दीव्यति वृन्दावनेक्रीड़तीति देव: ।७९। प्रमेयो मानविषयो न प्रमेयोऽप्रमेय अनंत इत्यर्थ: ।८०। प्रीणाति भक्तानिति प्रिय: ।८१। गोकुलस्य गवां वा इन्द्रियाणां समूहस्येशो गोकुलेश: ।८२।——।।८।।

पदार्थ——(श्रीमन्) हे लक्ष्मीवान्! (गुडाकेशसख:) हे निद्रा को जीतने वाले अर्जुन के सखा! (अनवद्य) हे सर्वोत्तम, हे अनघ, पाप रहित! (सर्वज्ञ) हे सब कुछ जानने वाले! (लोकेश) हे चतुर्दश भुवनों के अथवा तीनों लोकों के स्वामी! (जगन्निवास) हे जगत् के आधार! (देव) हे श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा करने वाले श्यामसुन्दर या हे प्रकाश स्वरूप! (अप्रमेय) हे अनंत! (प्रिय) हे भक्तों के प्यारे! (गोकुलेश) हे गौओं के अथवा इन्द्रियों के स्वामी! भगवन्! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे अपनी शरण में रखिये।

वार्ष्णेय नन्दात्मज दीनबन्धो
विज्ञानवार्द्धेऽक्षर दीप्तमूर्त्ते।
देवेश देवारिरिपो मनोज्ञ
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ।।९।।

वृष्णिवंशोद्भवत्वाद्वार्ष्णेय: ।८३। नन्देनात्मजत्वेन पुत्रत्वेन भजितो नंदात्मज: ।८४। दीना: शरणागता बन्धुवत्पाल्या येन स दीन-बन्धु: ।८५। विज्ञानस्यापरोक्षस्वरूपज्ञानस्य वा विविधज्ञानस्य वार्द्धि: समुद्रो विज्ञानवार्द्धि: अनंतबोध इत्यर्थ: ।८६। न क्षरतीति अक्षर: ।८७। दीप्तिर्द्युतिस्तन्मया मूर्त्तिर्यस्य स दीप्तमूर्त्ति: ।८८। देवानामिन्द्रादीनामीशो देवेश: ।८९। देवारयो हिरण्याक्षादयो दैत्या स्तेषां रिपुर्देवारिरिपु: ।९०। मनोजानातीति मनोज्ञो मनोहरत्वाद्वा ।९१।——।।९।।

पदार्थ—(वार्ष्णेय) हे वृष्णिवंश, यदुवंश में जन्म लेने वाले! (नंदात्मज) हे नंदनंदन! (दीनबंधो) हे दीनों, शरणागतों के

वंधु ! (विज्ञानवार्द्धे) हे अपरोक्ष ज्ञान के समुद्र या विविध ज्ञान के सागर ! (अक्षर) हे अविनाशी ! (दीप्तमूर्त्ते) हे प्रकाशमान विग्रह वाले ! (देवेश) हे इन्द्रादि देवों के स्वामी ! (देवारिरिपो) हे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु आदि दैत्यों के शत्रु ! (मनोज्ञ) हे मन की बात जानने वाले या अत्यंत मनोहर प्रभु श्यामसुंदर ! आपकी शरण में आये हुए मुझे अपनी शरण में रखिए ।

सीतापते राघब रावणारे
काकुत्स्थ रामाऽमर कोशलेश ।
भो सद्गते दाशरथे नमस्ते
सख्यं स्वकीयं स्वजनाय देहि ॥१०॥

सीतायाः पतिः सीतापतिः ।९२। रघुवंशे जातो राघवः ।९३। रावणस्यारिः रावणारिः ।९४। ककुत्स्थवंशोदभवत्वात्काकुस्थो रामः ।९५। रमंते योगिनो यस्मिन्निति रामः ।९६। मरणादिदेह-धर्मरहितोऽमरः ।९७। कोशलस्य अयोध्याया ईशः कोशलेशः ।९८। सतां साधूनां गतिः प्राप्य इति सद्गतिः ।९९। दशरथस्यापत्यं दाश-रथिः ।१००। ते तुभ्यं नमोऽस्त्विवति शेषश्चतुर्थपाद उक्तार्थः ॥१०॥

पदार्थ––(सीतापते) हे सीता के पति ! (राघव) हे रघुवंश में जन्म लेने वाले ! (रावणारे) हे रावण के शत्रु ! (काकुत्स्थ) हे ककुत्स्थ वंश में उत्पन्नहोने वाले ! (राम) हे योगियों के रमण के स्थान ! (अमर) हे मरणादि देह धर्म से रहित ! (कोशलेश) हे कोशल, अयोध्या के स्वामी ! (सद्गते) हे साधुजनों की गति, आश्रय ! (दाशरथे) हे दशरथ के पुत्र ! (नमस्ते) आपको मेरा वार २ नमस्कार है, आपके चरण-कमलों में प्रपन्न मुझे अपनी शरण दीजिए ।

इतीन्द्रवज्रा-रत्न-दशकम् ।

ग्रन्थ पाठ फलम्

इदानीं भक्तजनाभिमुखकरणायास्य विषयानुसारेण माहात्म्य-माह शतकमिति मुक्तकेन--

शतकं कविगोपालविनिर्मित-
मुषसि पठति यो भक्तः ।
अच्युतचरणकमलरतियुक्तो-
भवति च विषयविरक्तः ॥१॥

माधवधाम निरामयमनिशं
याति स देहं हित्वा ।
पुनरायाति न संसारेऽस्मिन्-
श्रीगोपालं गत्वा ॥२॥

कविश्चासौ गोपालः कविगोपालस्तेन कविगोपालेन विनिर्मितं कविगोपाविनिर्मितं कार्ष्णिकण्ठाम्भरणसञ्ज्ञकं शतकं यो भक्त-उषसि प्रातःकाले पठति सोऽच्युतस्य श्रीकृष्णस्य चरणकमलयोर्या रतिस्तया युक्तोऽच्युतचरणकमलरतियुक्तः विषयेषु विरक्तो विषय-विरक्तो भवति, च पुनरन्ते स, देहं हित्वा त्यक्त्वा निरामयं सर्वो-पद्रववर्जितं अनिशं सततं माधवस्य धाम लोकं याति, तत्र श्रीगोपा-लं गत्वा प्राप्य पुनरस्मिन्संसारे नायाति नागच्छतीति ॥१-२॥

पदार्थ--(कविगोपालविनिर्मितम्) कविवर कार्ष्णिकलापा-चार्य श्रीस्वामी गोपालदासजी के द्वारा बनाये हुए, (शतकं) इन सौ श्लोकों को (यो भक्तः) जो भक्त (उषसि) प्रातःकाल में (पठति) पढ़ता है, (स) वह (अच्युतचरण-कमलरतियुक्तः) श्री कृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में प्रेमयुक्त (च विषयविरक्तः) और सांसारिक विषयों से विरक्त (भवति) हो जाता है । (स देहं हित्वा) फिर अन्त समय में वह भक्त इस शरीर को छोड़कर (निरामयं)

सब उपद्रवों से रहित (अनिशं) सतत (अथवा न निशा यत्र) अर्थात् अज्ञान रूपी निशा से रहित (माधवधाम) श्रीकृष्ण के धाम, वैकुंठ धाम या गो लोक धाम को (याति) जाता है। (श्रीगोपालं गत्वा) वहाँ गोपाल, श्रीकृष्ण को प्राप्त करके (पुनः अस्मिन्संसारे) फिर इस संसार में (न आयाति) नहीं आता।

भावार्थ––अब भक्तजनों की रुचि बढाने के लिये इस ग्रन्थ का माहात्म्य स्वयं ग्रन्थ कर्ता कहते हैं––

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कविश्रेष्ठ श्रीस्वामी गोपालदास जी द्वारा बनाये गये "कार्ष्णि कण्ठाभरण" नामक सौ श्लोक वाले इस ग्रंथ को जो भक्तजन प्रतिदिन प्रातःकाल भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, वे भक्त आनंदकंद श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमलों में प्रेम प्राप्त कर लेते हैं और संसार के विषय भोगों से विरक्त हो जाते हैं। फिर अन्त समय में वे इस शरीर को त्यागकर सब उपद्रवों से रहित श्रीश्याम-सुन्दर के चिन्मयधाम को, वैकुण्ठ या गोलोक धाम को प्राप्त करके फिर इस संसार में जन्म नहीं लेते, वे आवागमन से छूट जाते हैं।

अथ वृद्धव्यवहाराल्लोकप्रत्ययार्थं च स्वनामस्थानादीन्याह–उदासीन इति मुक्तकेन––

उदासीनो व्रजासीनस्तत्रापि मथुराश्रमः।
कार्ष्णिगोपालदासोऽहं गोपालाङ्घ्रिचब्जषट्पादः ॥३॥

उदासीनः वर्णाश्रमसम्प्रदायाभिनिवेशशून्यो वा सर्वव्यवहारा-दुपरतो वा लोकदृष्ट्या नानकीय-सम्प्रदायान्तर्गतो व्रजे आसीनः स्थितो व्रजासीनः, तत्र व्रजेऽपि मथुरायाम् आश्रमो यस्य स मथुरा-श्रमः। कृष्णस्यायं कार्ष्णिः कृष्णोपासक इत्यर्थः, कार्ष्णिश्चासौ गोपालदासः कार्ष्णिगोपालदासो, निरंतरं पद्योक्तगोपालेत्यर्द्ध नाम्ना, सर्वेषां सम्यग् ज्ञानासम्भवात्पुनरत्र सविशेषणसर्वनामेरण-

मतो न पुनरुक्तिः । अहं ग्रंथकर्ता गोपालाङ्घ्रयब्जषट्पदो गोपालस्य श्रीकृष्णस्य अङ्घ्रयब्जयोश्चरणकमलयोः षट्पदो भ्रमरवत्तत्र दत्तचित्त इति ॥३॥

पदार्थ—(उदासीनः) उदासीसम्प्रदायानुयायी (व्रजासीनः) व्रज में स्थित (तत्रापि) उसमें भी (मथुराश्रमः) मथुरा में निवास करने वाला (कार्ष्णिगोपालदासः) श्रीकृष्ण का उपासक गोपालदास नाम वाला (अहं) मैं (गोपालाङ्घ्रयब्जषट्पदः) श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भ्रमर की तरह दत्तचित्त हूँ ।

भावार्थ—वर्णाश्रमसम्प्रदाय से रहित सर्वलौकिक व्यवहारों से उपरत किन्तु लोक दृष्टि से (नानकीय) श्रीचन्द्राचार्यसम्प्रदायानुयायी, उदासी व्रज में निवास करने वाला उसमें भी मथुरा निवासी आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र का उपासक गोपालदास नामक मैं ग्रंथकर्ता श्रीश्यामसुन्दर के चरणकमलों में भ्रमर के समान दत्तचित्त हूँ ।

॥ क्षमा-प्रार्थना ॥

ये भवे भगवद्दासाः कृतायासाः सदागमे ।
निराशा नामरूपाभ्यामस्ति भाति प्रिये रतः ॥१॥
तेभ्यो नमोस्तु नम्रेभ्यो नानासद्गुणगौरवात् ।
सफलैः पादपैः पृथ्वी स्पृश्यते नो नभस्तलम् ॥२॥
मम साहसमुलङ्घ्य दृष्ट्वा मूलं स्वमेधया ।
यद्यत्स्खलितमस्त्यत्र समं कुर्वन्तु साधवः ॥३॥
आर्यहार्दप्रकाशिनी कार्ष्णिकण्ठाभरणटीकेयं कृता ।
यतिनरोत्तमदासेन रामगुणग्रामस्नेहिना ॥४॥
वेद-षड्-नन्द-चन्द्राब्दे मधुपुर्यां सिते दले ।
टीकेयं टिप्पणीयुक्ता वैशाखे पूर्णतां गता ॥५॥

भावार्थ—संसार में जो प्रभु के दास, भक्त हैं और जो सदा वेद शास्त्रों के अध्ययन में प्रयत्न करते हैं तथा जो नाम रूप से निराश हैं और अस्ति भाति के प्रेम में रत हैं ।।१।।

अनेक सद्गुणों के गौरव के कारण मैं उन सब महापुरुषों को नमस्कार करता हूँ । क्योंकि फल आने पर वृक्ष सदा पृथ्वी की ओर झुकते हैं, शुष्क काष्ठ की तरह आकाश की ओर नहीं देखते, एवं भगवद्दास प्रभु की शरण में जाकर विनम्र हो जाते हैं अहङ्कार नहीं करते ।।२।।

मैंने अपने साहस को उल्लङ्घन करके और अपनी बुद्धि से मूल को देखकर यह ग्रन्थ बनाया है इसमें जो-जो त्रुटि या न्यूनता हों सज्जनवृन्द उसका समाधान स्वयं करलें ।।३।।

इस "कार्ष्णि कण्ठाभरण" नामक ग्रन्थ की "आर्य हार्द-प्रकाशिनी" नामक टीका मैंने, यति नरोत्तमदास इस उपनाम से बनाई है । (श्री स्वामी गोपालदास जी का दूसरा नाम नरोत्तम-दास भी था) ।।४।।

विक्रम सम्वत् १९६४ वैशाख शुक्लपक्ष में मथुरा नगरी में टिप्पणी सहित यह टीका सम्पूर्ण हुई ।।५।।

कार्ष्णिपञ्चकम्

नाहं गृहस्थो न च काननस्थो
न ब्रह्मचारी नहि वेणुधारी ।
न मेस्ति वर्णो न च वर्णबाह्यो–
नाहं शरीरी न जडं शरीरम् ॥१॥

अर्थ––न मैं गृहस्थी हूँ और न मैं वनवासी हूँ। न मैं ब्रह्मचारी हूँ और न मैं दण्डधारी हूँ। न मेरा कोई वर्ण (जाति) है और न मैं वर्ण से बाहर हूँ। न मैं शरीरी हूँ और न मेरा शरीर, जड़ ही है ॥१॥

सौरो न चाहं नहि वैष्णवो वा
नाहं तु शैवो न च गाणपत्यः ।
स्मार्त्तो न चाहं नहि शाक्तिकोऽस्मि-
नो नास्तिकः कार्ष्णिरहं तु कश्चित् ॥२॥

अर्थ––न मैं सूर्य का उपासक हूँ, न मैं वैष्णव हूँ न मैं शिव का भक्त हूँ और न मैं गणपति का उपासक हूँ। न मैं स्मार्त्त हूँ और न शक्ति का ही पूजक हूँ। मैं नास्तिक भी नहीं हूँ मैं तो केवल कार्ष्णि, श्रीकृष्ण का उपासक हूँ ॥२॥

जपन्तु जप्यं हरिनाम भक्ता-
स्तिष्ठन्तु घोरे विपिने विरक्ताः ।
वसन्तु गेहे विषयेषु सक्ताः
करोतु कृत्यं परलोकवक्ता ॥३॥

अर्थ––भक्त लोग जपने योग्य हरिनाम का जप करें, विरक्त लोग गहन वन में जाकर रहें। विषयों में आसक्त लोग अपने घरों में निवास करें और परलोक के वक्ता अपना २ कृत्य करें ॥३॥

मुमुक्षवो वै प्रपठन्तु वेदं
वहन्तु जैना-निज-धर्मखेदम् ।
जल्पन्तु ते भेदमतिश्च येषां
करोम्यहं किं न हि कोपि तेषाम् ॥४॥

अर्थ--मोक्ष की इच्छा करने वाले वेदों को पढें । जैन लोग अपने धर्म के भार को वहन करें । जिनके मन में भेद-बुद्धि है वे कुछ ही कहते फिरें । उनका कोई भी नहीं है, उनका कहीं ठिकाना नहीं है, मैं क्या करूँ ।

अहं कृष्णस्य स चास्मदीयः
सोहं त्वहं सोऽस्ति सदाऽद्वितीयः ।
करोमि मैत्रीं क्व च कस्य हेतोः
प्रियोस्ति नान्यो भुजगारिकेतोः ॥५॥

अर्थ-ग्रन्थकर्त्ता कार्ष्णिकलापाचार्य श्रीस्वामी गोपालदासजी अब श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचंद्र में अपनी अनन्य श्रद्धा, भक्ति दिखलाते हैं--

मैं तो निश्चय से श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का हूँ और वे आनन्द-कन्द श्रीकृष्ण मेरे हैं । (सारूप्य-लाभ के समय) जो वे हैं, सो मैं हूँ, जो मैं हूँ, सो वे हैं, तथापि वे ही अद्वितीय ठहरते हैं । यदि समस्त उपासक सारूप्य-मुक्ति में उपास्य बन जायें तो अनेकेश्वरवाद का दोष आता है। अतएव कहा है कि "प्रभु श्रीकृष्ण भगवान् अद्वितीय हैं अपने समान वे स्वयं ही हैं" इस दृष्टि से शास्त्र का वचन है कि सारूप्य मुक्ति में भक्त को भगवान् की जो सरूपता मिल जाती है वह आंशिक है । सारूप्य-मुक्ति प्राप्त उपासकों को नीलवर्णता एवं पीताम्वर-परिधानता आदि गुणों का लाभ हो जाता है तथापि कौस्तुभमणि वे नहीं पहनते और उनके वक्षःस्थल पर श्री वत्स का चिह्न भी नहीं होता "विना श्रीवत्सकौस्तुभौ" (श्रीमद्भागवत) ।

मैं किसके लिए किससे और कहाँ मैत्री करूँ, गरुडध्वज श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है ।

अथ चतुरोपनिषत्

(१. कलिसंतारणोपनिषत् भाषानुवाद सहित)

(२. अक्ष्युपनिषत्) (३. गारुडोपनिषत्)

(४. मृत्युलाङ्गूलोपनिषत्)

परमहंस श्री स्वामी

कार्ष्णि गोपालदास महाराज संग्रहीत ।

१. अथ कलिसन्तारणोपनिषत्

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

भाषा––वह परमेश्वर हम दोनों शिष्य आचार्य को विद्या का स्वरूप प्रकाश कर पालन करे अर्थात् विद्या पढ़ने पढ़ाने में प्राप्त जो विघ्न उनको दूर करे। पुनः वह ईश्वर विद्या का फल प्रकाश करके हम दोनों शिष्य आचार्य की रक्षा करे अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप फल को दे, और एक साथ ही हम दोनों को (विद्या पढ़ने और पढ़ाने का) पुरुषार्थ दे । हमारी पढ़ी हुई विद्या महान् प्रभाव वाली होवे । हम दोनों का परस्पर द्वेष नहीं हो अर्थात् गुरु शिष्य भाव का प्रेम बना रहे। मन्त्र के अन्त में जो तीन बार शान्ति पाठ है वह अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीन तापों की निवृत्ति के लिए है ।। हरिः ओ३म् ।।

द्वापरांते नारदो ब्रह्माणं जगाम । कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं संतरेयमिति ।।

भाषा––द्वापर युग के अन्त में नारदजी ने ब्रह्माजी के पास जाकर पूछा कि हे भगवन् ! मैं पृथ्वी की यात्रा करने वाला कलि-युग को कैसे पार करूँ अर्थात् वैदिक धर्म रहित दुष्ट स्वभाव वाले कलियुग में भगवद्धाम प्राप्ति का क्या साधन है ?

स होवाच ब्रह्मा । साधु पृष्टोस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु । येन कलिसंसारं तरिष्यसि भगवत आदि-पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति ।।

भाषा––ब्रह्मा जी बोले हे नारद ! तुमने बहुत ही श्रेष्ठ प्रश्न किया है। अब सम्पूर्ण श्रुतियों का जो गुप्त सिद्धान्त है, जिससे

कलियुग रूपी संसार से तर जाओगे उसे सुनो— सम्पूर्ण देह रूपी पुरियों में साक्षी रूप से विराजमान अथवा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो व्यापक उस सर्व जगत् के आदि कारण नारायण भगवान् के नाम उच्चारण मात्र से ही कलियुग के सम्पूर्ण पापों से मनुष्य मुक्त हो सकता है। श्रीशुकदेवजी ने कहा है–"कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥१॥

हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि कलियुग महान् दोषों की खान है तथापि इसमें एक महान् गुण यही है कि केवल भगवान् के नाम संकीर्तन मात्र से ही जीव सर्व बन्धनों से मुक्त होकर परम पद मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति। सहोवाच हिरण्यगर्भः।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायस्सर्ववेदेषु दृश्यते इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रश्मिमण्डलीवेति ॥

भाषा––नारदजी ने फिर प्रश्न किया कि वह नाम कौनसा है ? ब्रह्माजी बोले, वह नाम है "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥" इन सोलह नामों[१]

[१] "हरि, राम और कृष्ण, इन तीनों नामों के पृथक् २ अर्थ ये हैं– "हरति योगिनां चेतांसि इति हरिः जो योगियों के चित्तों को हरण करे वह हरिः है। अथवा––"हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।" जैसे अनिच्छा से स्पर्श करने पर भी अग्नि जलाता है इसी प्रकार दुष्टचित्तद्वारास्मरण किया हुआ भी जो हरि पापों को हर लेता है, उसे हरि कहते हैं" राम शब्द का अर्थ––"रमन्ते योगिनोऽ

के उच्चारण करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण वेदों में इससे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई साधन मुक्ति के लिए देखने में नहीं आता है। इन सोलह कलाओं से युक्त पुरुष का आवरण (अज्ञान रूप परदा) नष्ट हो जाता है।

दृष्टान्त--मेघों के नाश होने से अर्थात् सूर्य्य के आगे से मेघों के हट जाने पर जैसे सूर्य की किरणों का समूह प्रकाशमान होता है, वैसे ही अज्ञानरूप परदे के हट जाने पर सच्चिदानन्द-स्वरूप-ब्रह्म का मुमुक्षु को स्वत: साक्षात्कार हो जाता है।

पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्कोस्य विधिरिति॥ तंहोवाच। नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणस्सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति॥

भाषा--नारदजी ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन्! इस नाम के जपने की क्या विधि है? ब्रह्माजी ने कहा कि इस मन्त्र को जपने के लिये देश काल नियमादि का कोई संकेत नहीं है। सदैव शुद्ध हो वा अशुद्ध (किसी भी दशा में हो) केवल नाम जप करने मात्र से ही मनुष्य सालोक्य मुक्ति अर्थात् भगवान् के लोक में निवास होना, सामीप्य अर्थात् भगवान् के पास पार्षदरूप से निवास

स्मिन्निति रामः" जिसमें योगिगण रमण करते हैं अथवा जो योगियों में रमण करता है वह राम है। अथवा रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।' जिस अनन्त चिदात्मा परब्रह्म में योगिगण रमण करते हैं' वह राम है॥

कृष्ण शब्द का अर्थ--"कर्षति योगिनां (भक्तानां) मनांसीति कृष्णः" जो योगियों (भक्तों) के मन को आकर्षण करे वह कृष्ण है। अथा--"कृषि-र्भूवाचको शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः। तयोरैक्यं पर ब्रह्म कृष्ण इत्यभि-धीयते।" कृषि शब्द भू याने सत्ता का बोधक है और णः निर्वृत्ति नाम आनन्द बोधक है इन दोनों की एकता होने पर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप परब्रह्म ही श्री कृष्ण कहाते हैं॥

होना, सारूप्य अर्थात् भगवान् के सदृश ऐश्वर्य और स्वरूप की प्राप्ति, सायुज्य भगवान् के स्वरूप के साथ मिल जाना, इन चार प्रकार की मुक्ति को प्राप्त होता है।

यद्यस्य षोड़शकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति। तदा ब्रह्महत्यायास्तरति ।। स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति। वृषलीगमनात्पूतो भवति ।। सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यत इत्युपनिषत् ।।

भाषा—ब्रह्माजी फिर कहने लगे कि यदि कोई इन सोलह नामों के मन्त्र का साढ़े तीन करोड़ जप करले अर्थात् इन सोलह नामों के मन्त्र को ६५०० मन्त्रों का नित्य जप करने पर जो लगभग ६१ मालाओं में हो जाता है इस प्रकार नित्य जप करने से केवल १५ वर्ष में साढ़े तीन करोड़ जप संख्या पूरी होती है तो वह मनुष्य ब्रह्महत्या, स्वर्ण की चोरी, शूद्रादिस्त्रीगमन और सम्पूर्ण धर्मों के त्याग रूप पापों से छूट जाता है तत्काल ही मुक्त होता है वह तत्काल मुक्त हो जाता है। यह तीन बार सन्देह निवृत्ति के लिए है। अष्ट पहर के भजन का एक सुगम उपाय यह भी है जो कोई इन सोलह नामों के मन्त्र की १४ माला नित्य प्रति जप करे जिसके २४६०० नामों की लगभग संख्या होती है ऐसा करने से २१६०० दिन रात के श्वासों का जप हो जाता है अतएव मनुष्य मात्र का यह कर्त्तव्य है कि वह अनिष्ट-निवृति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए अपने मन, वाणी और शरीर का सदुपयोग करे। इति भाषानुवाद।

---

२. अथाक्ष्युपनिषद्

हरिः ओ३म् ॥ यत्सप्तभूमिका विद्या वेद्याऽऽनन्द-कलेवरम् । विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥१॥ ॐ सहनाववत्विति शान्तिः ३ ॐ अथ ह साङ् कृतिर्भगवाना-दित्यलोकं भगाम । तमादित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया-तमस्तुवत् । ओमथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धां विद्यां चक्षुरोग हरां व्याख्यास्यामो, यया चक्षुःरोगाः सर्वतो नश्यन्ति ॥ चक्षुषो दीप्तिर्भवति इति ॥ ओमस्य चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्यः ऋषिः, गायत्रीछन्दः, श्री सूर्यो देवता चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ॥ ॐ चक्षुश्च चक्षुश्च चक्षुस्तेजः स्थिरो भव मा याहि मा याहि । त्वरितं चक्षू रोगान् शमय २ मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय यथाहमंधो न स्याम्, तथा कल्पय २ । कल्याणं कुरु कुरु यानि यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रति-रोधक दुःष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय ॥ ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय । ॐ नमः करुणाकराया-मृताय । ॐ नमः श्री सूर्याय ।ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षि-तेजसे नमः ॥ ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ महते नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्वाय नमः । ओमसतो मां सतो (त्) गमय । तमसो मां ज्योति-र्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः, हंसो भगवाञ्छुचिरूपोऽप्रतिरूपः । "विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं पुरुषं ज्योतिरूपंप्रतपन्तम् । सहस्त्ररश्मिभिश्शतधा वर्तमानः पुरः पुरुषः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः" ॐ नमो भगवते श्रीसूर्य्यायाऽऽदित्यायाऽ क्षितेजसेऽहो वाहिनि (नी) अहोवाहिनि

(नी) स्वाहेति। एवं चाक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्य-नारायणस्सुप्रीतोऽब्रवीत्। य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाऽथ विद्यासिद्धिर्भवति। य एवं वेद स महान्भवति ॥१॥ इत्यक्ष्युपनिषत्।

---

३. अथ गारुडोपनिषत्

ॐ ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि ब्रह्मा नारदाय नारदो बृहत्सेनाय बृहत्सेनो वृहस्पतये वृहस्पतिरिन्द्राय इन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाजो जीवतुकामेभ्यः स्वशिष्येभ्यः प्रायच्छत्। ॐ तर्त्तकारीमर्त्तकारी विषहारिणी विषदूषिणी विषसर्पिणी विषनाशिनी हतं विषं नष्टं विषं प्रणष्टंविषं हतं ते ब्रह्मणाविषं हतमिंद्रस्यवज्रेण स्वाहा।१। नागानां सर्पाणां वृश्चिकानां लूतानां प्रलूतानां गोधानां गृह-गोधानां मूषकाणां स्थावराणां जंगमानां यद्यनंतकदूतस्त्वं यदिवाऽनंतकः स्वयं यदि वासुकिदूतस्त्वं यदि वा वासुकिस्स्वयं यदि तक्षकदूतस्त्वं यदि वा तक्षकस्स्वयं यदि कर्कोटकदूतस्त्वं यदि वा कर्कोटकः स्वयं यदि शंखपुलकदूतस्त्वं यदि वा शंख-पुलकः स्वयं यदि पद्मकदूतस्त्वं यदि वा पद्मकः स्वयं यदि महा-पद्मकदूतस्त्वं यदि वा महापद्मकस्स्वयं यद्येलापत्रकदूतस्त्वं यदि वा एलापत्रकस्स्वयं यदि वा महैलापत्रकदूतस्त्वं यदि वा महैलापत्रकः स्वयं यदि कम्बलाश्वतरदूतस्त्वं यदि वा कम्बला-श्वतरः स्वयं यदि कालिकदूतस्त्वं यदि वा कालिकः स्वयं यदि

कुलिकदूतस्त्वं यदि वा कुलिकस्स्वयं य इमां महाविद्याममाव-
स्यायांशृणुयाद् द्वादशवर्षं न तं,दशन्तिसर्पा य इमां महाविद्या-
ममावस्यायामधीयानो धारयेद्यावज्जीवं न तं दशन्ति सर्पा
अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा तृणेन मोक्षयति भस्मना मोक्षयति
शतं ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा चक्षुषा मोक्षयति सहस्रं ब्राह्मणान्
ग्राहयित्वा मनसा मोक्षयति इत्याह भगवान् ब्रह्मा आह
भगवान्ब्रह्मेत्यथर्वणवेदेगारुडोपनिषत्समाप्ता ।। ॐ शांति ३।।

---

४. अथ मृत्युलाङ्गूलोपनिषत्

ॐ मृत्युलाङ्‌गूलं व्याख्यास्यामः ।। ॐ मृत्युलांगूल
मन्त्रस्यानुष्टुप् छन्दः, कालाग्निरुद्रो यमो देवता, वशिष्ठ-
ऋषिः मृत्यूपस्थाने विनियोगः ।। ॐ अथातो योगजिह्वां
मधुमतिवाजन्यहमेवाहङ्कालपुरुषमूर्द्धलिङ्गं विरूपाक्षं विश्व-
रूपाय नमो नमः । वरवृषभाय फेनकपिलरूपाय नमो नमः ।
पशुपतये नमः ।। ॐ ऋतं सत्यं परंब्रह्मपुरुषं कृष्णपिंगलमूर्द्ध-
लिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः ।। ॐ क्रां क्रीं
स्वाहा ।। ॐ य इदं मृत्युलाङ्‌गूलं त्रिसंध्यं कीर्तयति, स
ब्रह्महत्यां व्यपोहति, स्वर्णस्तेय्यस्तेयी भवति, गुरुदारागास्य-
गामी भवतिसर्वेभ्यः पातकेभ्यः उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो
भवति । सकृज्जपितेनानेन मन्त्रेण गायत्र्यास्त्वष्टसहस्राणि
फलानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकमवा-
प्नोति । यः कश्चिन्न ददाति स चित्री कुष्ठी कुनखी भवति ।

यः कश्चिद्दीयमानम् न ग्रह्णाति सोन्धो बधिरो मूको वा भवति। मृत्यावुपस्थिते षण्मासादर्वाङ् मन्त्रो न दृश्यते इत्यनेन मृत्युलाङ्गूलाख्यमहामन्त्रस्य सकृज्जापेन भगवान् धर्मराट् मम प्रीयताम् ॥ ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति ॥ सत्यञ्च पञ्चमे मासि, परं ब्रह्म चतुर्थके ॥१॥ पुरुषं तृतीयेनैव द्वितीये कृष्णपिंगलम् ॥ ऊर्द्धलिङ्गं तु मासेन विरूपाक्षं तदर्धके ॥२॥ विश्वरूपं त्रिदिवसे सद्यश्चैव नमो नमः ॐ शान्तिः ३ इति मृत्युलाङ्गूलोपनिषत्।

इति चतुरोपनिषत्समाप्ता।

——∞——

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—

१. श्री उदासीन कार्ष्णि-आश्रम
श्रीरमणरेती
पो० महावन (जिला मथुरा)।

२. श्री गुरु कार्ष्णि गोपालाश्रम-उदासीन
निकट श्री रङ्गेश्वर महादेव
मथुरा।

३. पं० रामचन्द्र शर्मा शास्त्री
२७६, राम-धाम, मोटर स्टैण्ड,
अलवर (राजस्थान)।

मुद्रक—शर्मा आदर्श इलैक्ट्रिक प्रेस, अलवर।